HARISHANKAR PARSAYI KE NIBANDH SANGREH ‘VIKLANG SHARADDHA KA DAUR' MEIN CHITRIT VYANGYATMAK SAMVEDNA AUR BHASHIK VISHLESHAN

A Dissertation submitted to the University of Hyderabad in partial fulfilment of the degree of

MASTER OF PHILOSOPHY

In

HINDI

2022

Researcher

ROHIT KUMAR

20HHHL13

Supervisor

PROF. C. ANNAPURNA

Department of Hindi, school of Humanities

University of Hyderabad

Hyderabad- 500046

Telangana

India

हरिशंकर परसाई के निबंध संग्रह 'विकलांग श्रद्धा का दौर' में चित्रित व्यंग्यात्मक संवेदना और भाषिक विश्लेषण

हैदराबाद विश्वविद्यालय की एम.फिल. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु- शोधप्रबंध

2022

शोधार्थी

रोहित कुमार

20HHHL13

शोध-निर्देशक

प्रो. सी. अन्नपूर्णा

हिन्दी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्विद्यालय

हैदराबाद-500046

तेलंगाना

भारत

I

DECLARATION

I, ROHIT KUMAR (Registration no. **20HHHL13**) hereby declare that dissertation entitle **" HARISHANKAR PARSAYI KE NIBANDH SANGREH 'VIKLANG SHARADDHA KA DAUR' MEIN CHITRIT VYANGYATMAK SAMVEDNA AUR BHASHIK VISHLESHAN"** (हरिशंकर परसाई केनिबंधसंग्रह 'विकलांग श्रद्धा का दौर' में चित्रित व्यंग्यात्मक संवेदना और भाषिक विश्लेषण) submitted by me under the guidance and supervision of **PROF. C. ANNAPURNA** is a bonafide plagiarism free research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my dissertation can be deposited in shodhganga/Inflibnet.

Signature of student

ROHIT KUMAR

Registration no. 20HHHL13

I

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"HARISHANKAR PARSAYI KE NIBANDH SANGREH 'VIKLANG SHARADDHA KA DAUR' MEIN CHITRIT VYANGYATMAK SAMVEDANA AUR BHASHIK VISHLESHAN "** (हरिशंकर परसाई केनिबंधसंग्रह 'विकलांग श्रद्धा का दौर' में चित्रित व्यंग्यात्मक संवेदना और भाषिक विश्लेषण) submitted by **ROHIT KUMAR** bearing Regd. No**. 20HHHL13** in partial fulfilment of the requirements for the award of **MASTER OF PHILOSOPHY** in **HINDI** is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

As for as I know, This dissertation is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for award of any degree or diploma.

Annapurna

Signature of Supervisor

PROF. C. ANNAPURNA

Head of the Department **Dean of the school**

PROF. Gajender KUMAR PATHAK PRO. V. KRISHNA

.

।

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

1. प्रथम अध्याय: व्यंग्य लेखन का सैद्धांतिक पक्ष

1.1 अर्थ , परिभाषा व स्वरूप

1.2 साहित्य में व्यंग्य का वैशिष्ट्य

1.3 आधुनिक हिंदी साहित्य में व्यंग्य लेखन की परंपरा

2. द्वितीय अध्याय: हरिशंकर परसाई और आधुनिक निबंध साहित्य

2.1 व्यक्तित्व , कृतित्व व प्रभाव

2.2 हरिशंकर परसाई व्यंग्य लेखन पर विद्वानों के मत

2.3 व्यंग्य पर परसाई की विचारधारा

2.4 'विकलांग श्रद्धा का दौर' - विषयवस्तु

3. तृतीय अध्याय: 'विकलांग श्रद्धा का दौर' , में चित्रित व्यंग्य और भाषिक विश्लेषण

3.1 व्यंग्यात्मक संवेदना

3.1.1 सामाजिक व्यंग्य

3.1.2 राजनैतिक व्यंग्य

3.1.3 धार्मिक व्यंग्य

3.1.4 प्रशासनिक व्यंग्य

3.1.5 सांस्कृतिक व्यंग्य

।

3.2 भाषिक विश्लेषण

3.2.1 व्यंग्यात्मक शब्द

3.2.3 व्यंग्यात्मक वाक्य

3.3.3 सूक्ति निर्माण

3.3.4 मुहावरें व लोकोक्तियाँ

उपसंहार

संदर्भ सूची

परिशिष्ट

।

प्रस्तावना

साहित्यकार जीवन संबंधी अनुभवों को मानवीय रागात्मक संबंधों से जोड़कर अभिव्यक्ति देता है। जीवन के संदर्भ अलग-अलग अनुभवों से प्राप्त होते हैं। उन संदर्भों की अलग-अलग प्रकृति और रुचि के संयोग से वह अभिव्यक्ति का विधि-विकास करता है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में साहित्य जीवन के निकट आया। जीवन की नित्य समस्याओं से जूझते हुए समाज की संकल्पना यथार्थ रूप में साहित्य को प्रदान की गई। परिणामस्वरूप इस युग में गद्य, साहित्य का समर्थ रूप बना और जीवन के विभिन्न प्रसंगों जिसमें विसंगति व्याप्त थी ऐसी कला या ऐसी विधा 'व्यंग्य' का प्रार्दुभाव हुआ। हिंदी साहित्य में व्यंग्य की मुख्यतः उपज भारतेंदुयुगीन परिवेश है। यहाँ से व्यंग्य बड़ा होना शुरु हुआ। इसका शैशवकाल कबीर आदि के समय से ही दिखता है लेकिन शैशवकाल के कारण ही उसका उचित विकास उस समय न हो सका। व्यंग्य की किशोरावस्था भारतेंदु युग में ही खुलकर सामने आई। परन्तु साहित्य में व्यंग्य को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कराकर तथा उसके यौवन को निखारकर यशस्वी व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई ने अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

परसाई ने स्वातन्त्र्योत्तर भारत को युगधर्मी साहित्यकार की दृष्टि से देखा और आज़ादी को केवल अंग्रेज़ों की गुलामी मुक्ति मात्र नहीं, व्यक्ति की स्वतंत्रता मात्र मानकर नहीं सच्चे मानवीय मूल्यों की पृष्ठभूमि शोषणविहीन और समतामूलक समाज के रूप में चाहा। लेकिन वास्तविकता उलट निकली। समाज में विसंगतियाँ और विडम्बनाएँ ढेर खड़ी हुई और यहीं से व्यंग्य का ऐतिहासिक आधार खड़ा हुआ। इन विडम्बनाओं और विसंगतियों पर परसाई ही इकलौते व्यंग्यकार हैं जिन्होंने इतनी बारीकियों व कठोरता से लेखन किया है। उन्होंने अपने काल के सभी विचारों, व्यक्तित्वों व घटनाओं-दुर्घटनाओं पर चिंतन मनन किया है। इस तरह से देखें तो उनका विपुल साहित्य अपने दौर का समाचार पत्र है जहाँ से तथ्य और सच्चाइयों को सहज रूप में देखा जा सकता है। अतः कहा जा सकता है कि उनका सम्पूर्ण साहित्य उस युग की महागाथा है।

।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का शीर्षक हरिशंकर परसाई के निबंध संग्रह 'विकलांग श्रद्धा का दौर' में चित्रित व्यंग्यात्मक संवेदना और भाषिक विश्लेषण है। जोकि तीन अध्यायों में विभक्त है। इसका विवरण इस प्रकार है:-

प्रथम अध्याय में व्यंग्य शब्द के अर्थ, उसके स्वरूप व विभिन्न परिभाषाएँ जिसमें भारतीय और पाश्चात्य जगत के विद्वानों के मत शामिल हैं, का वर्णन है। साथ ही व्यंग्य का वैशिष्ट्य व व्यंग्य लेखन परम्परा का भाग भी इसी अध्याय में सम्मिलित है। परसाई से पूर्व व्यंग्य जिस रूप में साहित्य से जुड़ा था और स्वातन्त्र्योत्तर भारत में व्यंग्य की जो दिशा और दशा रही है उसका वर्णन किया गया है। इसी क्रम में परसाई द्वारा व्यंग्य विधा को जो ऊर्जा, प्रतिष्ठा व उसकी धार को जो तीक्ष्णता प्रदान हुई उसका प्रयोग भी हुआ है।

दूसरा अध्याय परसाई के व्यक्तित्व व कृतित्व से संबद्ध है। साथ ही व्यंग्य को लेकर परसाई की जो समझ विकसित हुई है उसका विवेचन भी इस अध्याय का हिस्सा है। इसमें परसाई के जीवन में आने वाले मुख्य किरदार हैं जिससे उनके लेखन को गति मिली। परसाई के व्यक्तित्व को जिन भी महानुभावों ने प्रभावित किया उनमें उनके परिवार जनों के साथ-साथ साहित्य जगत के अन्य क्रांतिकारी लेखकों का नाम भी गणनीय है। प्रस्तुत अध्याय में कुछ ऐसे विद्वानों का भी ज़िक्र है जिन्होंने परसाई जीवन पर अपने मत प्रस्तुत किए हैं। इसी के साथ हास्य व व्यंग्य के भौंडे मिश्रण को परसाई ने अलग करके देखा है, इसकी व्याख्या भी अध्याय में शामिल है। इस अध्याय की सबसे मुख्य बात यह है कि आधार ग्रँथ के विषयवस्तु का अध्ययन किया गया है। जिसमें भारतीय समाज में फैली विकलांग श्रद्धा का यथार्थ व व्याख्यात्मक वर्णन किया गया है।

इसी क्रम में तीसरा और सबसे अंतिम अध्याय है जो सबसे मुख्य है। यह अध्याय शोध प्रबंध का विषय है। जहाँ व्यंग्य की संवेदनाओं को कई आधारों में वर्गीकृत किया गया है जैसे- सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व प्रशासनिक आदि। जहाँ तत्कालीन समाज के भिन्न-भिन्न रूपों का दर्शन हुआ है। परसाई के साहित्य में आज़ादी के बाद का राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक समाज का परिवेश उभरकर सामने आया है। किसी भी साहित्यकार के लिए समसामयिक घटनाओं का प्रभाव मुख्य रहता है जिससे उसके लेखन में गति, परिवर्तन व उचित दिशा दिखती है। परसाई

।

में जिन भी विचारधाराओं का समावेश हुआ वह सभी उनके साहित्य में यथास्थान पा सकी हैं। साथ ही आधार ग्रँथ में भाषिक विश्लेषण के आधार पर जिन भी व्यंग्यात्मक शब्दों, वाक्यों, यहाँ तक कि मुहावरों व लोकोक्तियों का वर्णन व्यंग्यात्मक रूप में हुआ है, उसका अध्ययन भी बड़े चिंतन-मनन के साथ किया गया है। कुछेक सूक्तियाँ भी इस ग्रँथ में प्रयोग की गई है। इस दृष्टि से परसाई लेखन सोद्देश्य है। जिसका वर्णन इस अंतिम अध्याय में किया गया है। अंतिम अध्याय के पश्चात उपसंहार है जिसमें सम्पूर्ण शोध अध्यायों का निष्कर्ष लघु व विवरणात्मक रूप में किया गया है। शोध प्रबंध के अंत में ही सहायक ग्रन्थों व पत्र-पत्रिकाओं का भी विवेचन हुआ है।

प्रस्तुत शोध कार्य मैंने प्रो. सी. अन्नपूर्णा मैम, हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्विद्यालय, हैदराबाद के निरीक्षण में सम्पूर्ण किया है। साथ ही शोध सलाहकार सदस्य के रूप में डॉ. जे.आत्माराम सर का भी मैं धन्यवाद करना चाहता हूँ। जहाँ दोनों विद्वानजनों ने मुझे प्रचुर मात्रा में सहायता प्रदान की। इसके अतिरिक्त मुझे विभाग के अन्य शिक्षकों का तो सहयोग मिला ही विशेष रूप से मैं भीम सिंह सर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने मुझे कभी भी निराश नहीं किया। मैंने उनसे जब भी शोध विषय से संबंधित चर्चा करनी चाही उन्होंने अपनी व्यस्त दिनचर्या से भी समय निकालकर, कभी औपचारिक तो कभी अनौपचारिक रूप से मेरी मदद की। उनके सानिध्य ने शोध विषय को सही दिशा देने में विशेष ऊर्जा प्रदान की। इसी प्रकार मुझे राजीव रंजन गिरि सर का भी सदैव सहयोग मिलता रहा जो वर्तमान में दिल्ली विश्वविद्यालय के राजधानी कॉलेज में सह-प्राध्यापक हैं। साथ ही प्रतिष्ठित गाँधीवादी चिंतक हैं। इन दोनों गुरुजनों के माध्यम से मुझे परसाई अध्ययन के लिए विभिन्न पुस्तकों व पत्रिकाओं की सामग्री पता चली। जिससे शोध अध्ययन उचित मार्ग में सफल हो सका।

वैसे तो कोई भी शोधार्थी या व्यक्ति जब किसी सफलता को प्राप्त कर लेता है तब वह किसी का आभार व्यक्त करे या न करे अपने माता-पिता का जरूर करता है। इस दृष्टि से मैं भी अपने माता-पिता का आभार व्यक्त करता हूँ। परन्तु यहाँ एक बात कह देना चाहता हूँ। माता पिता का आभार यदि व्यक्त न भी किया जाए तो भी उसमें कोई गलत नहीं। क्यों, क्योंकि हमें सफल बनाने में उन्होंने जो बलिदान दिया वह उनका कर्तव्य था। वह उनका धर्म था और कोई अपने धर्म के बदले आभार की लालसा रखे इस बात का उत्तर मेरे पास अभी नहीं है। लेकिन मेरी बात का यह अर्थ बिल्कुल न निकाला जाए कि मेरे माता-पिता के योगदान अथवा बलिदान का कोई मूल्य ही नहीं है।

।

परन्तु मैं अपने परिवारजनों में अपनी बड़ी दीदी और बड़े जीजू का जरूर हृदय से धन्यवाद करता हूँ और अपने जीवन की किसी भी सफलता के लिए उनका जीवन भर धन्यवाद करता रहूँगा। मैं जिस भी परिस्थिति में रहा, जहाँ भी रहा उन्होंने मेरा साथ कभी नहीं छोड़ा, न मुझसे उम्मीद। उन्होंने जो मेरे लिए किया है वो शायद कोई न कर पाएगा। इसलिए भी उनके प्रति धन्यवाद करने के अलावा मेरे पास कोई भी ऐसे शब्द नहीं हैं जो उसकी तुलना कर सके।

इसके अतिरिक्त मेरे परम् मित्रों में अंकित, अभिनंदन, रजत, यशवंत, सोहेल खान, अंकित राज, बृजेश, सुरेंद्र, स्नेहदीप, करमचंद, अमित, दीपक सरोहा आदि का योगदान भी रहा है। जिनमें से अधिकांशतः वह हैं जिन्होंने मुझे मानसिक बल दिया अन्यथा यह शोध कार्य संभव नहीं था। लंबे समय से मैं मानसिक तनाव से जूझ रहा हूँ। ऐसी परिस्थिति में सदैव इन्हीं मित्रों का साथ मिलता रहा है। अन्यथा एक समय ऐसा भी आया था जब मैं अपना शोध कार्य छोड़ रहा था। परन्तु अभिनंदन और स्नेहदीप ने मुझे लगातार इस कार्य की पूर्णता के लिए बल दिया व मेरा हौंसला बढ़ाया।

इस तरह से यह शोध प्रबंध आप सभी के समक्ष प्रस्तुत है।

।

प्रथम अध्याय

व्यंग्य लेखन का सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

व्यंग्य किसी भी भाषा, समाज, परिवेश या फिर किसी परिवार से लेकर व्यक्ति विशेष तक की विसंगतियों को कठोरतम रूप में दिखाने की कला है। इस कला के द्वारा हम समाज के उस यथार्थ को पेश करने की कोशिश करते हैं जिसे आज सभी छुपाना चाहते हैं। जिसे सभी दबाना चाहते हैं क्योंकि बुरी आदतें अथवा हमारा अनुचित रूप किसी के लिए भी सहनीय नहीं होता, वह असहनीय है। इसलिए हमारा पूरा प्रयास रहता है कि इस बुरे रूप की सच्चाई किसी को भी पता न चले। लेकिन साहित्य की विधा 'व्यंग्य' इसी सच्चाई को सामने लाने के लिए प्रतिबद्ध है। यही इसका कर्म है, यही इसका धर्म है। और जो व्यक्ति अपने कर्म या धर्म से अलग हो सकता है वह उचित या पवित्रता के घेरे से बाहर हो जाता है। वह नैतिकता के दायरे को लाँघ जाता है। अतः इस दृष्टि से व्यंग्य की नैतिकता समाज के विसंगतिमय चरित्र का चित्रण करने से है। साथ ही वह समाज को इस नैतिकता को न लाँघने के लिए सचेत भी करता है।

जब बात किसी विधा के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य या उसके सैद्धांतिक रूप की होती है तब उसके सबसे अहम रूप या मूल तत्वों को समझने का प्रयास करते हैं। इस दिशा में व्यंग्य के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य की चर्चा उसके अर्थ, परिभाषा व स्वरूप से जोड़कर देखी जाती है। जहाँ पर व्यंग्य की मूलभूत बातें स्पष्ट होती हैं। जहाँ व्यंग्य के सबसे विशिष्ट गुण व नियमों की जानकारी देना अपेक्षित होता है। लिहाज़ा यहाँ पर व्यंग्य के अर्थ जिसमें उसके 'अन्योक्ति' लहज़े, 'लाक्षणिक प्रयोग व किसी का उपहास उड़ाने से लेकर चुटकी लेने तक' की बातें शामिल है।

इसके आगे व्यंग्य की प्रमुख परिभाषाओं को जानने की कोशिश करेंगे। साथ में यह भी की, कैसे व्यंग्य की संरचना होती है। एक अच्छा व्यंग्य लिखने के लिए किन बातों का होना जरूरी है। और सबसे जरूरी कि किन-किन प्रकार की विसंगतियों का प्रयोग हम किसी व्यंग्य को रचने के लिए कर सकते हैं। क्योंकि किसी भी व्यंग्य की नींव विसंगति पर ही टिकी होती है। इसके लिए सबसे जरूरी है कि विसंगति का अच्छे से ज्ञान होना चाहिए। अन्यथा इसके

।

अभाव में व्यंग्य की जान निकल जाएगी। उसका मूल तत्व कहीं गायब हो जाएगा। तो इस प्रकार से निम्न बिंदुओं के माध्यम से व्यंग्य के सैद्धांतिक पक्ष को जान सकते हैं-

(क) अर्थ , परिभाषा व स्वरूप

व्यंग्य का अर्थ

'व्यंग्य' शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका प्रयोग 'शब्द शक्तियों' के अंतर्गत हुआ है। इसके लिए एक अन्य शब्द 'व्यंग्योक्ति' भी मिलता है, किंतु यह भी 'मुख्यार्थ और लक्ष्य गौण या संकेतित अर्थ से' मुक्त नहीं।[1]व्यंग्य के मर्म को समझने हेतु 'ताना' या 'चुटकी लेना' जैसे अर्थों को भी सम्मिलित कर सकते हैं जो किंचित मात्रा में व्यंग्य के अभिप्राय के निकट माना जा सकता है।[2] इसके अतिरिक्त किसी का उपहास उड़ाने वाली, किसी की निंदा करने वाली जिसमें व्यक्ति विशेष की विसंगतियों को उजागर किया जा रहा हो, ऐसी कला भी व्यंग्य के समीप रखी जा सकती है। यह उपहास सांकेतिक चित्र अथवा कार्टून के माध्यम से भी उड़ाया जा सकता है। व्यंग्य शब्द का अन्य अर्थ गूढ़ता में छिपा है। जो किसी अतिसाधारण अर्थ में 'लगती हुई बात' सा प्रतीत होता है।[3]

व्यंग्य के ऐसे तो कई अर्थ हैं परन्तु अपने विशेषपन में वह काव्यशास्त्र के वक्रोक्ति से जुड़ा हुआ है। जिसका अर्थ है- 'टेढ़ा कहना या टेढ़ा अर्थ'। इसका ज़िक्र कथाकार 'अमृतयराय' ने भी किया है:- "व्यंग्य का प्रधान उपजीव्य वक्रोक्ति है, जो व्यंजना का ही एक अंग है। जिस साहित्य में व्यंजन नहीं वह कितना ठस होगा।"[4]

---

[1] व्यंग्य का सौंदर्यशास्त्र, डॉ. मलय, पृ9

[2] राजपाल हिंदी शब्दकोश, डॉ. हरदेव बाहरी, पृ 762

[3] व्यंग्य का सौंदर्यशास्त्र, डॉ. मलय, पृ 9

[4] व्यंग्य क्या व्यंग्य क्यों, श्यामसुंदर घोष, पृ 43

।

अतः इस प्रकार व्यंग्य अपने सम्पूर्ण अर्थ में उस कला का द्योतक है जिसमें बात को बड़ी बारीकी के साथ कहने के भिन्न अंदाज़ में प्रस्तुत किया जाता है। और यह अंदाज़ थोड़ा घुमावदार, थोड़ा तिरछा और थोड़ा आड़ा होता है। जिससे समाज की बुरी छवि का दिग्दर्शन होता है। उस छवि के सुधार हेतु कुछ गुणतत्व भी इस कला में छुपे होते हैं।

व्यंग्य की प्रमुख परिभाषाएँ -

व्यंग्य अपने में एक विद्रोही प्रवृत्ति, एक आक्रामक शैली, एक गम्भीर स्थिति, एक चेतनावान कला तथा स्वतंत्र व असीमित विधा है। यह जीवन से साक्षात्कार कराने वाली और यथार्थ से जुड़ी साहित्यिक कला है। यह सभी तत्व मिलकर व्यंग्य की परिभाषा निर्माण में योगदान देते हैं। ऐसे तो व्यंग्य की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं तथा साहित्य के विद्वानों ने उन्हें समय-समय पर ग्रहण भी किया है परन्तु यहाँ व्यंग्य की महत्वपूर्ण परिभाषाओं का परिचय देना अपेक्षित है जिसमें भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों के मत शामिल हैं-

भारतीय विद्वानों के अनुसार -

डॉ. 'रामकुमार वर्मा' लिखते हैं:- "आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तु स्थिति को विकृत कर उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है।"[5]

डॉ. 'प्रभाकर माचवे' के अनुसार:- "मेरे लिए व्यंग्य कोई पोज़ या अंदाज़ या लटका या बौद्धिक व्यायाम नहीं। वह एक आवश्यक अस्त्र है।"[6]

---

[5] हिंदी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, डॉ. मदालसा व्यास, पृ 3

[6] तेल की पकौड़ियाँ, प्रभाकर माचवे, पृ 9

।

डॉ. 'इंद्रनाथ मदान' के अनुसार:- "परिवेश के प्रति असंतोष व्यंग्य का रूप धारण करता है। इसे खरी-खरी सुनाना भी कहा जाता है।"[7]अर्थात जब समाज में असंतोष की स्थिति उत्पन्न होती है तब व्यंग्य लिखने की अनिवार्यता होती है।

व्यंग्य को सोद्देश्यपूर्ण विधा मानते हुए हिंदी व्यंग्य के पितामह 'हरिशंकर परसाई' लिखते हैं:- "व्यंग्य जीवन का साक्षात्कार करता है , जीवन की आलोचना करता है , विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफ़ाश करता है।"[8]

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार -

प्रसिद्ध आलोचक 'मेरीडिथ' ने माना है:- "व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है। बहुधा वह समाज की गंदगी की सफाई करने वाला होता है, उसका कार्य सामाजिक विकृतियों की गंदगी को साफ करना होता है।"[9]अर्थात साहित्य में व्यंग्यकार भी वही कार्य करता है जैसा समाज का एक सफ़ाई कर्मचारी। दोनों का काम समाज की गंदगी का सफ़ाया करना है। समाज में पनप रहे दीमक, कीट-पतंगों, कीड़े-मकोडों, इत्यादि का सफ़ाया कीटनाशक से किया जाता है। ऐसा करने से खतरनाक बीमारी जैसे- हैजा, मलेरिया, डेंगू आदि रुक जाते हैं। ठीक ऐसे ही समाज में पनप रही विंसगतियों का सफ़ाया साहित्य में व्यंग्य के माध्यम से किया जाता है। अतः व्यंग्यकार और सफ़ाई कर्मचारी दोनों ही समाज के लिए अतिआवश्यक हैं।

'ए० निकोल' के अनुसार:- "व्यंग्य इस सीमा तक कटु हो जाता है कि वह किंचित् भी हास्य न हो। व्यंग्य बहुत तीख़ा वार करता है। इसमें कोई नैतिक बोध नहीं होता। इसमें दया, विनम्रता एवं उदारता का लेशमात्र भाव भी नहीं होता। व्यक्ति के शारीरिक गठन पर कभी-कभी पूरी निर्दयता से प्रहार करता है, यह व्यक्तियों के चरित्र पर आक्रमण करता है। यह युग की समूची परिस्थितियों की धज्जियों किसी को भी क्षमा किए बगैर उड़ाता है।"[10]

---

[7] हिंदी हास्य व्यंग्य विधा का स्वरूप एवं विकास, इंद्रनाथ मदान, पृ 2

[8] सदाचार का ताबीज, हरिशंकर परसाई, पृ 10

[9] हिंदी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, डॉ. मदालसा व्यास, पृ 1

[10] वही, पृ 2

।

'प्रो. सदरलैंड' ने अपनी पुस्तक 'इंग्लिश सटायर' में व्यंग्य और व्यंग्यकार की व्याख्या इस तरह प्रकार दी है:- "व्यंग्यकार का कार्य न्यायाधीश की भाँति न्याय पालन कराने तथा शिष्ट समाज की मर्यादाओं की रक्षा करना है। उसका कार्य नर-नारियों को नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं अन्य कसौटियों पर खरे उतरने के लिए सचेत करने का है।"[11]

अतः इस प्रकार व्यंग्य की प्रमुख परिभाषाओं से समझा जा सकता है कि जहाँ व्यंग्य अपने विस्तार में आक्रमण करने की शैली , किसी के गलत करने पर उसे खरी-खोटी सुना देना अर्थात व्यंग्य लिख के अपनी बात उस तक पहुँचा देना , समाज को शिष्टता का पाठ पढ़ाना जैसे स्वरूप में स्थापित है। इसका सबसे विशिष्ट गुण समाज को पवित्र रखने के लिए उसमें पड़े अपवित्र मल को बाहर निकालने के लिए प्रतिबद्ध है। यही उसकी सबसे बड़ी पहचान है , उसकी शक्ति है।

व्यंग्य का स्वरूप

व्यंग्य का जन्म सामाजिक विसंगतिबोध से ही सम्भव है। ऐसी स्थिति में विसंगति के स्वरूप को समझने की आवश्यकता है। समाज में व्याप्त विसंगतियाँ किस रूप में तैयार होती है और उनके मूल कारण क्या होते हैं ? यदि इन सवालों के उत्तर मिल जाएँगे तब विसंगति का स्वरूप खुद-ब-खुद खुल जाएगा। विसंगति समाज में दोहरेपन, अनैतिक रूप, विद्रुपताओं के बढ़ते दृश्य, रूढ़ियों के चलन में रहने व जातिगत-धार्मिक भेदभाव आदि से पैदा होती है। इससे समाज के उस चेहरे की झलक दिखाई देती है जिसे छुपाने की कोशिश रहती है। परंतु व्यंग्यकार रूपी बुद्धिजीवी इन्हें किसी तरह का आश्रय लेने नहीं देते। विंसगति की नींव झूठ पर टिकी होती है जिसको ढहाना समाज के प्रतिनिधियों का कर्तव्य है। इन प्रतिनिधियों में साहित्य का वो वर्ग भी शामिल है जिसे हम व्यंग्यकार के रूप में जानते हैं।

---

[11] वही, पृ 2

।

व्यंग्य लेखन, कार्टून निर्माण, व्यंग्यात्मक कॉमेडी, जिसमें ब्लैक कॉमेडी व ब्लू कॉमेडी की गणना भी हो जाएगी और प्रचलित व्यंग्याभिव्यक्तियों को समग्र रूप से रचनात्मक तथा स्वयंपूर्ण बनाने के लिए सर्वाधिक उपयोगी एवं अनिवार्य कच्चा माल होता है 'विसंगतियाँ'।

यदि समाज में विसंगतियाँ मौजूद न हो तो व्यंग्य का वजूद ही संकट में पड़ जायेगा। इस विसंगति में राजनैतिक-सामाजिक-आर्थिक अनेक विभेद शामिल हैं जैसे- जातिगत अन्याय, धार्मिक असमानता, रोजीरोटी से जुड़ी धोखेबाज़ी, प्रेम सम्बन्धी प्रपंच, पत्रकारिता में पूँजी का बोलबाला, वेतनख़ोरी, बढ़ता पाखंड देशप्रेम के नाम पर साम्प्रदायिकता और कट्टरता, रिश्वतख़ोरी, दहेज प्रथा, गर्भपात, भ्रष्ट न्यायपालिका, राजनीति में भाई-भतीजावाद, ग़ैरकानूनी धंधे जैसे-व्यवसाय की दृष्टि से कीमती पेड़, नशीले पदार्थों व हथियार आदि की स्मगलिंग कराना। इसके लिए पुलिस प्रशासन को मोटी तनख्वाह भी मिलती है। इस काम में स्मगलिंग का माल पास करवाने से लेकर उसकी देखभाल करने तक अलग से आदमी तैनात किए जाते हैं और उनकी जेबें गर्म की जाती है। यह ऐसी ही विसंगतियाँ हैं जिनपर व्यंग्यकार अपनी पैनी नज़र रखता है। इस क्रम में यह कहना भी अनुचित होगा कि मनुष्य कभी पूरी तरह विसंगतिविहीन हो जाएगा। विसंगतियाँ मनुष्य के मूल में हैं और इन विसंगतियों का संसार अतिसामान्य स्थितियों से लेकर गहन-गम्भीर समस्याओं तक फैला हुआ है। जब तक सभ्यता कायम रहेगी तब तक विसंगतिबोध कायम रहेगा। यह कोई सूक्ति या सत्य वचन नहीं है लेकिन यह ऐसी कल्पना है जिसकी आधारशिला बहुत मजबूत है। उसके पीछे का कारण अतीत के अनुभव हैं। चूँकि इस लोक पर कोई भी ऐसा व्यक्ति या ऐसा समुदाय नहीं है जिसमें कमियाँ न हो, जो गलत न करता हो। इसलिए यह कहना अतिश्योक्ति होगी कि इस समाज से विसंगतियों का अस्तित्व ख़त्म हो चुका है या हो जाएगा। और जब तक ऐसा रहेगा तब तक व्यंग्य लिखे जाते रहेंगे। यही व्यंग्य का उद्गम स्थल है। उसका स्रोत है।

विसंगति अथवा असंगति के कोशगत अर्थ की तरफ रुख़ करेंगे तो इसके कुछ पर्याय हैं। जैसे- अनुपयुक्तता, अनौचित्य, असंबद्धता, बेमेलपन, विषमता, असमानता आदि। 'विसंगति' औचित्य पर अनौचित्य के हावी होने व समता के मार्ग में विषमता द्वारा रोडा अटकाए जाने से जन्म लेती है। मगर समाज में पद-प्रतिष्ठा, धन-सम्पन्नता अथवा धर्म-जाति के आधार पर छोटे-बड़े का अंतर साफ नज़र आता है। अतः यह एक सामाजिक विसंगति हुई, जिसके मूल में

।

'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली मनोवृत्ति दिखती है। इस तर्क से स्पष्ट होता है कि व्यंग्य में मुहावरों का भी यथानुकूल प्रयोग होता है।

परसाई ने विसंगति की चर्चा इस रूप में की है- " संगति के कुछ माने बने हुए होते हैं- जैसे इतने बड़े शरीर में इतनी बड़ी नाक होनी चाहिए। उससे बड़ी होती है तो हँसी आती है। आदमी, आदमी की बोली बोले, ऐसी संगति मानी हुई है। वह कुत्ते जैसा भौंके तो यह विसंगति हुई और हँसी का कारण।"[12]

विसंगति की चर्चा करने के उपरांत व्यंग्य के स्वरूप पर विस्तार से चर्चा करना जरूरी है। इसके अभाव में व्यंग्य की विशिष्टता, उसकी प्रासंगिकता, व्यंग्य का जन्म कैसे और किन परिस्थितियों में होता है एवं व्यंग्यकार की भूमिका क्या रहती है आदि प्रश्नों के उत्तर शेष रह जाएँगे । जिससे व्यंग्य की सार्थकता अधूरी रह जाएगी।

साहित्य की चर्चा करते समय उसे यथार्थ की भूमि व जन-सामान्य के हृदय पटल पर अंकित होना चाहिए। साहित्य की परिभाषा देते हुए अनेक विद्वान इस बात पर बल देते हुए नज़र आयेंगे कि, साहित्य में कल्पना का भी अस्तित्व है, जो लेखक की कल्पना-शक्ति का परिचय देता। संसार में जिन वस्तुओं के बारे में केवल सुना भर है, जिसे देखा नहीं गया है, उसको लेकर एक चेतनशील व्यक्ति किस सीमा तक जा सकता है यह उसकी कल्पना शक्ति तय करती है। ईश्वर की कल्पना और उसका आकार कुछ ऐसा ही उदाहरण है जिसका मानव जीवन से गहरा लगाव हो गया है। परन्तु साहित्य के मर्मज्ञ यह भी जानते हैं कि साहित्य का धरातल कल्पना का अभाव तो सह सकता है परंतु यथार्थ की कमी नहीं। रचनाकार को साहित्य की संरचना करते समय सुनिश्चित करना चाहिए कि उसकी नज़र भले ही कल्पना के आकाश में विचरण कर रही हो परन्तु उसके पैर यथार्थ के ठोस धरातल पर ही होने चाहिए। साहित्य का यथार्थवादी होना 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' जैसी उक्ति का प्रमाण है। यदि सामने और कुछ है व दर्पण में कुछ और दिखे तब यह प्रतिकूल स्थिति है। दर्पण की विशेषता इसमें है कि वह बिना किसी छुपाव के सामने खड़े आकार को अभिव्यक्त करे।

---

[12] सदाचार का ताबीज, हरिशंकर परसाई, पृ 6

।

अतः व्यंग्यकार की तुलना दर्पण से की जा सकती है क्योंकि वह समाज में घट रही सच्चाई को अभिव्यक्ति देना अपना मूल कर्तव्य समझता है।

व्यंग समाज में चल रही उलटी दिशा को सीधी दिशा में चलने के लिए मजबूर कर देता है। व्यंग्य का स्वरूप ही उसके आक्रोशात्मक रवैये के लिए प्रसिद्ध है। इस आक्रोश में जनहित की खुशबू आती है। यह एक डेमोक्रेटिक माहौल बनाये रखने के लिए संदेश देती है। हर गलत पर आवाज़ उठाना व्यंग्य सिखाता है। अनुचित देखकर चुप्पी साधे रखना व्यंग्यकार की नज़र में गुनाह है जिसकी कोई माफ़ी नहीं।

वास्तव में व्यंग्य एक गहन ईमानदार, गम्भीर और सत्यवादी व्यक्ति का जीवन-दर्शन है, जो हर विद्रुपमय, विसंगतिमय, अतार्किक, झूठी व अमानवीय स्थिति में कभी ख़ामोश रहकर तो कभी मुखर होकर अपना काम करता है। यह स्थितियों, विसंगतियों, असत्यों द्वारा प्रदत्त तनाव से मुक्ति का एक साधन है।

'व्यंग्य' असंगति, अनमेलपन और अंतर्विरोध से पैदा होता है। इसके अतिरिक्त समाज में फैले पाखंड, दिखावटीपन व दोहरे मापदंड जैसी क्रियाओं में भी व्यंग्य उभर सकता है। जहाँ भी अन्याय, शोषणवृति, तानाशाही व सत्ता का दम्भ और अहम भाव की शंका दिखती है वहाँ व्यंग्य ज्वालामुखी की माफ़िक फट जाता है। इसके अलावा शोषक और शोषित तथा राजा व प्रजा के टकराने से भी व्यंग्य का जन्म होता है। इसका मूल उद्गम स्त्रोत 'समाज में व्याप्त विसंगति' है। अतः व्यंग्य के स्वरूप को बेहतर स्थिति में समझने के लिए हमें निम्नलिखित बिंदुओं पर दृष्टिपात करना अनिवार्य है-

सरकार व जनता के बीच असंगति

।

सत्तापक्ष हो या विपक्ष उनके वादों, उनकी योजनाओं, उनके सामाजिक-राजनैतिक विकास के मॉडलों, उनके एजेंडों आदि से भी व्यंग्य पैदा होता है। व्यंग्य न केवल शिक्षित समाज के गलियारों से गुजरता है बल्कि चौक-चुबारे पर लगी पान की गुमटियों से, मोची की दुकान से लेकर चाय वाले की टपरी तक, रेहड़ी-पटरी वालों के पास से, तो किराने की दुकान से लेकर सैलून तक पर व्यंग्यों का उद्गम होता है।

बात-बात पर सरकार अपनी योजनाओं की दुहाई देती रहती है और जनता सरकार के वादे व काम गिनाती रहती है। जब सरकार ऐसे काम गिनाए जिससे जनता का सरोकार नहीं तब व्यंग्यकार व्यंग्य पैदा करने में भूल नहीं करता। एक तरफ सरकार कहती है कि 'हमने जनता के लिए दस हजार करोड़ का बजट पास किया है तो वहीं दूसरी ओर जनता कहती है 'हाँ बजट तो पास किया, लेकिन वो अफसरों की तोंद बढ़ा रहा है।' ऐसी स्थिति में सरकार और जनता के बीच विसंगति-बोध का फ़र्क सीधा नज़र आता है और व्यंग्य का जन्म होता है। उदाहरण के लिए भारतेंदुयुग के श्रेष्ठ निबंधकार 'बालमुकुंद गुप्त' का प्रतिनिधि निबंध 'शिवशम्भु के चिट्ठे' इस विसंगतिबोध का अच्छा नमूना है। सरकार और जनता के बीच जो विभाजक रेखा है वह यहाँ दिखती है। लॉर्ड कर्जन द्वारा दिल्ली में विक्टोरिया मेमोरियल व दिल्ली दरबार बनवाया गया जोकि सामान्य जनता या निम्न वर्ग के लिए कोई जरूरी नहीं। यही काम कई बार सरकार करती है। कहने को तो काम होता है परंतु उसका लाभ कोई और ही उठाता नज़र आता है।[13]

जो घर जलावे आपनो चले हमारे साथ

जिसमें खुद के गिरेबान में झाँकने का साहस है वही समाज को शुद्ध कर सकता है यही व्यंग्य की सीख होती है। जिसमें अपनी गलतियों को देख उसे सुधारने का साहस पहले है तब कहीं समाज को सुधार सकने की योग्यता। मतलब कि पहले अपनी कमियों व गलतियों को देखों तब दूसरों को गलत ठहराओ। पहले खुद को, अपने आसपास के माहौल को, अपने परिवार को, अपने सगे-सम्बन्धियों को लोकतांत्रिक बनाओ। गलत होने पर उनसे लड़ना सीखो, उनकी गलत बात को काटना और तोड़ना भी। तब कहीं जाकर आप समाज और देश को लोकतांत्रिक बना सकोगे। प्रसिद्ध गीतकार

[13] https://www.hindisamay.com/content/1197/1

।

व कॉमेडियन 'वरुण ग्रोवर' ने अपने एक शो में कहा था:- "सबसे पहले अपने घर में डेमोक्रेसी लाओ।" उनका मतलब साफ है कि सबसे पहले अपने पास से शुरू करो तब कहीं जाकर कोई दूसरा आपकी बातों को ध्यान देगा।

व्यंग्य एक विवशताजन्य हथियार है

व्यंग्य विवशताओं से जन्म लेता है। जब तक कोई मजबूरी व बेचैनी नहीं होती व्यंग्यकार व्यंग्य लिखने को तैयार नहीं होता। यह विवशता समाज में व्याप्त सामाजिक-राजनैतिक संरचना पर आधारित होती है। यह ऐसा हथियार है जिसमें सुधार की गुंजाइश होती है, जिसमें क्रांति की चमक है, जिसमें विद्रूपताओं पर प्रहार करने की मुक्कमल धार है। व्यंग्य विवशता एक छोर से नहीं पैदा होती। इसके लिए दोनों छोर जिम्मेदार हैं। यदि राजा व प्रशासन अपने दायित्वबोध को नहीं निभा रहे हैं तब जनता को आगे आना चाहिए और उनके दायित्वबोध का स्मरण कराना चाहिए। अन्यथा जनता भी व्यंग्यकार का शिकार बन सकती है।

ग़ैर जरूरी है कि प्रत्येक व्यंग्य हँसाए

प्रत्येक व्यंग्य हँसाए यह जरूरी नहीं। आमतौर पर व्यंग्य पढ़ते समय हास्य का भाव प्रस्फुटन होता है ऐसी धारणा है परंतु कई ऐसे गम्भीर और संवेदनशील व्यंग्य विषय हैं जो हँसने के बजाए सोचने को मजबूर कर देते हैं। यदि व्यंग्य का अर्थ केवल हँसाना होता तो हमारे पास चुटकुलों और मज़ाक-मस्ती के विषयों की कमी नहीं। बल्कि इससे समाज भरा पड़ा है। समाज को हर वक्त मज़ाक ही तो सूझता है। तभी तो अनुचित व्यवहार पर जो काम जनता को करना चाहिए मजबूरन व्यंग्यकारों को करना पड़ता है। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि व्यंग्यकारों का जन्म जनता की लापरवाही व निष्क्रियता पर भी निर्भर करता है।

।

प्रत्येक व्यंग्य हँसाने के लिए नहीं लिखा जाता। इसके लिए इस उदाहरण को देखा जा सकता है। प्रसिद्ध मंचीय व्यंग्यकार 'संपत सरल' ने गाँधी जी के चश्मे को आधार बनाकर एक व्यंग्य कहा जिसमें 'स्वच्छ भारत' की असलियत दिखाई है। वह कहते हैं कि:- "जिस तरफ स्वच्छ लिखा है उधर भारत नहीं और जिधर भारत लिखा है उधर स्वच्छ नहीं।" इस व्यंग्य में किसी प्रकार की हँसी नहीं। यह तो सरकार को झकझोर देने वाला व्यंग्य है। भारत की स्वच्छता का गुणगान रेडियो, टी.वी, अखबारों, पत्रिकाओं में यहाँ तक कि मेट्रो व बसों में लगे विज्ञापनों से और सड़कों पर बड़े-बड़े हॉर्डिंगों से भी किया जा रहा है परन्तु जमीनी हकीकत मैली-कुचली ही है। गंगा सफाई के लिए सरकारों ने कितने ही अभियान चला दिए और वो चले ही गए लेकिन गंगा मैया बेचारी आज भी वहीं गंदी पड़ी हुई है। और यमुना का तो हाल क्या है यह दिल्ली वालों से बेहतर कौन ही बता सकेगा। प्रचार में यमुना को माँ का दर्जा देकर उसे एकदम चमकती हुई दिखाया जाता है लेकिन असली में कोई वजीराबाद या दूसरे किसी यमुना तट से उसके दर्शन कर ले, तो श्रद्धा से आँख बंद हो न हो नाक जरूर बंद कर लेगा। इससे सिद्ध हो जाता है कि प्रत्येक व्यंग्य हँसाए यह ग़ैर-जरूरी है। हाँ, प्रचार जरूर हँसा सकता है।

व्यंग स्वभाव से अहिंसक होता है

हिंसा दुराचारी, अपराधी, कायर और बुज़दिल लोग करते हैं। जिनके पास तर्क और ज्ञान की शक्ति नहीं होती। जिस तरह समाज में हिंसक प्रवृत्ति के खिलाफ अहिंसा, त्याग, तप, बलिदानी प्रवृत्ति खड़ी होकर लड़ती है ठीक ऐसे ही साहित्य में व्यंग्य सामाजिक विद्रूपताओं के विरुद्ध लड़ता है। व्यंग्य का यह स्वभाव अहिंसात्मक होता है।

व्यंग्य का संबंध बुद्धि से है

व्यंग्य के लिए बौद्धिक तत्व अनिवार्य है। ग़ैर-बौद्धिक तत्व से व्यंग्य तो क्या एक विचार भी पटल पर उतार नहीं सकते। जैसे पूरे मानव शरीर को संचालित करने के लिए सबसे अहम बुद्धि पक्ष होता है ठीक ऐसे ही व्यंग्य लेखन के

।

लिए भी बुद्धिपक्ष सबसे अनिवार्य है। हमारे मस्तिष्क को मानव शरीर का ड्राइवर कहा जाए तो गलत बात नहीं होगी। जैसे किसी भी वाहन को नियंत्रित करने और उसे गंतव्य तक पहुँचाने या भटकाने में ड्राइवर का रोल मुख्य रहता है। ठीक ऐसे ही मानव मस्तिष्क जिस दिशा में चलता जाएगा व्यंग्यकार उसी दिशा में लिखता जाएगा। व्यंग्य लिखते समय उसकी बुद्धि चहुँमुखी खुली होनी चाहिए और दिमाग एकदम तेज़ व एकाग्रता अर्जुन की तरह।

व्यंग्य को समझौतावादी नहीं होना चाहिए

किसी भी व्यक्ति, रचनाकार, राजनेता, सामाजिक कार्यकर्ता अथवा किसी भी बुद्धिजीवी और प्रतिनिधि व्यक्ति को समझौतावादी नहीं होना चाहिए। समझौता करना अपनी हार स्वीकारना व खुद को कमतर मान लेना है।

सफल व्यंग्यकार का स्वरूप

व्यंग्य का स्वरूप उसके रचनाकार के स्वरूप से भी जुड़ा है। उसकी सफलता ही व्यंग्य की सफलता है। सफल व्यंग्यकार वही है जो गम्भीर, संवेदनशील, तार्किक के साथ वैज्ञानिक भी हो। व्यंग्यकार चेतना के मामले में असीमित व स्वतंत्र होता है। अंततः इन बिंदुओं के माध्यम से शोध विवेच्य में व्यंग्य के स्वरूप को जानने की कोशिश की गई है। जिससे उसके स्वरूप को कई विविध दिशाएँ तो मिली ही हैं साथ में व्यंग्य का एक नया अर्थ भी खुलकर सामने आया है।

(ख) साहित्य में व्यंग्य का वैशिष्ट्य

।

साहित्य में व्यंग्य की विशेषता उसकी प्रासंगिकता से जुड़ी होती है। यदि व्यंग्य समाज और साहित्य के लिए इतना उपयोगी नहीं होता तो उसकी विशिष्टता ख़त्म हो चुकी होती। कम-से-कम धीमी तो जरूर। व्यंग्य में मौजूदा तत्व जैसे- उसका विद्रोही तेवर, अन्याय के विरुद्ध खड़ा होने का सामर्थ्य, अल्पसंख्यक-पीड़ित व कमजोर-दयनीय का रक्षा कवच इत्यादि। व्यंग्य की सबसे बड़ी विशेषता उसका भाषाई जादूपन है। व्यंग्य की कलात्मक भाषा उसे अन्य विधाओं की तुलना में सबसे असाधारण और भिन्न बनाती है। यह इकलौती ऐसी विधा है जिसे पढ़कर कोई भी पाठक वर्ग बोर नहीं हो सकता। परन्तु इसका अर्थ यह बिल्कुल न मान लिया जाए कि व्यंग्य मनोरंजन के लिए लिखा जाता है। व्यंग्य कठोर से कठोर भाव को बहुत हल्के-फुल्के शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों के माध्यम से ऐसा प्रहार करता है कि मानो कोई भारी भरकम हथौड़ा चला रहा हो। जबकि सही मायने में व्यंग्य करने के लिए हथौड़े जैसी भारी शब्दावली या तत्सम युक्त शब्दावली की आवश्यकता नहीं। समाज में चल रही व्यंग्योक्तियों की परख होनी चाहिए, आप खुद-ब-खुद एक बढ़िया व्यंग्य लिख डालेंगे। इसके लिए आपकी विचार शक्ति बहुत तीव्र और अपडेटिड होनी चाहिए। समाज में निरन्तर क्या-क्या घटनाएँ हो रही हैं , नेतागण किस तरह के भाषण दे रहे हैं, टी.वी पर किस तरह के प्रचार आ रहे हैं, समाज के बुद्धिजीवियों का रुझान किस ओर मुड़ रहा है, वह किस पाले के साथ खड़े हैं आदि की जानकारी होगी तो आपको व्यंग्य करने में खासी तकलीफ़ नहीं होगी। व्यंग्य की विशेषता और उसके भावी भविष्य की कल्पना करते हुए 'दिनकर सोनवलकर' कहते हैं:- "जब तक मनुष्य होने का एहसास बाकी है , जब तक ईमानदारी और न्याय के लिए लड़ने की कचोट उठती है , जब तक हम पूरी तरह मुर्दा नहीं हो गये है , व्यंग्य लिखें जाते रहेंगे।"[14] अतः व्यंग्य को समझने-समझाने हेतु नीचे कुछ विशेषताएँ दी जा रही हैं -

व्यंग्य की विशेषताएँ-

जनसाधारण से जुड़ने का सशक्त माध्यम

[14] व्यंग्य क्या व्यंग्य क्यो, श्यामसुंदर घोष, पृ 55

।

किसी भी विधा अथवा रचनात्मकता के लिए अनिवार्य है कि वह जनता से सीधे तौर पर जुड़े। जिस कला में जन-साधारण के तत्व मौजूद नहीं वह कला श्रेष्ठ नहीं। साहित्य हो या कोई दूसरी रचनात्मकता जिसमें समाज की किसी समस्या या किसी खूबी तो किसी खामी की दृष्टि हो रही होगी तो उसमें वहाँ के लोगों के मनोभावों को दिखाया गया होगा। इस दृष्टि से व्यंग्य की भाषा जनता को अपनी ओर बड़ी तेज़ी से खींचती है। या यूँ कहें कि व्यंग्यकार इस प्रकार की भाषा का इस्तेमाल करता है जिससे जनता सीधे उससे जुड़ सके। इस दृष्टि से भी व्यंग्य जनसाधारण से जुड़ने का सशक्त माध्यम साबित होता है।

तिलमिला देने वाली अभिव्यक्ति

ऐसा कोई भी व्यंग्य नहीं होगा जो पाठकवर्ग में तिलमिलाहट पैदा न कर सके। ऐसा कोई भी व्यंग्य नहीं होगा जो सत्ता को हिला न सके। व्यंग्य का यही साहस उसकी प्रभावोत्पादकता का परिणाम है। व्यंग्य लेखन सोई हुई जनता को जगा देने व उसमें तिलमिलाहट पैदा करने के उद्देश्य से लिखा जाता है।

व्यंग्यकार के अंतर्मन की दुःकथा

बड़ा व्यंग्यकार वही है जो अंतर्मन से बहुत दुखी होता है। वही दुख उसके लेखन से बाहर निकलता है। वह दुखी होकर लिखता है परंतु वह रोमानी भावबोध की वेदना-विलासी मनोवृति से अभिभूत होकर ग़र्क नहीं होता, उससे उबरता है। उसकी वेदना या पीड़ा उसकी निजता तक सीमित नहीं होती, वह समाजोन्मुखी होती है।

व्यंग्य एक सर्वव्यापक कला है

।

व्यंग्य की बहुत बड़ी शक्ति उसकी व्याप्ति है। एक शब्द से लेकर वाक्य क्या बड़ी-बड़ी रचनाओं जैसे निबंध, कहानी, यहाँ तक की उपन्यास तक में व्यंग्य की अभिव्यक्ति हो सकती है। व्यंग्य के विन्यास, घटनाओं व प्रसंगों में कथा तत्वों का प्रयोग अक्सर किया जाता है। उदाहरण के लिए परसाई की 'एक मध्यवर्गीय कुत्ता' को देखा जा सकता है। कभी-कभी पूरी रचना ही कथात्मक होती है जैसे 'हरिशंकर परसाई' का‘भोलाराम का जीव’व ‘कृष्ण चन्दर’ का 'जामुन का पेड़'। जामुन का पेड़ प्रशासन की लापरवाही का उदाहरण है तो भोलाराम का जीव पुलिस तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर संकेन्द्रित है।

झूठ से टकराने व न्याय लेने का साहस

जब समाज में कोई व्यक्ति अपनी गलत नीतियों को अंजाम तक पहुँचाने के लिए झूठ का सहारा लेता है तब व्यंग्यकार की जिम्मेदारी बन जाती है कि उस झूठ पर से पर्दा उठाए। वह झूठ से आमने-सामने, खुल्लम-खुल्ला टकराने का गुर्दा रखता है। इसके अतिरिक्त एक ईमानदार व्यंग्यकार न्याय के मूल्य की रक्षा हेतु भी तैयार रहता है। वह न्याय के लिए संघर्षरत रहता है। न्याय के संबंध में व्यंग्यकार की सारी सहानुभूति पीड़ित व्यक्ति के साथ ही होती है।

रक्षक के स्थान पर भक्षक आ जाए

किसी देश में कार्यरत नेताओं से लेकर पुलिस प्रशासन तक, न्यायविधान से लेकर संसदीय प्रणाली तक, ट्रैफिक पुलिस से लेकर बस कंडक्टर, ड्राइवर यहाँ तक की बस यात्रियों की सुरक्षा में तैनात मार्शल तक इत्यादि जितने भी जनता के प्रति जवाबदेह हैं, उन सबसे यह अपेक्षा की जाती है कि जनता को सही समय पर इनका पूरा सहयोग मिलेगा। हर अनुचित और विपरीत परिस्थितियों में यह साथ खड़े रहेंगे। यह एक आदर्श स्थिति है। परन्तु आदर्श और यथार्थ में वही फ़र्क है जो कल्पना और सत्य में। हम चाहते तो यही हैं कि हमारे रक्षक हमें मुसीबतों से बचाएँ परन्तु कई बार वही रक्षक भक्षक बन जाते हैं और समाज का अहित होता है। ऐसी स्थिति में व्यंग्यकार का जन्म होता है।

।

व्यंग्यकार यथार्थवादी होता है

व्यंग्यकार कल्पना और रोमांस की सुंदर नगरी को छोड़कर यथार्थ की कलुषित, दुखदायी और वीरान गलियारों का चक्कर लगाता हुआ सत्य को खोजकर बाहर लाता है। इस पर 'डॉ मलय' कहते हैं:- "व्यंग्यकार यथार्थवादी होता है, न कि रोमांसवादी। उसकी दृष्टि उसके आसपास के जीवन में परिलक्षित दोष एवं मूर्खतापूर्ण असंगतियों पर केंद्रित होती है। चूँकि वह हमारी सौंदर्य-भावना का नहीं, बल्कि परिहास-भावना का उद्रेक करता है।"[15]

व्यंग्य एक सतत संघर्ष है

व्यंग्य लेखन एक सतत लड़ाई है। जिसमें जीतने-हारने का उतना महत्व नहीं जितना उससे जूझने का है। 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना' की कहानी 'लड़ाई' एक ऐसे चरित्र की कथा है जिसका जीवन हमेशा संघर्षों से जूझता रहा है। इसका नायक जुझारू, अन्याय के खिलाफ लड़ता हुआ, गलत के खिलाफ मुट्ठियाँ ताने रहता है।

व्यंग्य में एक्स-रे के गुण होते हैं

व्यंग्य को विज्ञान की भाषा में एक्स-रे मशीन ही कहा जाना चाहिए। जैसे अस्पताल में एक्स-रे मशीन शरीर के अंदर की बुनावट को उसी रूप में दिखाती है जिस रूप में वह अंदर कायम होती है ठीक व्यंग्य का काम भी समाज का एक्स-रे करना होता है।

---

15 व्यंग्य का सौन्दर्यशास्त्र, डॉ मलय, पृ 15

।

(ग) आधुनिक हिंदी साहित्य में व्यंग्य लेखन की परम्परा

व्यंग्य परम्परा - एक संक्षिप्त परिचय

जीवन और साहित्य का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। साहित्य में जीवन की तमाम घटनाओं का वर्णन किया जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की परिस्थितियों व चरित्रों का भी बखूबी वर्णन किया जाता है। जिस तरह साहित्य मानव जीवन के बिल्कुल निकट है ठीक ऐसे ही व्यंग्य भी मानव जीवन के बिल्कुल करीब है। इस साहित्यिक रूप में समाज की दोहरी चाल, दोहरे मापदंड साथ में मनुष्यों के दोहरे चरित्र को पूरी उधेड़बुन के साथ अभिव्यक्त किया जाता है। यह उधेड़बुन समाज की खोखली मनोवृत्ति का रेशा-रेशा खोलकर रख देता है जिससे झाँक रही सामाजिक विडम्बना होती है। मानव जीवन में विसंगतियों और छिछोरपन का यही एहसास व्यंग्य को जन्म देता है। व्यंग्य का जन्म ही सामाजिक विसंगतियों, असंतोष और आलोचनात्मक दृष्टिकोण के कारण होता है। परिवेश विडंबना और रचना दृष्टि की अन्तःक्रिया से पैदा होने वाली इस विधा की परंपरा हमें पूर्ववर्ती हिंदी साहित्य में कबीरदास से मिलती है और कुछ हदतक नाथों व सिद्धों की परंपरा में भी।

वैसे तो हिंदी में व्यंग्य की सुदीर्घ और विस्तृत परंपरा रही है, परन्तु आरम्भ में वह अपने शैशव अवस्था में था। आधुनिक काल से पूर्व व्यंग्य का केवल परिचय भर दिखाई देता है। इसका विस्तार भारतेंदु युग से शुरू होता है जिसका चरम स्वातन्त्र्योत्तर युग में मिलता है।

एक ओर जहाँ आधुनिक काल से पूर्व का साहित्य राजाओं-महाराजाओं, ईश्वर केंद्रीय व भोग-विलासिता केंद्रित रहा तो वही आधुनिक काल में आकर साहित्य का केंद्र बिंदु मानव बना। 'रामस्वरूप चतुर्वेदी' ने अपने साहित्येतिहास 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' में कहा है:- " आधुनिक काल में आकर मनुष्य सारे चिंतन का केंद्र बनता है,

।

और ईश्वर की धारणा व्यक्तिगत आस्था के रूप में स्वीकृत होती है।"[16] यह सौभाग्य की बात है कि अपनी प्रारंभिक अवस्था में ही हिंदी गद्य को 'भारतेंदु' जैसे सशक्त और चमत्कृत कर देने वाले अद्भुत साहित्यकार का साहचर्य प्राप्त हुआ। भारतेंदु और उनकी मण्डली ने अपने साहित्य में व्यंग्य की जो छटा बिखेरी वह आज भी गतिशील है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग से ही व्यंग्य का प्रयोग होता दिखाई देता है। ऐसा शायद युग की अपनी चेतना और प्रगतिशीलता के कारण हो। बाद में परिस्थितिवश भारतेन्दु की उस जीवन्त परम्परा को पनपने के लिए उचित ज़मीन नहीं मिली। छायावाद-युग में तो वह पृष्ठभूमि में चली गयी। सन 1930 के लगभग फिर यथार्थ चेतना का एहसास लेखकों में गहराया और व्यंग्य को धारदार बनाने का प्रयोग चल पड़ा। भारतेंदु ने सामाजिक विसंगतियों पर दिशायुक्त प्रहार करने की जो परम्परा चलाई उसे छायावाद में 'निराला' ने व स्वतंत्रता के पश्चात 'हरिशंकर परसाई' ने सशक्त करने का कृत्य किया। परसाई ने उस 'मुर्दे में जान फूँकने का कार्य' किया।

परसाई ने प्रथम बार व्यंग्य को उसकी सही पहचान दिलाने का उद्योग किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद परिस्थितियाँ इतनी तेज़ी से बदली कि पूरे साहित्य में खलबली मच गयी। एक विषैली लहर पूरे देश में दौड़ गयी। लोभ और स्वार्थ ने सभी आदर्शों का मार्ग रोक दिया। विसंगतियाँ पैदा हुई। प्रबुद्ध लेखक विचलित हो उठे और अपना आक्रोश व्यक्त करने लगे। फलस्वरूप व्यंग्य लेखन अतिरिक्त मात्रा में साहित्य का अंग बनने लगा।

अपने आरम्भिक वक्तव्यों में परसाई ने लगातार इस बात पर बल दिया कि 'व्यंग्य' और 'हास्य' दोनों अलग-अलग विधा है। परसाई ने व्यंग्य के नाम पर हास्य के भोंड़े रूप की रचनात्मकता का हमेशा विरोध किया। यह परसाई की चेतना संपन्न दृष्टि का परिणाम था कि हिंदी गद्य में सार्थक व्यंग्य लेखन की शुरुआत हुई। बाद की गिनती में श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी, सुदर्शन मजीठिया, नरेंद्र कोहली, रवींद्रनाथ त्यागी, मनोहरश्याम जोशी, गोपाल चतुर्वेदी, ज्ञान चतुर्वेदी, लतीफ घोंघी, शंकर पुणतांबेकर, के. पी. सक्सेना, डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी, इंद्रनाथ मदान, प्रेम जनमेजय, बालेंदुशेखर तिवारी, लक्ष्मीकांत वैष्णव, हरीश नवल आदि का योगदान सराहनीय है। अतः इस क्रम में हम व्यंग्य की

[16] हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास ,रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ 79

।

परंपरा को मुख्यतः दो भागों में बाँट सकते हैं- स्वतंत्रता पूर्व व्यंग्य व स्वातन्त्र्योत्तर व्यंग्य। स्वतंत्रतापूर्व व्यंग्य भारतेंदु व बाद के व्यंग्यकारों का युग है तो स्वातन्त्र्योत्तर युग में मुख्यतः परसाई और उनके समकालीन व्यंग्यकारों की परंपरा है।

स्वतंत्रता पूर्व 'भारतेंदु युग' -

आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग के रचनाकार अपने लेखन में चेतना और प्रगतिशीलता के कारण व्यंग्य का प्रयोग बराबर करते रहे हैं। एक तरह से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, बालकृष्ण भट्ट आदि से व्यंग्य की जिस गंभीर जीवन-दृष्टि का आरंभ हुआ था, वह अपने आपमें एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से गद्य में अनेक शैलियों, विषयों, जीवन-दृष्टियों तथा विधाओं का जन्म व विकास हुआ जोकि शिक्षित जनता जुड़ा। इसमें सबसे बड़ा योगदान भारतेंदु का था। इस बात की पुष्टि आचार्य शुक्ल भी करते हैं:- "इससे भी बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और वे उसे शिक्षित जनता के साहचर्य में ले आए। नई शिक्षा के प्रभाव से लोगों की विचारधारा बदल चली थी। उनके मन में देशहित, समाजहित आदि की नई उमंग उत्पन्न हो रही थी।"[17] भारतेंदु के इस महान कार्य की सराहना करते हुए शुक्ल आगे कहते हैं कि- "हमारे साहित्य को नए-नए विषयों की ओर प्रवृत्त करनेवाले बाबू हरिश्चंद्र ही हुए।"[18]तत्कालीन मानवजीवन पर आधुनिक सभ्यता का गंभीर प्रभाव पड़ा; जिसमें सांस्कृतिक, राजनैतिक और सामाजिक दबाव की स्थितियाँ शामिल की जा सकती हैं। इन सारी स्थितियों में रचनाकार वस्तुओं के अन्तर्सम्बन्धों को खोजने में ज्यों-ज्यों निपुण होता गया, त्यों-त्यों उसकी दृष्टि वैज्ञानिक होती गई और इसी संदर्भ में व्यंग्य का निर्माण हुआ।

नीचे भारतेंदु युग के महत्वपूर्ण लेखकों व उनके व्यंग्य का परिचय दिया जा रहा है। जिससे व्यंग्य परंपरा को एक शुरुआत मिल सके। साथ में व्यंग्य लेखन के बढ़ते विकास क्रम और उसमें बदलती परिस्थितियों के स्वरूप को किस रूप में अभिव्यक्ति इसकी भी चर्चा की गई है।

---

17 हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ 362

18 वही, पृ 363

।

भारतेंदुयुगीन महत्वपूर्ण व्यंग्यकार

1.भारतेंदु

उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण में पूरे देश में सांस्कृतिक जागरण की लहर तीव्र हो चुकी थी। देश में एक सशक्त मध्यवर्ग तैयार हो रहा था जो अंग्रेज़ी शासन की कुचालों से परिचित होने लगा था तथा देश के पिछड़ेपन पर चिंता करने लगा था। जीवन के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक सभी क्षेत्रों में परिवर्तन की जरूरत थी। भारतेन्दु इसी प्रगतिशील चेतना के प्रतिनिधि थे। उनमें देश की गिरती दशा का दुःख था। उनके लेखन में भारत को हर तरफ से लाचार कर देने वाली अंग्रेज़ी शासन की अनीति का वर्णन था। और अंग्रेज़ी शासन के अन्धे भक्तों पर तीख़ा व्यंग्य। 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' जैसी फैंटेसी के माध्यम से उन्होंने आधुनिक शिक्षा प्रणाली पर व्यंग्य किया है तो वहीं 'अंग्रेज स्तोत्र' लिखकर अंग्रेज़ शासकों को लालची और लुटेरा कहकर बड़े साहस का काम भी। उन्होंने भारतीयों के अंग्रेज़ी प्रेम को फटकारा है-

"भीतर तत्व न झूठी तेजी
क्यों सखि सज्जन नहि अंग्रेजी" और
"आँखें फूटें भरा न पेट
क्यों सखि सज्जन नहि ग्रेजुएट"[19]

भारतेंदु ने यह ध्यान दिया कि इस भारत को गरीब और निर्धन बनाने में अंग्रेज़ों की चाल है। जिस भारत देश को कभी 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था उसे इन अंग्रेज़ों ने लूटकर कंगाल बना दिया है। 18 मई 1874 में 'कविवचन सुधा' में भारतेंदु लिखते हैं- "जब अंग्रेज़ विलायत से आते हैं तो प्रायः कैसे दरिद्र होते हैं लेकिन जब हिंदुस्तान से विलायत

[19] भारतेंदु युग, रामविलास शर्मा, पृ 4

।

को जाते हैं तो कैसे धन कुबेर बनकर जाते हैं। इससे स्पष्ट हुआ कि रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंग्रेज़ ही हैं।"

2. पं बालकृष्ण भट्ट

यह राजनीति में तिलक के अनुयायी थे। इन्हें राजभक्ति और देशभक्ति एकसाथ करने वालों से दिक्कत थी। तभी यह कहते हैं:- "हमारा कथन है कि राजभक्ति और प्रजा का हित दोनों एक साथ कैसे निभ सकता है। जैसे हँसना और गाल फुलाना, बहुरि चबाना एक संग नहीं हो सकता ऐसे ही यह भी असम्भव और दुर्घट है।"[20] यह अंग्रेज़ों को 'कुटिलता की खान' कहते हैं। इन्होंने पाया कि इस समय सामाजिक चेतना का अभाव तो था ही साथ में मद्यपान, वेश्यागमन, चापलूसी, आलस्य आदि पूरी तरह समाज में फैल गया है। उन्होंने देखा कि एक समय जो पंडित समाज के सिरमौर होते थे आज वह यजमानी और दक्षिणा लेने की वृत्ति में खुद को धकेले जा रहे हैं। जिन्हें समाज का सचेतक होना चाहिए वह किसी और ही राह पर चल निकले हैं। अतः इन्होंने अपने नाटक 'बृहन्नला' में पंडितों की हीन वृत्तियों पर व्यंग्य कसा है।

3. बाबू बालमुकुंद गुप्त

इनकी गिनती भारतेंदु व द्विवेदी युग के बीच की कड़ी में होती है। यह एक यशस्वी पत्रकार भी थे। इनकी भाषा भारतेंदु मंडल के लेखकों से भिन्न थी और न ही इन्हें राजभक्ति जैसी विचारधारा से अर्थ था। बल्कि यह उसकी कड़ी निंदा करते थे। गुप्त जी के निर्भीक व्यक्तित्व के कारण उन्हें एक पत्र के सम्पादन से भी हटा दिया गया था। बताने का कारण था:- "वे गवर्नमेंट के विरुद्ध बड़ा कड़ा लिखते हैं; अतएव इस स्थान के योग्य नहीं हैं।"[21]

---

[20] हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, पृ 297

[21] परम्परा का मूल्यांकन, रामविलास शर्मा, पृ 111

।

भारतेंदुयुगीन व्यंग्य रचनाएँ-

यूँ तो भारतेंदु युग में व्यंग्य अपनी मात्रा में पर्याप्त था। तत्कालीन समय, परिस्थितियों व सामाजिक सजगता को मद्देनज़र रखते हुए जितना भी व्यंग्य लेखन हिंदी साहित्य से जुड़ा वह सम्मानीय है। इस साहित्यिक कला की अभिव्यक्ति के लिए उस समय के लेखकों ने विविध प्रकारों, रूपों, विधाओं आदि का प्रयोग किया। प्रत्येक लेखक ने अपनी काबिलियत के आधार पर किसी न किसी विधा के माध्यम से व्यंग्य लेखन किया। यद्धपि ज़्यादातर व्यंग्य निबंधों के माध्यम से ही प्रस्फुटित हुआ तथापि अन्य विधाओं में भी व्यंग्य की छटा छाई रही। जैसे- नाटक, काव्य आदि। जो निम्नांकित हैं -

काव्य

भारतेंदु युग में कई ऐसी कविताएँ लिखी गई जिसमें तत्कालीन समाज का विसंगतिबोध अभिव्यक्त होता है। उस समय की अनेकों सामाजिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक रूढ़ियों व आडम्बरों की साक्षी भारतेंदुयुगीन रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ों द्वारा भारतवर्ष का शोषण उस समय के लेखन का आधारतत्व था। शायद ही कोई व्यंग्य इससे अछूता रहा हो। तत्कालीन कवियों ने देशी, विदेशी, लाला, साहब पुलिस, एडीटर और अंग्रेज़ भक्त सभी पर तीखा व्यंग्य किया। भारतेन्दु तो इसके प्रतिनिधि थे ही।

पं० बालकृष्ण भट्ट ने टैक्सों की मारी जनता के दुःखों को व्यक्त किया तो पं० राधाचरण गोस्वामी ने 'इलबर्ट बिल' पर स्यापा लिखकर व्यंग्य-बाण छोड़े। पं बालमुकुन्द गुप्त ने 'सर सैयद का बुढ़ापा' शीर्षक कविता में मार्मिक व्यंग्य

।

लिखा है। इस प्रकार का व्यंग्यात्मक काव्य लिखकर भारतेन्दु युग के कवियों ने भविष्य के लिए एक सशक्त व स्वस्थ व्यंग्य परम्परा के द्वार खोल दिये थे।

नाटक

हिन्दी नाटकों में व्यंग्य को स्थान मिलना 'भारतेन्दु युग' से ही शुरू हो गया था। इस समय हास्य मिश्रित व्यंग्य नाटक ही ज्यादा मिलते हैं। भारतेन्दु के 'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति', 'अंधेर नगरी', 'विषमस्य विषमोषधम्' तथा 'जाति विवेकनी सभा' आदि को अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त हुई। 'बच्चन सिंह' के अनुसार भारतेंदु के नाटक का व्यंग्य मुख्यतः तीन अवस्थाओं पर मिलता है- सामाजिक , राजनैतिक और आर्थिक।[22]बच्चन सिंह 'भारत दुदर्शा' को पहला राजनीतिक नाटक और 'अंधेर नगरी' को पहला आधुनिक नाटक।"[23]

'वैदिक हिंसा, हिंसा न भवति' प्रहसन में अपने युग की सामाजिक व धार्मिक विकृतियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। इसमें राजा पुरोहित, मंत्री सभी स्वार्थ के प्रतीक हैं। तो वहीं 'विषस्य विषमौषधम्' भाण में देसी राजाओं के चारित्रिक दुर्बलताओं पर व्यंग्य किया है। भारतेंदु का 'भारत दुर्दशा' भारत के भाग्यवादी होने पर व्यंग्य प्रतीत होता है जहाँ 'भारत दुर्दशा' कहता है:- "कहाँ गया मूर्ख! जिसको अभी भी परमेश्वर और राजराजेश्वरी का भरोसा है। "[24]

इसके अतिरिक्त राधाचरण गोस्वामी का 'बूढ़े मुँह मुँहासे' तत्कालीन नेताओं के पाखण्डपूर्ण चरित्र को प्रकट करता है तो बालकृष्ण भट्ट के व्यंग्य नाटकों में 'जैसे काम वैसा परिणाम' , 'रेल का विकट खेल' लिखकर व्यंग्य परंपरा में अपना अविस्मरणीय योगदान देते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी का 'चौपट चपेट' भी इस समय का प्रसिद्ध व्यंग्य नाटक है।

---

[22] हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, पृ 299

[23] वही, पृ 299

[24] वही, पृ 299

।

निबंध

पूरे भारतेंदुमंडल की दृष्टि सबसे ज़्यादा यदि किसी विधा पर टिकी रही है तो वह 'निबंध' ही है। इस युग में सबसे ज़्यादा लेखनशैली निबंध में अपनाई गई। इसके पश्चात ही नाटक और काव्य आदि का क्रम है। भारतेंदु ने अपने निबंध 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' जिसे 'बलिया व्याख्यान' के नाम से भी जाना जाता है, में भारत की उन्नति और प्रगति की चर्चा की है तो भारतीयों के आलस्य, आत्मनिर्भर न होने पर व्यंग्य भी कसा है। वह इंग्लैंड और भारत की तुलना करते हुए कहते हैं:- "उसने एक हाथ से अपना पेट भरा दूसरे हाथ से उन्नति के काँटो को साफ किया।.... विलायत में गाड़ी के कोचवान भी अखबार पढ़ते हैं।....यहाँ उतनी देर कोचवान हुक्का पियेगा या गप्प करेगा। सो गप्प भी निकम्मी।"[25] आगे भारतेंदु कहते हैं- आलस्य यहाँ इतना बढ़ गया है कि मलूकदास ने दोहा ही बना दिया-

"अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गए सबके दाता राम॥"

इनके अलावा भारतेंदु कृत 'ईश्वर बड़ा विलक्षण', 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन', 'बादशाह दर्पण', प्रतापनारायण मिश्र का 'भेड़ियाधसान' व 'समझदार की मौत' बालमुकुंद गुप्त का 'शिवशम्भू के चिट्ठे' कुछ भारतेंदुयुगीन व्यंग्यात्मक निबंध हैं।

अतः पूरे भारतेंदुयुगीन परिदृश्य पर नज़र डाले तो पता चलेगा कि इनके लेखन पर एक ओर तो ब्रिटिश साम्राज्य निशाने पर था जिसमें धन लूटा जाना, भारतीय उद्योगों को नष्ट करना, अनुचित ब्रिटिश नीतियों के कारण अकाल, महामारी, पुलिस दमन, रिश्वत, टैक्स, चुंगी, नौकरशाही की फिज़ूलखर्ची थी तो दूसरी ओर भारतीय निशाने पर थे। जिसमें

25 भारतेंदु ग्रंथावली, भाग 6, संपा. ओमप्रकाश सिंह, पृ 68

।

उनकी जड़ता, आलस्य, अशिक्षा, पाखंड, बाल विवाह, सती प्रथा आदि विषय शामिल थे। इतना सबकुछ होने के बाद भी इस युग में व्यंग्य की रचना इतनी मात्रा में हुई यह सम्मान का विषय है। कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग में हिन्दी की हास्य और व्यंग्य परम्परा ने यौवन की प्राप्ति की। साहित्यकारों ने हास्य और व्यंग्य की अनिवार्य योजना द्वारा इस युग के साहित्य को जीवंतता दी।

भारतेंदु युगोत्तर-

जिस भारतेंदु युग में व्यंग्य की धारा को एक प्रवाह मिला था , एक गति मिली थी , वह यहाँ आकर रुक जाती है। उसके सामने भाषा की शुद्धता और हिंदी भाषा की उन्नति एक अवरोध बनकर खड़ी हो जाती है। द्विवेदी युग के साहित्यकार भाषा-परिष्कार के लिए प्रसिद्ध हुए। आचार्य 'महावीरप्रसाद द्विवेदी' जी ने सारा केंद्र हिंदी साहित्य की भाषा को परिमार्जित करने पर लगा दिया। और तत्कालीन लेखकों से भी इस आचरण की आशा रखी। इसके लिए वह उन्हें प्रशिक्षित भी करते थे। तो वहीं छायावाद में भावना की अतिशयता की प्रतीकात्मकता रही। कविजन अपनी भावनाओं में ही डूबे हुए थे। उन्हें व्यंग्य लिखने की फुर्सत ही कहाँ थी ! इस समय नारी सौंदर्य, प्रकृति चित्रण और रहस्य भावना ही अतिशयता की सीढ़ी चढ़ती जा रही थी।

इस युग में गिने-चुने ही व्यंग्यकार दिखते हैं जैसे- बद्रीनाथ भट्ट, जी०पी० श्रीवास्तव, उग्र आदि। कुछेक कहानियाँ प्रेमचंद ने भी लिखी जैसे- 'कफ़न', 'सद्गति', 'पूस की रात' आदि। प्रेमचंद के सर्वप्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' में भी व्यंग्य के कुछ बाण देखे जा सकते हैं। इनकी कहानियों के माध्यम से व्यंग्य को एक नई दिशा मिली। प्रेमचन्द की कहानियों में व्यंग्य, व्यंग्य के लिए नहीं आता अपितु कथा की माँग बनकर आता है।[26]

[26] हिंदी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, डॉ.मदालसा व्यास, पृ 11

।

प्रेमचंद ने 'पूस की रात' में किसान की गरीबी के माध्यम से सामाजिक भेदभाव व आर्थिक ग़ैर-बराबरी के कारणों को व्यंग्यात्मक रूप में उभारा है। यहाँ 'हल्कू' समस्त भारतीय किसानों का प्रतिनिधित्व है जैसे गोदान का 'होरी'। हल्कू की मूल समस्या गरीबी की है, बाकी समस्याएँ गरीबी के दुष्चक्र से जुड़ कर ही आई हैं। जो किसान राष्ट्र के पूरे सामाजिक जीवन का आधार है, उसके पास इतनी ताकत भी नहीं है कि 'पूस की रात' की कड़कती सर्दी से बचने के लिए एक कंबल खरीद सके। दूसरी ओर, समाज का एक ऐसा वर्ग है जिसके पास संसाधनों की इतनी अधिकता है कि उन्हें वह खर्च भी नहीं कर पाता है। प्रेमचंद ने सर्दी के प्रतीक से इन दोनों वर्गों की तुलना दिखाते हुए समाज की कड़वी हकीकत को उकेरा है- "हल्कू ने घुटनियों को गर्दन में चिपकाते हुए कहा– क्यों जबरा, जाड़ा लगता है ? कहता तो था , घर में पुआल पर लेट रह, तो यहाँ क्या लेने आये थे । अब खाओ ठण्ड, मैं क्या करूँ। .... कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे। ...। इस 'ठंडे' होने' का अर्थ उस संघर्षमयी जीवन की समाप्ति से है जिससे हल्कू जैसे हजारों किसान जूझ रहे हैं। कहानी का अंत इसी नाटकीय मोड़ पर हुआ है जहाँ हल्कू किसानी छूटने से खुश नज़र आता है- "दोनों खेत की दशा रहे हैं। मुन्नी के मुख पर उदासी छायी थी पर हल्कू प्रसन्न था। मुन्नी ने चिंतित होकर कहा – अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी। हल्कू ने प्रसन्न-मुख से कहा – रात की ठण्ड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा ।"[27]

अतः भले ही इस युग में व्यंग्य लिखने वालों की बहुतायत कमी रही हो और लेखन का आधार रोमांसवाद व प्रकृति चित्रण ने ले लिया हो फिर भी इस युग में एक क्रांतिकारी लेखक हुए जिनकी कुछ रचनाएँ व्यंग्य की दृष्टि से रची गयी हैं। जिन्हें हिंदी साहित्य जगत 'निराला' के नाम से जानता है।

निराला

गद्य-पद्य दोनों रूपों में व्यंग्य रचने वाले क्रांतिकारी लेखक 'निराला' ने अपनी अलग पहचान बनाई है। बच्चन सिंह इनके बारे में लिखते हैं- "विरोधियों से लड़ने के लिए इससे कारगर हथियार और दूसरा नहीं था। इसे निराला ने रक्षाकवच के रुप में अपनाया।" पूँजीवादी सभ्यता के दुष्परिणाम और राजनीतिज्ञों का ढोंग ही निराला के व्यंग्यों का मुख्य

---

[27] https://www.apnimaati.com/2017/11/blog-post_62.html?m=1

।

आधार है। "व्यंग्य की आत्मा को पहचानने वाली पैनी दृष्टि भारतेन्दु के बाद सीधे निराला को मिली थी।"[28]कबीर और भारतेन्दु के समकक्ष तीखा व्यंग्य निराला की कविताओं और कथाओं में मिलता है। अपने सम-सामयिक सामाजिक-राजनैतिक परिदृश्य पर सार्थक व्यंग्य लिखने में निराला को सफलता मिली है। निराला की कुछ व्यंग्यात्मक रचनाएँ हैं- वे 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर' तथा 'दीन' शीर्षक कविताओं में समाज की ओर उन्मुख होते हैं, व 'नए पत्ते' में हाईकोर्ट के वकीलों की लालची प्रवृत्ति दिखाते हैं तो 'महँगू महँगा रहा' में ढ़ोंगी नेताओं की ख़बर लेते हैं। 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिया' उनके यथार्थवादी व्यंग्य उपन्यास हैं।

उनकी सबसे सशक्त व्यंग्य रचना 'कुकुरमुत्ता' है जिसे उस युग का सबसे बड़ा व्यंग्य माना गया है। इसमें 'कुकुरमुत्ता' सर्वहारा व आमजन वर्ग का प्रतीक है और 'गुलाब' पूँजीवादी वर्ग का। कुकुरमुत्ता गुलाब से कहता है-

भूल मत गर पाई खुशबू, रंगोआब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है कैपीटलिस्ट
कितनों को तूने बनाया गुलाम
माली कर रक्खा, सहाया जाड़ा घाम....।

निराला की प्रतिभा से प्रभावित होकर डॉ 'शेरजंग गर्ग' कहते हैं:- "उनमें प्रखर बुद्धि तो थी ही हृदय की विशाल संवेदनशीलता भी। द्वितीय महायुद्ध के बाद देश की बदली हुई परिस्थितियों में इनकी परवर्ती रचनाओं में व्यंग्य के तेवर और तीखे हुए। अतः निराला के संबंध में यह निस्संकोच स्वीकार किया जा सकता है कि यह हिन्दी के युग-प्रवर्तक व्यंग्यकार है जिन्होंने व्यंग्य को अभिजात्य और छंद दोनों से मुक्त किया।" [29]

---

[28] हिंदी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, डॉ मदालसा व्यास, पृ 15

[29] स्वातन्त्र्योत्तर कविता में व्यंग्य, शेरजंग गर्ग, पृ 183

।

इसी तरह नागार्जुन ने 'आओ रानी हम ढोएंगे पालकी' , 'अकाल और उसके बाद' कुछ व्यंग्यात्मक कविताएँ लिखी हैं। 'साँप' शीर्षक से शहरी सभ्यता पर सशक्त व्यंग्य लिखकर 'अज्ञेय' ने भी व्यंग्य परम्परा को आगे बढ़ने में सहारा दिया।

नाटक

इसी समय व्यंग्य नाटककार के रूप में 'जी.पी. श्रीवास्तव' और 'रामदास गौड़' का नाम उल्लेखनीय है। जी.पी. श्रीवास्तव के नाटक 'दुमदार आदमी' , 'मर्दानी औरत' , 'चोर के घर छिछोरे' , 'उल्टफेर' और रामदास गौड़ का 'ईश्वरीय न्याय' आदि नाटक प्रसिद्ध है।

समग्र अध्ययन के पश्चात कह सकते हैं कि स्वतंत्रता पूर्व भारत में जहाँ सरकार के विरुद्ध लेखन की खुली अनुमति नहीं थी उस दृष्टि से जितना व्यंग्य रचना संसार हमें दिखाई देता है वह संतोषजनक है। परन्तु इस रचना संसार की भारतेंदु युग से तुलना की जाए तो इस युग का व्यंग्य प्रश्न और संदेह के घेरे में आ जाता है। चूँकि भारतेंदुमंडल के लेखकों ने जिस सीमा तक व्यंग्य का क्षेत्र बढ़ाया है उसकी तुलना में इस समय कुछ भी नहीं हुआ। जबकि भारतेंदुयुग से इस युग तक आते-आते करीब चार दशक के समय हो चुका था। बावजूद उसके इस समय व्यंग्य की हालत और संख्या पस्त रही। होना यह चाहिए था कि अपने पूर्व के लेखकों को प्रेरणास्त्रोत बनाकर लेखन करना चाहिए था व साहस दिखाना चाहिए था परन्तु ऐसा हो न सका। यह खेद की बात है। लेकिन 'भागते भूत की लँगोटी ही सही' । अतः इस युग में जितना भी व्यंग्य रचा गया वह भी व्यंग्य परम्परा के विकास में योगदान देता है।

'स्वातन्त्र्योत्तर युग ‘हरिशंकर परसाई’ तथा समकालीन व्यंग्य -

।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत ने प्रजातंत्र में प्रवेश किया, किन्तु स्वतंत्रता का यह उल्लास सहज रूप में आत्मसात नहीं किया जा सका। क्योंकि उसके साथ ही जुड़ा था- देश विभाजन का रक्तपात, अत्याचार और अमानवीयता। इतने संत्रास को भोगकर भी अनेक आशाएँ देशवासियों ने की थी। किन्तु यथार्थ विसंगतियों से भरा निकला। घूसखोरी और चोरबाजारी का तांडव नृत्य होने लगा। आदर्श पर चलने वाले मूर्ख माने जाने लगे। सिद्धान्तविहीन नेतृत्व और भ्रष्ट नौकरशाही अपना रंग दिखाने लगी। कुल मिलाकर 'सैंया भये कोतवाल अब डर काहे का' वाली स्थिति हो गयी। देश की वर्तमान विसंगतिमय परिस्थितियाँ निरंतर व्यंग्य लेखन को प्रोत्साहन दे रही थी। व्यंग्य जैसे इस काल के लिए अनिवार्य बन गया हो। डॉ. 'मदालसा व्यास' ने कहा है:- "स्वातंत्र्योत्तर युग में कतिपय प्रखर यथार्थ द्रष्टा रचनाकारों के माध्यम से व्यंग्य को पुनः एक स्वतंत्र विधा के रूप में महत्त्व प्रदान किया गया। इन रचनाकारों के माध्यम से व्यंग्य विधा को उसकी सारी क्षमताओं के साथ प्रस्तुत करने की कोशिश की है और उसका आश्रय लेकर सम-सामयिक जीवन-विकृतियों का निर्ममतापूर्वक उद्धाटन किया है। सम-सामयिक जीवन का शायद ही कोई पहलू हो जो इन व्यंग्यकारों की पैनी निगाह से छूट पाया हो।"[30]

समकालीन युग में समाज की विसंगतियों का साहसपूर्वक मुकाबला करने और व्यंग्य को सही शैली प्रदान करने वाले व्यंग्यकारों में हरिशंकर परसाई का नाम उल्लेखनीय है। उनकी रचनाएँ भारतीय जन-जीवन की समस्याओं से जुड़ी हैं। स्वातन्त्र्योत्तर भारत की सामाजिक, शैक्षिक व राजनैतिक यथार्थ तस्वीरें उनके लेखन में देखी जा सकती है। परसाई की रचनाओं ने एक प्रबुद्ध पाठकवर्ग को तैयार किया है। भारतीय मनुष्य को तकलीफ देने वाले हर तंत्र की पड़ताल की है परसाई ने। उनकी ऐसी ही कुछ रचनाएँ हैं- 'सदाचार का ताबीज' , 'भोलाराम का जीव' , 'वैष्णव की फिसलन' , 'जैसे उनके दिन फिरे' , 'सुदामा के चावल' , 'रामसिंह की ट्रेनिंग' , 'अकाल उत्सव' आदि।

[30] हिंदी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, डॉ मदालसा व्यास, पृ 16

।

परसाई सहज अभिव्यक्ति के अप्रतिम कलाकार हैं। 'पुरुषोत्तम अग्रवाल' ने अपने आलेख में कहा:- ‘‘जीवन के अशुभ और असुन्दर से साक्षात्कार कराने के लिए परसाई के पात्र विसंगतियों से पैदा होते हैं। वे कीर्तन या उपदेशक के रूप में नहीं , बल्कि व्यंग्य को योद्धा के रूप में देखते हैं। अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए जीता आदमी सदैव उनके व्यंग्य का शिकार हुआ है। वे कुचले हुए व्यक्ति पर हँसते नहीं, उसे लड़ने के लिए तैयार करते हैं और मानवीय रिश्तों को नष्ट करने वाली सत्ता की क्रूरता के खिलाफ उसे खड़ा करते हैं। इसी कारण उनका लेखन आस्था और व्यथा की तनावपूर्ण कलात्मकता का श्रेष्ठ उदाहरण है।"[31]

ठीक ऐसे ही परसाई के व्यंग्य का मोल इस समाज में जो स्थान रखता है उसका वर्णन डॉ. मदालसा व्यास ने इस तरह किया है- "परसाई का व्यंग्य जीवन के विविध पक्षों का ईमानदार चिंतन है।" [32]डॉ. मदालसा व्यास के अनुसार परसाई के व्यंग्यों की विशेषता ही उसके चहुँमुखी रूप में है। परसाई समाज के जिस भी कोने में अनहोनी देखते हैं उसको अपने लेखन विषय में स्थान दे देते हैं। फिर चाहे उसका क्षेत्र कैसा भी अथवा कोई भी हो। यही परसाई की विविधता है।

हरिशंकर परसाई की रचनाओं में व्यंग्य का स्वरूप : एक संक्षिप्त परिचय

हरिशंकर परसाई की रचनाओं में व्यंग्य बदलाव की दृष्टि से ही नहीं आता। उसके स्थान पर जड़ और रूढ़िहीन वस्तुओं को नष्ट करके नवीन की स्थापना करने हेतु तैयार रहता है। उनके व्यंग्य-बाणों का लक्ष्य बहुत दूर तक और व्यापकता लिए है। जिसमें कई दिशाएँ शामिल हैं। यह दिशाएँ समाज, राजनीति, धर्म, पाखंड, धोखेबाज़ी, अन्याय, प्रेम-प्रपंच, दल-बदली, जातिवाद, घूसखोरी आदि तक फैली है। इस दृष्टि से परसाई के व्यंग्य विषयवस्तु की दृष्टि से व्यापकता लिए हैं। उदाहरण के लिए कुछ रचनाओं का दृष्टिपात किया जा सकता है-

[31] वही, पृ 17

[32] वही, पृ 17

।

हरिशंकर परसाई ने मध्यवर्ग को बड़ी बारीकी से देखा है। इस वर्ग में उन्हें उसकी बेबसी भी दिखती है तो उसकी स्वार्थपरकता भी। कहीं उसके प्रति वह फिक्रमंद नज़र आते हैं तो कहीं उसकी चालाकी से सावधान रहने हेतु सचेत करते हैं। यही एक ऐसा वर्ग है जो समय पर सबसे जल्दी पलटी मारता है। अपनी सुविधा के अनुसार कहीं भी लुढ़क सकता है। एकदम 'बेपेंदी के लौटे' की तरह। स्वयं को भीगने से बचाने के लिए यह दूसरे की छतरी भी छीन सकता है। यही है मध्यवर्ग। उसे अपनी इच्छाओं, आशाओं, चिंताओं, स्वार्थ और चालाकी में जल्दी फ़र्क नज़र नहीं आता। उसके अनुसार जो किया जाता है वही सही रहता है।

एक तरफ जब परसाई मध्यवर्ग की चिंता में मग्न रहते हैं तो वह 'राम का दुख और मेरा दुख' जैसा व्यंग्य लिखते हैं। जिसमें मध्यवर्ग की दारुण स्थिति को उजागर करते हैं। जहाँ राम को पुराणों से निकालकर मध्यवर्ग की झोपड़ी में प्रवेश कराया गया है। इस संदर्भ में लेखक कहता है:- "राम की बात राम जाने। मैं बादलों की गर्जना से डरता हूँ, पर इस डर का कारण जानता हूँ। नहीं, राम वाला कारण नहीं है। मेरे डर का कारण कोई हरण की गई प्रिया नहीं है, वह मकान है जिसके छत तले मैं बैठा हूँ। "[33]

तो दूसरी ओर मध्यवर्ग की स्वार्थपरकता की असलियत का वर्णन करते हुए 'एक मध्यवर्गीय कुत्ता' जैसा व्यंग्य लिखते हैं। जहाँ मार्क ट्वेन के माध्यम से अपनी बात पुष्ट करते हैं:- "यदि आप भूखे मरते कुत्ते को रोटी खिलाएँ तो वह आपको नहीं कटेगा। इंसान और कुत्ते में यही मूल अंतर है।"[34] इसके अतिरिक्त उनका 'श्रवण कुमार के कंधे' व 'ग्रीटिंग कार्ड और राशन कार्ड' निबन्ध भी इसी विषयवस्तु पर आधारित है।[35]

इनका 'प्रेम की बिरादरी' एक सामाजिक कलंक है जोकि मिटने का नाम नहीं लेता। यह जातिवाद पर आधारित व्यंग्यात्मक निबंध है। इस व्यंग्य के माध्यम से परसाई ने भारत में बढ़ते जातिवाद का नंगा चित्र खोलकर रख दिया है।

---

[33] मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, हरिशंकर परसाई, पृ 84

[34] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 10

[35] हरिशंकर परसाई- चुनी हुई रचनाएँ, भाग 1 संपा. कमला प्रसाद, प्रकाश दूबे, पृ 313

।

उन्होंने इस जाल में फँसते हुए प्रेमी-प्रेमिकाओं के दमघोंटू जीवन के साथ पारिवारिक दबाव और जाति का आतंक किस तरह इन युगल जोड़ों को दबाए रहता है इसके भी जीवंत चित्र सामने रखे गए हैं।

समाज में प्रेम की भी बिरादरियाँ बन गयी है। यदि वह अपनी बिरादरी से बाहर जाती है तब उसे कितनी यातनाएँ झेलनी पड़ सकती है यह किसी से छिपा नहीं। आये दिन अखबार और टी.वी न्यूज़ इसकी सुर्खियाँ बटोरते रहते हैं। कभी कहीं किसी का गला रेत दिया तो कभी किसी को पेड़ पर लटका दिया। कभी किसी को कैरोसिन से फूँक दिया तो कभी किसी की जुबान काट दी। अंतर्जातीय प्रेम और विवाह आज भी हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या बन गया है। लेकिन इस समस्या का हल है। जातिवाद ख़त्म करने का इससे अच्छा उपाय क्या ही होगा यदि उस समाज में अंतर्जातीय विवाह या प्रेम सम्बन्ध स्वीकार किए जाएँ।[36]

'बेईमानी की परत' व्यक्ति चरित्र में बेईमानी किस हदतक घुस जाती है इसका सटीक वर्णन है। लेखक कहता है:- " शरीर जब तक दूसरों पर लदा हुआ होता है, तब तक मुटाता है। जब वह अपने ऊपर चढ़ने लगता है तब दुबलाने लगता है। जिन्हें मोटे रहना है, वो दूसरों पर लदे रहने का सुभीता कर लेते हैं- नेता पर लदना, साधु भक्तों पर, आचार्य महत्वाकांक्षी छात्रों पर और बड़ा साहब जूनियरों पर।"[37]

'वो ज़रा वाइफ है न' में उन सज्जन पुरुषों पर व्यंग्य किया है जो दूसरों की पत्नियों को तो आज़ादी दिलाना चाहते हैं लेकिन अपनी पत्नी की बारी आते ही- 'वो ज़रा वाइफ है न' कहकर कन्नी काट लेते हैं। ऐसे महान पुरुषों के कारण ही स्त्रियों की स्वतंत्रता ख़तरे में आ जाती है। ऐसे पुरूष ऊपर से तो क्रांतिकारी, स्वतंत्रताप्रेमी और समानता की बात करते हैं लेकिन भीतर-ही-भीतर एक तानाशाह लिए बैठे रहते हैं। जो दूसरों की आज़ादी को अपनी मुट्ठी में दाबे रहते हैं। ऐसे पुरुषों में से दुमुँहेपन की दुर्गंध आ रही होती है।[38]

---

[36] अपनी-अपनी बीमारी, हरिशंकर परसाई, पृ 37

[37] मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, हरिशंकर परसाई, पृ 38

[38] हरिशंकर परसाई- चुनी हुई रचनाएँ, भाग 1 संपा. कमलाप्रसाद, प्रकाश दूबे, पृ 348

।

'भोलाराम का जीव' पुलिस प्रशासन में बढ़ती घूसखोरी पर करारा व्यंग्य है। आज देश भर में कोई भी सरकारी-गैर सरकारी काम हो उसके लिए रिश्वत देनी मजबूरी हो गयी है। अन्यथा आप काटते रहिए चक्कर आपका काम होने से रहा। सिस्टम एकदम ठप्प पड़ चुका है, एकदम जड़ हो गया है जिसे चलाने के लिए नोटों का गर्म वजन रखना पड़ता है। चाहे आपका इंश्योरेंस का पैसा हो, चाहे आपको कोई दस्तावेज बनवाना हो, चाहे अपने बच्चे का एडमिशन कराना हो या कुछ भी। आज के दौर में रिश्वत दिए बिना कोई भी काम सरल नहीं। उदाहरण के तौर पर 'लगे रहो मुन्ना भाई' मूवी के उस सीन को लिया जा सकता है जब एक बुजुर्ग अपनी पेंशन की फाइल को पास कराने के लिए कितने चक्कर लगा चुका होता है परन्तु उसका काम नहीं होता। अंततः मुन्ना की गाँधीगिरी के द्वारा उसकी पेंशन फाइल आगे बढ़ा दी जाती है। परन्तु ऐसा भी नहीं है कि बिना रिश्वत दिए आपके काम नहीं हो सकते। हो सकते हैं लेकिन आपको उसके भुगतान के लिए तैयार रहना होगा।[39]

'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' में राजनीतिक व्यंग्याभिव्यक्ति की झलक है। देश के कर्णधारों ने ऐसी इच्छा जताई थी कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में समाजवाद की स्थापना की जाएगी परन्तु देश को आज़ाद हुए कितने वर्ष हो गए लेकिन समाजवाद का कोई अता-पता नहीं। कहने को तो सभी समाजवाद का झंडा उठाकर सीना ताने आगे भागे आते हैं लेकिन ज़मीनी हकीकत इससे बहुत परे है। इसी पर परसाई व्यंग्य कसते हुए कहते :- "हर साल घोषणा की जाती है कि समाजवाद आ रहा है, परन्तु कहाँ अटक गया ? लगभग सभी दल समाजवाद को लाने का दावा करते हैं, लेकिन वह आ नहीं रहा।"[40]

'धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र' में अवसरवादी नेताओं पर व्यंग्य किया है जो सरकार बनाने के लिए विरोधी विचारधारा वालों से भी साँठ-गाँठ कर लेते हैं। वर्तमान में भी कई ऐसे नेता हैं जिनका राजनैतिक कोई ईमान-धर्म नहीं। केवल उनका मकसद सत्ता के साथ बने रहना है और दबा के पैसा खाना। सरकारी सुविधा पर मोटा होना है। ऐसे नेता एक समय जिस पार्टी को

---

[39] सदाचार का तावीज़, हरिशंकर परसाई, पृ 60

[40] ठिठुरता हुआ गणतंत्र, हरिशंकर परसाई, पृ 4

।

गाली दे रहे होते हैं, देखते हैं कि शाम तक उसी पार्टी के आलाकमान के चरणों में पड़ा हड्डी चाट रहा होता है। जैसे ही अपनी पार्टी को संकट में देख या पार्टी गिरने का अंदेशा मालूम होता है तुरंत भागे चले जाते हैं दूसरी पार्टी में। और अपनी बोली लगवाते हैं। कोई दो करोड़ में बिकता है तो कोई चार करोड़ में। जिसकी जैसी हैसियत उसको उतनी राशि। जिसकी जितनी पावर उसे उतनी ही भारी पोस्ट। जनसेवा के नाम पर अपनी झोली भरना और ऐश करना ऐसे नेताओं का विशिष्ट गुण होता है। ये राजनीति न होकर एक धंधा बन जाता है, काला धंधा।

'स्नान' निबंध में भारतीय समाज की रोज़मर्रा की रूढ़ियों पर प्रहार किया है तो 'किताबों की दुकान और दवाओं' उन लोगों पर व्यंग्य है जो दूसरों से काम निकलवाना जानते हैं। इसके अतिरिक्त इस युग में जिन विधाओं में व्यंग्य की झलक दिखती है वह निम्नांकित है-

काव्य

परसाई युग में कुछ कवि हुए हैं जिनकी कविताओं में व्यंग्य का पुट दिखाई देता है। यह व्यंग्य सत्ता की अन्यायी वृत्ति के विरुद्ध उठा है। जिसमें फुटपाथ पर सोने वालों के प्रति सहानुभूति है तो उन पर गाड़ी चढ़ा देने वालों के खिलाफ रोष। 'कुँवर नारायण' ने शोषणपरक व्यवस्था और समकालीन भ्रष्ट शासन प्रणाली पर करारा व्यंग्य करते हुए ‘पहला सवाल’ नामक कविता में लिखते हैं-

"सुबह रात भर के जागे लोग थककर
सड़कों फुटपाथों पर सोये पड़े थे।
कैसी विडम्बना है कि जब वे जागे
उन पर गलत जगह गलत वक्त सोने का इल्ज़ाम लगाया।।"[41]

---

[41] http://ignited.in/I/a/293167

।

तो वहीं 'धूमिल' ने देखा कि इस देश में जनतंत्र शब्द महज़ एक मजाक बन गया है। कवि जनतंत्र पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं-

‘‘ दरअसल, अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है।।’’[42]

इसके अतिरिक्त दुष्यंत की 'साये में धूप' , मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' कविता भी व्यंग्य की दृष्टि से ग्रहणीय है। रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध' , 'रामदास' , 'हँसो-हँसो जल्दी हँसो' , धूमिल की 'मोचीराम' , 'संसद से सड़क तक' , 'कल सुनना मुझे' , 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' आदि व्यंग्यात्मक काव्य हैं।

व्यंग्य नाटककार

परसाई युग में कुछ व्यंग्य नाटककारों की भी गणना है जिन्होंने तत्कालीन समय की माँग अनुसार विभिन्न विषयों को व्यंग्य का आधार बनाया। इनमें प्रमुख हैं- हमीदुल्ला की 'उलझी आकृतियाँ' जो धन की झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा के रूप में अभिव्यक्त हुआ है तो उनके दूसरे व्यंग्य नाटक 'दरिंदे' में सभ्य मनुष्य में पशु का चित्रण करके उसकी पाशविक वृतियों पर व्यंग्य किया है। वहीं शंकर शेष के 'एक और द्रोणाचार्य' में जातिगत विसंगति के माध्यम से गम्भीर चोट की है जिसे व्यंग्य की दृष्टि से भी देखा जा सकता है। इसमें शैक्षणिक संस्थानों में किस स्तर तक जातिगत वैमनष्यता बढ़ती जा रही है, का वर्णन है।

---

42 वही

।

इस युग के सबसे बड़े व्यंग्य नाटककारों में से एक 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना' का 'बकरी' नाटक बहुत प्रसिद्ध रहा। जिसका कथानक देश में बढ़ती अंधविश्वासी परम्परा और अज्ञानता से जुड़ा हुआ है। गाँधी जी की बकरी को आधार बनाकर राजनीति के ठेकेदार जनता का किस तरह से शोषण कर रहे हैं इसका जीवंत उदाहरण यह नाटक है।

इस क्रम में अन्य व्यंग्य नाटकों में शरद जोशी का 'एक था गधा' और 'अंधों का हाथी' , राजेश जैन का 'धक्कापंप' और 'वायरस' आदि सम्मिलित हैं।

व्यंग्य उपन्यास

इस युग के सबसे बड़े व्यंग्य उपन्यासकार के रुप में श्रीलाल शुक्ल को देखा जा सकता है। जिन्होंने 'रागदरबारी' लिखकर व्यंग्य उपन्यास के लिए मील का पत्थर साबित किया। परन्तु इससे पूर्व रांगेय राघव व हरिशंकर परसाई के उपन्यास लिखे जा चुके थे। एक ओर रांगेय राघव के ‘हुजूर’ उपन्यास में व्यंग्य देखने को मिलता है जिसमें एक कुत्ते को नायक के रूप में चित्रित किया गया है। तो दूसरी ओर हरिशंकर परसाई के ‘रानी नागफनी की कहानी' में समाज, शिक्षा और राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त घोर छल का यथार्थ खाका प्रस्तुत किया है। इसकी भूमिका में परसाई कहते हैं:- "फैंटसी के माध्यम से मैंने आज की वास्तविकता के कुछ पहलुओं की आलोचना की है।"

व्यंग्य उपन्यास की इस परम्परा में 1968 में प्रकाशित श्रीलाल शुक्ल कृत ‘राग दरबारी’ मील का पत्थर माना जाता है। लेखक ने राग दरबारी में वर्तमान विघटित समाज का व्यंग्यपूर्ण चित्रण करते हुए व्यवस्था की अव्यवस्था पर करारी चोट की है। ‘इससे पूर्व हिन्दी में ऐसा उपन्यास लिखा ही नहीं गया।’ राग दरबारी उपन्यास का 'शिवपालगंज' एक विशेष गाँव न होकर समूचा भारत है। आज़ादी के बाद भारत का हर गाँव स्वयं पूर्ण विकसित होने वाला था परंतु उसकी हालत क्या हो गयी इसका जीवंत उदाहरण है 'राग-दरबारी।'

।

इसके अतिरिक्त बदीउज़्मा का 'एक चूहे की मौत', डॉ शंकर पुणतांबेकर का 'एक मंत्री स्वर्गलोक', श्रवणकुमार गोस्वामी का 'जंगल तन्त्रम', नरेंद्र कोहली का 'आश्रितों का विद्रोह', श्यामसुंदर घोष का 'एक उलूक कथा', सुदर्शन मजीठिया का 'कागज़ी सुल्तान' , मुद्राराक्षस का 'प्रपंच मंत्र' और ज्ञान चतुर्वेदी का 'बारामासी' व ' नरक यात्रा' आदि देखे जा सकते हैं।

वर्तमान में जिन लोगों ने व्यंग्य की इस सुदीर्घ परम्परा को आगे बढ़ाया और इस रचनात्मक लेखन की बागडोर सम्भाल रखी है उनमें प्रमुख हैं- हरिश नवल , प्रेम जनमेजय , सुरेशकान्त , विष्णु नागर , ज्ञान चतुर्वेदी , गिरीश पंकज , गोपाल चतुर्वेदी आदि।

निष्कर्ष रूप में देखा जा सकता है कि स्वातन्त्र्योत्तर भारत में व्यंग्य लेखन का हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। व्यंग्य की दृष्टि से देखा जाए तो अनेक कवियों और लेखकों ने सशक्त व्यंग्य रचनाएँ लिखकर अपना-अपना सहयोग दिया तथा वर्तमान में व्यंग्य अपने उत्कर्ष को प्राप्त कर रहा है। स्वतंत्रतापूर्व भारत में व्यंग्य की जो यात्रा अपनी धीमी गति से शुरू हुई थी उसे इस नवीन भारत में खूब तेज़ी से दौड़ने का अवसर प्राप्त हुआ। नए-नए विषयवस्तु उसके लेखन के आधार बने जिससे व्यंग्य की व्यापकता व विविधता बढ़ी। रोज़मर्रा और छोटे-से-छोटे विषयों पर लिखना जिन लेखकों को न-गवारा मालूम होता था उन सभी विषयों पर घातक व्यंग्य लिखकर परसाई ने इन्हें साहित्य की मेन स्ट्रीम में लाने का उद्योग किया है। इससे व्यंग्य का मान तो बढ़ा ही है साथ ही परसाई से प्रभावित होकर व्यंग्यकारों की एक लड़ी-सी उभर कर सामने आई है। लिहाज़ा आज व्यंग्य एक सुरक्षित विधा के रूप में स्थापित है, परंतु साहित्य की अन्य विधाओं में कथासाहित्य और काव्य जितनी मात्रा में सृजित हो रहा है उस दृष्टि से व्यंग्यकारों को अभी बहुत-सा कार्य करना शेष है। काव्य, नाटक और उपन्यास में चित्रित व्यंग्य यदाकदा पढ़ते ही रहते हैं। साहित्य की इन विधाओं के अलावा व्यंग्य निबंध भी देखते को मिलते हैं। अगले अध्याय में आधुनिक निबंध साहित्य के अंतर्गत व्यंग्य निबंध और हरिशंकर परसाई के बारे में विवेच्य प्रस्तुत किया जा रहा है।

।

द्वितीय अध्याय

हरिशंकर परसाई और आधुनिक निबंध साहित्य

हरिशंकर परसाई और विधा 'व्यंग्य' का संबंध ठीक वैसे ही देखा जाता है जैसे व्यक्ति और समाज का। जैसे पेड़ और उस पर लगे फल-फूल का। जैसे पेड़ की पत्तियों और उसकी शाखाओं को आप पेड़ से अलग करके नहीं देख सकते ठीक ऐसे ही हिंदी साहित्य की आधुनिक विधा व्यंग्य से आप परसाई को किसी भी कीमत पर अलग करके नहीं देख सकते। यह इस विधा के पुरोधा हैं। परसाई इस विधा के प्रवर्तक न होते हुए भी प्रवर्तक के समान हैं, इसको गति प्रदान करने वाले माने जाते हैं। उन्होंने इस विधा को नई जान दी है। इस मरती हुई विधा को उन्होंने दोबारा से जीवन दिया है। जैसाकि पिछले अध्याय में कहा गया है 'मुर्दे में जान फूँकने का काम किया'। हरिशंकर परसाई अपने व्यक्तित्व में एकदम जोशीले, भड़कीले, गलत के खिलाफ सीधे खड़े होने वाले रूप में दिखते हैं। उनके जीवन में जिस ऊर्जा और तेज़ की झलक दिखाई देती है उनका लेखन भी उनके व्यक्तित्व के समान ही नज़र आता है। चूँकि आपका व्यक्तित्व, आपके विचार, आपकी मानसिकता ही आगे चलकर आपकी कलम का हिस्सा बनती है। जो आपके ज़ेहन में सदैव चल रहा होता है आपका मष्तिष्क भी आपको उसी ओर गतिशील करता है। तब आप एक लेखक के तौर पर उसी मानसिकता को प्रतिबिंबित करते हैं जो आपके अंदर उमड़-घुमड़ रहा होता है। इस दृष्टि से परसाई भी समाज की विसंगति के विरुद्ध अपने अंदर हो रही उथल-पुथल का दृश्यांकन करने में सफल होते हैं।

परसाई ने सदैव परेशानियों का डटकर सामना किया है। कभी उनसे पीछे भागना या मुँह मोड़ना उनके संस्कार से झलका ही नहीं। यह सभी संस्कार उन्हें उनके परिवारजनों से तो मिले ही हैं, साथ में परसाई उन लोगों से भी बखूबी प्रभावित रहे हैं जिनका व्यक्तित्व भी कुछ इस प्रकार का रहा है। क्योंकि व्यक्ति की पसंद, उसका व्यवहार और उसका व्यक्तित्व ठीक अपने जैसे व्यक्तित्व की तलाश सहज ही कर लेता है। उसके लिए उसे किसी दौड़धूप की आवश्यकता नहीं पड़ती। हाँ फिर उस व्यक्तित्व को और भी गहराई से जानने के लिए वह उसका अध्ययन शुरू कर देता है। ठीक इसी

।

प्रकार से परसाई पर कबीर, निराला, मुक्तिबोध व बालमुकुंद गुप्त जैसे लोगों का बहुत गहरा प्रभाव रहा है। इन्हीं सबसे परसाई पूरे परसाई बन सके हैं। अन्यथा हम आज जिस परसाई से परिचित हैं उसके स्थान पर कोई और ही परसाई देखने को मिलते।

परसाई हिंदी साहित्य में अपने निबंधों के लिए जाने जाते हैं। उसका बहुत बड़ा कारण उनके समस्त लेखन में निबंधों की बहुलता से है। परसाई का पूरा लेखन छः खंडों में प्रकाशित हुआ है जिसमें निबंधों की संख्या बहुत ज़्यादा है। चाहे वह चिंतनपरक हों या मनोरंजन सम्बन्धी। चाहे उनके अखबारों व पत्रिकाओं में प्रकाशित कॉलम हों या कुछ और। परन्तु इन निबंधों की मात्रा उनके लेखन में सबसे ऊपर है। और इनका समस्त निबंध लेखन आधुनिक युग के स्वातन्त्र्योत्तर भारत से निकलकर आया है।

ऐसे तो हिंदी साहित्य में निबंध का आगाज़ आधुनिक युग के 'भारतेंदु युग' जिसे प्रथम युग या नए ज़माने का प्रथम उत्थान भी कहा जाए तो कोई हानि नहीं होगी। और न ही किसी तरह का विवाद। विवाद इसलिए भी कि हिंदी साहित्येतिहासकारों ने हिंदी के आधुनिक युग को भारतेंदु युग का नाम दिया है जोकि उनके जन्म या लेखन की शुरुआत से माना जाता है। परन्तु हिंदी साहित्य जगत में परसाई को जिस कटघरे में खड़ा करके विश्लेषित किया जाता है वह व्यंग्य से जोड़कर देखा जाता है। खासकर निबंधों में। जिसकी आधुनिक शुरुआत भले ही भारतेंदु युग में हो चुकी थी परन्तु उसे जो गति और सम्मान मिलना चाहिए था वह परसाई युग में ही मिला। इसे बेहतर ढंग से समझने के लिए प्रथम अध्याय को देखा जाना चाहिए। इसका उत्तर वहाँ आसानी से खोजा जा सकता है।

लेकिन परसाई का हिंदी निबंध जोकि व्यंग्य से लैस है वह उन्हें अपने युग के निबन्धकारों में चरम पर ले जाने के लिए काफ़ी है। उन्होंने इस विधा में जो उस्तादी प्राप्त की है वो शायद आजतक किसी को नहीं मिली है। जबकि इन्हीं को प्रेरणास्रोत बनाकर आज न जाने कितने ही व्यंग्यकारों का जन्म हुआ है। इस दृष्टि से भी आधुनिक निबंध साहित्य ने साहित्य की शेष विधाओं की तुलना में बड़े ठोस कदम स्थापित कर लिए हैं। अब निबंध की व्यंग्य शैली का भी बड़े

।

आदर और गौरव के साथ नाम लिया जाता है। और केवल नाम ही नहीं लिया जाता बल्कि इसमें इस विधा की दिन दुगुनी-रात चौगुनी तरक्की भी होती जा रही है।

अतः परसाई के निबंधों ने इस विधा में जो ऐतिहासिक योगदान दिया है और व्यंग्य को जिस ऊँचाई पर पहुँचाया है इसके लिए हिंदी साहित्य आजीवन उनका ऋणी रहेगा।

(क) व्यक्तित्व , कृतित्व व प्रभाव

व्यक्तित्व

हरिशंकर परसाई का जन्म 22 अगस्त 1924 को मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले जामनी गाँव में हुआ। इन्हें अल्पायु में ही पारिवारिक कष्टों को सहने की शक्ति और विषम परिस्थितियों में जीवन-यापन के लिए जूझने की सकारात्मक ऊर्जा मिली और इस ऊर्जा से ऊर्जस्वित होकर इनके व्यक्तित्व में ऐसी संचेतना का संचार हुआ जिसका प्रस्फुटन कलम के माध्यम से साहित्य में स्थापित हुआ। अपने बारे में लेखक कहते हैं:- "अपनी बात कहूँ तो यह कि 18 साल की उम्र से काम कर रहा हूँ। जंगल विभाग से नौकरी शुरू की। बाद में कई साल अध्यापकी की। अध्यापकी छोड़ी तो नियमित लिखता रहा। अभी भी लिखता हूँ। मैं औसत आदमी से डेवढ़ा काम करता हूँ। औसत आदमी अगर 8 घंटे काम करता है तो मैं 14 घंटे काम करता हूँ। आसन-भंग आदमी नहीं हूँ। घूँघटपट भी काफी खुले रखता हूँ। कहानी, निबंध, उपन्यास के सिवा में हर हफ्ते कालम लिखता हूँ- जी हाँ, तीन कालम- ये व्यंग्य के कालम होते हैं और व्यंग्य रचनात्मक लेखन होता है साहित्य होता है। बलात्कार , चोरी और अपहरण की रिपोटिंग नहीं होता।"[43]

---

[43] देश के इस दौर में, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ 63

।

हरिशंकर परसाई का जीवन बेहद गर्दिशों में बीता है। उनके जीवन से इस दुख-दर्द ने कभी साथ नहीं छोड़ा। वह जहाँ जाते वह पीछे-पीछे साये की तरह चला आता। पारिवारिक संकट और दबाब को बहुत बारीकी व नज़दीकी से परसाई ने देखा है। इसका एक अंश जहाँ उध्दृत है:- '1936 या 37 होगा। मैं शायद आठवीं का छात्र था। कस्बे में प्लेग पड़ी थी। रात को मरणासन्न माँ के सामने हम लोग आरती गाते। गाते-गाते पिताजी सिसकने लगते , माँ बिलखकर हम बच्चों को हृदय से चिपटा लेती और हम भी रोने लगते…। ऐसे भयकारी त्रासदायक वातावरण में एक रात तीसरे पहर माँ की मृत्यु हो गई…..पाँच भाई-बहनों में मृत्यु का अर्थ मैं ही समझता था।’[44]पर जिस गर्दिश की बात परसाई कहते थे, वह जीवनपर्यंत बनी ही रही। वे स्वयं स्वीकारते हैं:- "गर्दिश का सिलसिला बदस्तूर है, मैं निहायत बेचैन मन का संवेदनशील आदमी हूँ। मुझे चैन कभी मिल ही नहीं सकता। इसलिए गर्दिश नियति है।"[45]

जीविकोपार्जन के संदर्भ में भी परसाई ने कभी किसी बंधी-बंधाई परंपरा का निर्वाह नहीं किया। अपने स्वाभिमानी व्यक्तित्व और आदर्शवादी स्वभाव के कारण जिस जंगल में काम किया वहीं ईंटों की चौकी बनाकर, पटिये और चादर बिछाकर सोया करते थे। जहाँ चूहों की धमाचौकड़ी रात भर चलती थी। परसाई अपने इन दिनों के विषय में कहते:- "चूहों ने बड़ा उपकार किया। ऐसी आदत डाली कि आगे की ज़िंदगी में भी तरह-तरह के चूहे मेरे नीचे उधम करते रहे हैं, साँप तक सर्राते रहे हैं, मगर मैं पटिया बिछाकर, पटिये पर सोता हूँ।"[46]

वैज्ञानिक रूप से मानव जन्म या यूँ कहें कि किसी भी प्राणी का जन्म दो इकाईयों से मिलकर पूर्ण होता है। इसके लिए एक नर और नारी की मदद चाहिए। जन्म की स्वाभाविक प्रक्रिया के पूरे होने के पश्चात ही किसी नवीन इकाई का निर्माण होता है। ऐसे ही मानव समाज में जब एक नर और नारी विवाह जैसी संस्था से जुड़ते हैं और किसी नवीन इकाई को जन्म देना चाहते हैं। तब उन्हें इसी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। उस इकाई के जन्म लेने के बाद से माँ-पिता में अपने बच्चे के प्रति जो भाव जागृत होगा उसे साहित्य की दृष्टि में वात्सल्य भाव कहा जाता है। यह वात्सल्य भाव उसी व्यक्ति में उमड़ेगा जिसमें अपने बच्चे के प्रति स्नेह होगा।

---

[44] परसाई रचनावली, भाग 4, पृ 449

[45] वही , पृ 448

[46] WWW. Google.com/thewirehindi.com/article/hindi-litreture-harishankar-parsai-sataire

।

परंतु परसाई अविवाहित रहे। लेकिन उनके मन में वात्सल्य सुरक्षित रहा। यही विशेषपन परसाई को सामान्य से खास बनाता है, संवेदनशील बनाता है। यह भाव व्यक्तिगत स्तर से बहुत ऊपर उठकर अत्यन्त सघन एवं व्यापक हो गया। वह भावी पीढ़ियों तक व्याप्त गया है। भावी पीढ़ियों के प्रति यह राग-स्पन्दित वात्सल्य कालचक्र से भिड़ने वाले निरहंकारी साधक के हृदय में ही उमड़ेगा। एक निरहंकारी साधक के हृदय में वात्सल्य का भाव कहाँ तक भरा है इसकी झलक इस कथन में देखी जा सकती है:- 'अपना कोई पुत्र नहीं, होता तो मुश्किल में पड़ जाते क्या देते ?... पर हम क्या दें ? महायुद्ध की छाया में बढ़े हम लोग; हम गरीबी और अभाव में पले लोग, केवल जिजीविषा खाकर जिए हम लोग, हमारी पीढ़ी के बाल तो जन्म से ही सफेद हैं। हमारे पास क्या है ? हाँ, भविष्य है........ तो इतना रंक नहीं हूँ- विराट भविष्य तो है …मेरी पीढ़ी के समस्त पुत्रों ! मैं तुम्हें यह भविष्य देता हूँ …लो, सफेद बाल दिखने के इस पर्व पर यह तुम्हारा प्राप्य सँभालो ! ....हमें तुमसे कुछ नहीं चाहिए। ययाति जैसे हम स्वार्थी नहीं हैं जो पुत्र की जवानी लेकर युवा हो गया था। बालों के साथ उसने मुँह भी काला कर लिया ।"[47]

समाज के शोषितों और गरीबों के प्रति परसाई की सहानुभूति और संवेदना सिर्फ बौद्धिक ही नहीं, बल्कि क्रियात्मक भी है। उनके लेखन को देखकर यदि कोई यह अनुमान लगा ले, कि इतना कठोर लिखने वाला क्या ही नर्म होगा, उसमें कितनी ही संवेदना और प्रेम के भाव होंगे तब ऐसे मत एक पक्षीय कहलायेंगे। परंतु उनके व्यक्तित्व पर ग़ौर करने पर मालूम होगा कि वह कितने सहृदय हैं। वह मददगार होने के साथ ही अति-संवेदनशील व्यक्ति हैं। उनके व्यक्तित्व को याद करते हुए, 'मायाराम सुरजन' ने लिखा है- "वे राजनांदगांव आएंगे तो शरद कोठारी के रसोइये से पाचक चूरन की शीशी खरीदना नहीं भूलेंगे। मेरा एक ड्राइवर इक़बाल उन्हें घंटों अपनी शायरी सुना देता और वे ऐसे सुनते जैसे उसमें ही डूब गए हैं। "किसी ने अपना दुखड़ा सुनाया तो उसकी मदद चाहे वह उनके बस की बात न हो, करने में सबसे आगे, भले ही फिर उसका बोझा दूसरे उठाएँ।"[48]

47 परसाई रचनावली, भाग -3 , पृ 197

48 https://www.google.com/amp/s/m.thewirehindi.com/article/hindi-literature-harishankar-parsai-satire

।

हरिशंकर परसाई का व्यक्तित्व एक ओर तो संवेदनशील और दूसरों की फ़िक्र से भरा मिलेगा तो वहीं अपने लेखन के आधार पर वह एक क्रांतिकारी, निर्भीक, सत्यवादी और यथार्थ से लोहा लेने वाले लगेंगे। जिनमें ज्वालामुखी-सा विस्फोट है, कोयले के अंगारों-सी लालिमा है जिसका तेज़ ऐसा कि गहन अंधकार में भी प्रकाश फैलाने के लिए पर्याप्त है। जब कोयले ठेकेदार झुमकलाल का बेटा खाण्डवा से जबलपुर आया तो कोयले की तरह दहक उठा। वही लालिमा और वही अग्नि उनमें समाई हुई थी। वे कहते हैं:- "जबलपुर में मेरा साथ उन लोगों से हो गया था जो साहित्य और राजनीति के क्षेत्र के बुलंद लोग थे तथा 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के हीरो। वे उग्र समाजवाद के साथ कॉग्रेस से बाहर आ गए थे। मैं उनके साथ हो लिया था।"[49] यही साथ परसाई को एक क्रांतिकारी बनाता है। इन लोगों का इतना अत्यधिक प्रभाव था कि परसाई उनसे बच न सके। वही विद्रोही तेवर, वही अक्खड़ता, सीना ताने खड़े रहना, माथे पर किसी तरह का शिकन नहीं, बल्कि सदैव तेज़ ही रहा।

हरिशंकर परसाई देश के जागरूक प्रहरी रहे हैं, ऐसे प्रहरी जो खाने और सोनेवाले तृप्त आदमियों की जमात में हमेशा जागते और रोते रहे। उनकी रचनाओं में जो व्यंग्य है, उसका उत्प्रेरक तत्व यही रोना है। रोनेवाले हमारे बीच बहुत हैं। कहते हैं कि रोने से जी हलका होता है। वे जी हलका करते हैं और फिर रोते हैं। झरना बन जाता है उनका मानस। उनकी शोकमग्नता आत्मघाती भी होती है। जनभाषा में एक कवि कबीर है, जिसने राह के बटमारों की गतिविधियों को खूब पहचाना। उसने जासूसी की। कपट को पारदर्शी आँखों से चीरने का काम उसने जीवनपर्यंत किया। ऐसा ही दूसरा लेखक उसकी बिरादरी में हुआ- परसाई।

'गर्दिश के दिन' आत्मकथ्य में हरिशंकर परसाई ने अपने व्यक्तित्व के संदर्भ में लिखा है:- ''इन्हीं सब परिस्थितियों के बीच मेरे भीतर लेखक कैसे जन्मा, यह सोचता हूँ। पहले अपने दुखों के प्रति सम्मोहन था पर मैंने देखा, इतने ज़्यादा बेचारों में मैं क्या बेचारा। इतने विकट संघर्षों में मेरा क्या संघर्ष। मेरा अनुमान है मैंने लेखन को दुनिया से लड़ने के लिए एक हथियार के रूप में अपनाया होगा। दूसरे इसी में मैंने अपने व्यक्तित्व की रक्षा का रास्ता देखा। तीसरे

---

49 व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य, संपा. प्रेम जनमेजय, पृ 221

।

, अपने को अविशिष्ट होने से बचाने के लिए मैंने लिखना शुरू कर दिया पर जल्दी ही मैं व्यक्तिगत दुख के इस सम्मोहन से निकल गया। मैंने अपने को और विस्तार दिया। दुखी और भी हैं। अन्याय, पीड़ित और भी हैं। अनगिनत शोषित हैं। मैं उनमें से एक हूँ। पर मेरे हाथ में कलम और मैं चेतना संपन्न हूँ। यहाँ कहाँ व्यंग्य लेखक का जन्म हुआ।"[50]

परसाई की वैचारिकी निर्मिति में अनेकों ग्रन्थों, व्यक्तित्वों, दार्शनिकों, व्यक्तियों, महापुरुषों का अविस्मरणीय योगदान रहा है। उनसे भिन्न-भिन्न अवसर पर विभिन्न अनुभव ग्रहण किए। इन्होंने इतिहास, समाजविज्ञान, राजनीति और संस्कृति का गहन अध्ययन किया, साथ ही समय मिलने पर पाश्चात्य चिंतकों की विचारधाराओं को भी अपनी मेधा शक्ति में शामिल किया। अध्ययन और अनुभवों के भंडार से परसाई जी ने मानव-समाज के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों और विकृतियों पर बड़ी गंभीरता से व्यंग्य लेखन का कार्य किया। अपनी जीवनी में परसाई इस बात का खुलासा करते हुए कहते हैं कि:- "बाल्यकाल में जिस व्यक्ति ने उन्हें सबसे ज़्यादा प्रभावित किया वह थी उनकी बुआ।" परसाई ने उनसे ही अपनी ज़िंदगी के कुछ मूल-मंत्र सीखे थे। जैसे- निस्संकोच किसी से भी उधार मांग लेना या बेफिक्र रहना। बड़े-से-बड़े संकट में भी वो यही कहते- "कोई घबराने की बात नहीं, सब हो जाएगा।"[51]संघर्षों से भरे अपने जीवन में परसाई ने स्वयं को सदैव मजबूत बनाए रखा। "मैंने तय किया परसाई, डरो किसी से मत। डरे कि मरे। सीने को ऊपर कड़ा कर लो भीतर तुम जो भी हो। ज़िम्मेदारी को गैर-ज़िम्मेदारी के साथ निभाओ।'[52]

परसाई के व्यक्तित्व में धार्मिक रूढ़िवादिता, जातीयता, धार्मिक कट्टरता इन सबके विरुद्ध जो एक खास किस्म का विरोधी तेवर दिखलाई पड़ता है उसका बहुत कुछ श्रेय वह अपनी बुआ को देते हैं। उनसे ही उन्होंने सीखा कि जातीयता और धर्म बेकार के ढकोसले हैं। स्वयं उनकी बुआ ने पचास साल की अवस्था में तमाम विरोधों के बावजूद एक अनाथ मुस्लिम लड़के को अपने यहाँ शरण दे रखी थी।

---

50 परसाई रचनावली, भाग- 4, पृ 452

51 वही, पृ 450

52 वही, पृ 451

।

परसाई मानवीयता के पोषक हैं। उनकी चिंता हमेशा जरूरतमंदों, असहाय, दयनीय व शोषितों के हित में रहती है। वह चाहते हैं कि इंसान यदि स्वयं को सुधार ले तब किसी तरह की विसंगति उत्पन्न न होने पाए। वह अपने आसपास और अपने समाज के प्रति चिंतनशील व सचेत हो। इस संबंध में आपकी स्वीकारोक्ति है:- "मैं इसलिए लिखता हूँ कि मनुष्य अपने समाज व स्वयं का आत्मलोचन, आत्मसाक्षात्कार करे और अपनी कमजोरियों, बुराइयों, विसंगतियों, विवेकहीनता, न्यायहीनता को त्यागकर जैसा वह है उससे बेहतर बने। अंधविश्वासों, झूठी मान्यताओं, अवैज्ञानिक आग्रहों और आत्मघाती रूढियों से वह मुक्त हो। वह न्यायी, दयालु, संवेदनशील हो। दासता और मुखापेक्षिता से मुक्त हो। मानव गरिमा की प्रतिष्ठा हो।"[53]

मानवीयता के पोषक होने के साथ ही वह आत्मालोचना के समर्थक भी हैं। इनकी नज़र दूसरों की बुराई अथवा दूसरों को टटोलने से ज्यादा स्वयं के अवलोकन पर टिकी रहती हैं। जो व्यक्ति खुद की ख़ामियों को जान लेता है, अपनी कमियों को समझ लेता है वह सही अर्थों में एक आलोचक बन पाता है। एक अच्छा इंसान बन पाता है। अपने अहं को उड़ाकर ही दूसरों का हित साधा जा सकता है। इस रूप में वह कबीर के 'बुरा जो देखन मैं चला' वाली पंक्ति से जुड़ते हैं। इस पर परसाई कहते हैं: - 'मैंने जितनी कटुक्तियाँ खुद अपने ऊपर की है, जितना उद्घाटन अपनी कमजोरियों का किया है, जितना मजाक अपना उड़ाया है, वह अहंकार को गला देने पर ही सम्भव है।'

अपनी बेटिकट यात्रा का वर्णन करके उन्होंने अपनी आत्मालोचना का उदाहरण दिया है:- "एक विद्या मुझे और आ गई थी- बिना टिकट सफर करना। जबलपुर से इटारसी, टिमरनी, खंडवा, इंदौर, देवास बार-बार चक्कर लगाने पड़ते। पैसे थे नहीं। मैं बिना टिकट बेखटके गाड़ी में बैठ जाता। तरकीबें बचने की बहुत आ गई थीं। पकड़ा जाता तो अच्छी अंग्रेजी में अपनी मुसीबत का बखान करता। अंग्रेजी के माध्यम से मुसीबत बाबुओं को प्रभावित कर देती और वे कहते- लेट्स हेल्प दि पुअर बॉय।"[54]

---

[53] https://www.rachanakar.org/2014/10/blog-post_33.html?m=1
[54] https://www.google.com/amp/s/m.thewirehindi.com/article/hindi-literature-harishankar-parsai-satire

।

हरिशंकर परसाई एक अर्थ में बाबू बालमुकुंद गुप्त का परिष्कृत विस्तार हैं जो व्यंग्य के हृदय में पैठकर समाज की विषमताओं को व्यक्त करते हैं। हरिशंकर परसाई पर कबीर का प्रभाव या यूँ कहे कि कबीर-सी फक्कड़ और प्रहारात्मक वृति साफ़-साफ़ दिखाई देती है। कबीर इसलिए हिंदी के सबसे बड़े व्यंग्यकार है क्योंकि वह समाज में व्याप्त विसंगतियों को जड़ से उखाड़ फेंकने में सफल होते हैं। परसाई में यही विशेषता घुलमिल गयी है। उनके सबसे प्रिय कवि तुलसीदास नहीं सूरदास हैं, कबीरदास हैं। लेकिन रचनाओं में उनका पूरा झुकाव कबीर के प्रति ही दिखाई देता है। यही इनके भाव रसायन बने।

मानवीय संवेदना की प्रतिष्ठा के लिए संघर्षरत परसाई के महामानव या प्रतीकपुरुष कल्पित या पौराणिक नहीं। निस्सन्देह परसाई प्राचीन महापुरुषों एवं कवियों के प्रशंसक है। कबीर और ग़ालिब के वे विशेष प्रशंसक हैं। उनसे छेड़खानी भी करते हैं। लेकिन मानवीय संवेदना के प्रतीक मनुष्य परसाई के यहाँ वर्तमान के ही हैं। 'विनोद साव' की माने तो परसाई कबीर से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपना उपनाम 'कबीर' ही रख लिया था। और कुछ रचनाएँ भी लिख दी थी। कबीर की तरह उनका वाममार्ग एकदम स्पष्ट था। वे कबीर की तरह अत्यधिक आक्रामक और प्रहारात्मक थे।

पत्र 'प्रहरी' के सम्पादक भवानीप्रसाद तिवारी ने इन्हें लिखने के लिए प्रेरित किया। कामरेड महेंद्र वाजपेयी ने मार्क्सवाद के सपने उनमें भरे। इतना भर ही नहीं। ये 'मैं श्रमिक आंदोलन' से भी जुड़ गए। तभी इनका संपर्क मुक्तिबोध से हुआ जिन्होंने इनमें मार्क्सवादी दृष्टिकोण को और महीन करने मदद की। मुक्तिबोध ने परसाई की समझ को परिष्कृत करके 'साहित्य की सभ्यता समीक्षा' से जड़ीभूत सौन्दर्यनुभूतियों पर प्रहार करना सिखाया। परसाई सामान्य आदमी की यातना को वाणी देने वाले रचनाकार हैं। रचनाकर्म में वे सभी तरह की घटनाओं, प्रसंगों, प्रकरणों, चरित्रों, आख्यानों को रिसाइकिल करते हुए उसे नया आधुनिकबोध दे देते हैं। आधुनिकबोध का यहाँ अर्थ अन्याय, अपमान, पीड़ा को समाज के बीचोंबीच खड़े होकर उजागर करने वाला बोध है। जहाँ उन्होंने विद्रुप का उद्घाटन किया। हर खतरा मोल लिया। गुंडों से बेंत खाई। लेकिन सच कहने की हिम्मत नहीं छोड़ी। इसके अलावा यह मार्क्सवादी थे इसलिए यह मिथ्या धारणा निर्मित हुई कि वे नितांत धर्म विरोधी थे। वस्तुतः वे धर्म नहीं अपितु पाखंड विरोधी थे। 'धर्म, विज्ञान और सामाजिक

।

परिवर्तन' में उन्होंने लिखा:- ‘‘सच्ची धर्मानुभूति स्व के त्याग से ऊँचे स्तर की है- यह ऐसी धर्मानुभूति नहीं है कि सुबह भगवान की पूजा की । एक सौ ग्यारह नंबर का तिलक लगाया, दुकान गए और दिनभर आदमियों को लूटा ।’’[55]

इसके अलावा परसाई समाजवाद में विश्वास करते थे। वे वर्ग-विभक्त समाज में दूसरों का हक छीनकर सांसारिक सफलता प्राप्त करने की अमानवीयता एवं टुच्चेपन को समझते हैं। वे अमानुषिक यथास्थितिवादी एवं विकास विरोधी रूढियों को उद्घाटित करते हैं। वर्ग विभक्त समाज की शोषक शक्तियों की ऐतिहासिक अशक्तता जानते हैं। ऐतिहासिक प्रक्रिया का तर्क उनका सुदृढ़ दुर्ग है। जहाँ वे सुरक्षित हैं, जहाँ से वे यथास्थितिवादियों को देखते हैं, उन पर प्रहार करते हैं। किस सफल पर हँसा जाए और किस हास्यास्पद दिखलाई पड़ने वाले पर रोया जाए; यही विवेक हरिशंकर परसाई को हिन्दी के अन्य व्यंग्यकारों से अलग करके उनके व्यंग्य को इतना पैना एवं गम्भीर बनाता है। वे प्रेमचंद के आत्मीय हैं और जनता के भी। लेकिन कैसी जनता के ! जिन पर हँसा नहीं जा सकता, जो दीन हैं। यह दीनता व्यंग्यकार को उनसे जोड़ती है। यह आत्मीयता है कि दीन लोग हैं और उनसे लिपट कर रोता व्यंग्यकार है।

राजनीति की हर कमजोर गेंद पर फुलटॉस या नो बॉल पर टाप करके गगनचुंबी छक्का मारने वाले माहिर खिलाड़ी थे परसाई। यहाँ पर कमजोर गेंद का अर्थ हमें राजनीतिक विसंगतिबोध, उसमें छिपे विद्रुपमय चित्रों से लेना चाहिए जिसका सीधा आकार हमें परसाई की रचनाओं में चमकते हुए दर्पण के समान दिखाई देता है। अतः परसाई का व्यक्तित्व एकदम तेज़-तर्रार और आग की तरह था। जिसकी मार झेलना ऐसे दब्बू, फ़र्जी व नकली लोगों के बस की बात नहीं थी। उनका व्यक्तित्व इस ऊर्जा के आगे जलकर ख़ाक हो जाते है।

प्रभाव

---

[55] https://www.apnimaati.com/2013/04/blog-post_4528.html?m=

।

उन्होंने गद्य लिखना रामेश्वर गुरु से सीखा। इसके अलावा कबीर, तुलसी, सूरदास, बाबू बालमुकुंद गुप्त, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, हब्सन सा, ग़ालिब , मुक्तिबोध, मीर , चेखव, आदि से न जाने क्या-क्या सीखा और उनका प्रभाव पाया।

कृतित्व

व्यंग्य की परम्परा को सुदृढ़ बनाते हुए परसाई ने साहित्य जगत में अपनी अलग जगह बना ली है। उन्होंने अपनी पहली व्यंग्य रचना ‘स्वर्ग से नरक जहाँ तक’ लिखी, जो मई 1947 में ‘प्रहरी’ में प्रकाशित हुई थी। 'प्रहरी' में प्रकाशित रचनाएँ उनकी प्रारंभिक रचनाएँ हैं। सन् 1947 में जबलपुर से 'प्रहरी' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ। यहीं से परसाई ने स्तंभ लेखन की शुरूआत की। इस स्तंभ का शीर्षक था 'नर्मदा के तट से' और परसाई उसमें 'अघोर भैरव' के नाम से लिखते थे। यह स्तंभ 1960 तक जारी रहा। इसके साथ ही, इंदौर से 'नई दुनिया' दैनिक पत्र में 'सुनो भाई साधो' शीर्षक से साप्ताहिक लेखमाला शुरू की। 'नई कहानियाँ' में 'पाँचवाँ कॉलम' और 'उलझी-उलझी' कालम लिखे। 'कल्पना' में प्रकाशित 'और अंत में' लेख लिखा जो बेहद लोकप्रिय साबित हुआ। 'सुनो भाई साधो' ने परसाई को विशेष ख्याति दिखायी। यह कॉलम उन्होंने जबलपुर से प्रकाशित होने वाले 'मजदूर' साप्ताहिक के लिए शुरू किया था किन्तु वह पत्र शीघ्र बंद हो गया। बाद में यही स्तंभ 'नई दुनिया' (इंदौर) , 'नवीन दुनिया' (जबलपुर) तथा 'देशबंधु' (रायपुर) में छपा जाने लगा। 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' ने परसाई को व्यापक पाठक समुदाय दिया। 'देशबंधु' का कॉलम 'पूछिये परसाई से' इतना ज्यादा पढ़ा गया कि पत्रकारिता के पाठक इतिहास का अविस्मरणीय हिस्सा बन गए।

परसाई हिन्दी की प्रायः सभी प्रमुख पत्रिकाओं से स्तंभ लेखक के रूप में आजीवन जुड़े रहे। अपने पहले चरण में तो 'वसुधा' दो वर्ष 1956 से 1958 तक लगातार प्रकाशित होती रही, जिसके संपादक की भूमिका परसाई ने निभाई। हालाँकि आर्थिक तंगी और संसाधनों के अभाव की वजह से दो वर्षों के बाद पत्रिका को बंद करना पड़ा। आगे चलकर नब्बे के दशक में इसकी दूसरी आवृत्ति को 'मध्यप्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ' की पत्रिका के रूप में पुनर्जीवित किया

।

गया और संघ के अध्यक्ष होने के नाते पत्रिका के संपादन का कार्यभार भी परसाई को ही दिया गया।[56] पत्रिका के प्रकाशन की द्वितीय आवृत्ति में अंक-62 तक तो इसका नाम 'वसुधा' ही रहा, लेकिन अंक-63 से नए रूपाकार में इसका प्रकाशन आरंभ हुआ और इसका नाम 'प्रगतिशील वसुधा' हो गया।[57]

परसाई ने 1965 में 'जनयुग' में 'ये माजरा क्या है' 'आदम' नाम से तथा 'सुनो भाई साधो' 'नई दुनिया' में 'कबीर' नाम से लिखा। यह शायद इसलिए भी कि कबीर के क्रांतिकारी व्यक्तित्व से परसाई बेहद प्रभावित हैं। वह स्वयं को कबीर का भक्त मानते हैं।[58]

उन्होंने 'सारिका' में 'कबीरा खड़ा बाजार में', 'कथा यात्रा' में 'रिटायर्ड भगवान की कथा' , 'परिवर्तन' में 'अरस्तू की चिट्ठी', 'करंट' में 'देख कबीरा रोया' तथा 'माटी कहे कुम्हार से' आदि कालम लिखे। जनवरी 1985 से सारिका में ही 'तुलसीदास चंदन घिसे' लिखना शुरू किया था। 'गंगा' पत्रिका में नियमित स्तंभ के रूप में संस्मरण लिखते रहे। परसाई के कॉलम्स के बारे में 'कमलेश्वर' ने 'सारिका' में लिखा था:- " तुम्हारा कॉलम छपता है तो सारिका की बिक्री बढ़ जाती है। मैनेजमेंट यह नहीं देखता कि तुम क्या लिखते हो, वह देखता है कि माल बिकता है या नहीं।"[59]

परसाई जी का सृजनात्मक साहित्य प्रचुर मात्रा में कहानी, निबंध, रेखाचित्र, व्यंग्य, स्तंभ लेखन के रूप में उपलब्ध है। बहुत कम लोग जानते हैं कि भवानी तिवारी, रामेश्वर गुरु और केशव पाठक के प्रभाव में परसाई ने कविता भी लिखी। लेकिन शीघ्र ही वह काव्य पाठ की राह को छोड़कर गद्य पथ की चट्टानों को चीरते हुए उस राह की ओर निकल पड़े। रामेश्वर गुरु के साथ मिलकर उन्होंने 'वसुधा' का साहित्य चमकाया और 'प्रगतिशील लेखक संघ' के कृष्ण और सुदामा बनकर दोनों रहे। संघ और साम्प्रदायिकता के विरुद्ध जीवन भर लिखा और ऐसा लिखा कि उनका लेखन ढिंढोरची की आवाज़ बनता गया। परन्तु इनके लेखन के साथ एक समस्या यह हो गई है कि इनकी रचनाओं का लेखन

[56] https://www.google.com/amp/s/m.thewirehindi.com/article/hindi-literature-harishankar-parsai-satire

[57] https://hi.m.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B5%E0%A4%B8%E0%A5%81%E0%A4%A7%E0%A4%BE

[58] परसाई रचनावली, भाग 5 , पृ संपा. मंडल

[59] कुछ बातें, चुनी हुई रचनाएँ, हरिशंकर परसाई, संपा. कमलाप्रसाद व प्रकाश दूबे

।

और प्रकाशन क्रमिक रूप से नहीं हुआ। कई रचनाएँ लिखी पहले गई किन्तु प्रकाशित न हो पाई। बहुत बाद में लिखी रचनाएँ पहले प्रकाशित हो गई।

इनकी सभी प्रकाशित, अप्रकाशित रचनाएँ एकत्र कर सन् 1985 में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से 'परसाई रचनावली' का प्रकाशन किया गया। इसके कुल छः खण्ड हैं। परसाई के कई स्तंभ पुस्तक रूप में छप चुके हैं किन्तु कुछ स्तंभ जैसे 'सुनो भाई साधो' व 'ये माजरा क्या है' तथा 'लघु कथाएँ' पहली बार संकलित होकर रचनावली में प्रकाशित की गयी। परसाई की रचनाओं को इकट्ठा करने व प्रकाशित कराने का कठिन और ज़िम्मेदारीपूर्ण कार्य संपादक मंडल के जिन सदस्यों ने किया वे हैं- कमलाप्रसाद, धनंजय वर्मा, श्यामसुन्दर मिश्र, मलय और श्याम कश्यप।

हरिशंकर परसाई की रचनाएँ

कहानी संग्रह: हँसते हैं रोते हैं, जैसे उनके दिन फिरे

उपन्यास: रानी नागफनी की कहानी, ज्वाला और जल।

दीर्घ कथा: तट की खोज

संस्मरण: तिरछी रेखाएँ

लेख संग्रह: पगडण्डियों का जमाना, सदाचार का ताबीज, शिकायत मुझे भी है, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, अपनी-अपनी बीमारी, वैष्णव की फिसलन, विकलांग श्रद्धा का दौर, भूत के पाँव पीछे, बेईमानी की परत, तुलसीदास चंदन घीसे, कहत कबीर, पाखंड का आध्यात्म, आवारा भीड़ के खतरे, तब की बात और थी, माटी कहे कुम्हार से, काग भगोड़ा, ऐसा भी सोचा जाता है, उखड़े खंभे, हम एक उम्र से वाकिफ हैं, बस की यात्रा।

हरिशंकर परसाई पर केन्द्रित साहित्य

।

सुनो भाई साधो- हरिशंकर परसाई

ये माजरा क्या है- हरिशंकर परसाई

पूछो परसाई से- हरिशंकर परसाई

मेरी श्रेष्ठ रचनाएँ - हरिशंकर परसाई

देश के इस दौर में- विश्वनाथ त्रिपाठी

हरिशंकर परसाई मोनोग्राफ- विश्वनाथ त्रिपाठी

आँखन देखी- संपादक- कमला प्रसाद

कुछ बातें: चुनी हुई रचनाएँ हरिशंकर परसाई- सम्पादक- कमला प्रसाद व प्रकाश दूबे

'सुनो भाई साधो' और 'ये माजरा क्या है' यह दोनों स्तंभ लेखन हैं। जिसमें 'सुनो भाई साधो' के स्तंभों को जबलपुर और रायपुर से निकलने वाले 'देशबंधु' में प्रकाशित किया जाता था। ऐसे ही 'पूछो परसाई से' एक तरह का साक्षात्कार है जिसमें पाठकों के सवालों के उत्तर दिए जाते थे।

आवारा भीड़ के ख़तरे के बारे में:- 'यह पुस्तक हिंदी के अन्यतम व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की मृत्यु के बाद उनके असंकलित और कुछेक अप्रकाशित व्यंग्य-निबंधों का एकमात्र संकलन है। अपनी कलम से जीवन छलकाने वाले इस लेखक की मृत्यु खुद में एक महत्त्वहीन-सी घटना बन गई लगती है। शायद ही हिंदी साहित्य की किसी अन्य हस्ती ने साहित्य और समाज में जड़ जमाने की कोशिश करती मरणोन्मुखता पर इतनी सतत, इतनी करारी चोट की हो ![60]

इन सभी रचनाओं में हरिशंकर परसाई ने लोकजीवन के समसामयिक सभी पक्षों को सरल भाषा में समाज में पल रहे ढोंग, कुरीतियों, व्याभिचारों, भ्रष्टाचारों, विसंगतियों, सांस्कृतिक पतन जैसे विविध प्रसंगों को तीक्ष्ण, कटु और मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है।

[60] आवारा भीड़ के ख़तरे, हरिशंकर परसाई, पुस्तक के बारे में

।

इनका साहित्य बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के भारत का है। यह साहित्य इस काल के भारत की पहचान है। परसाई का व्यंग्यप्रधान लेखन आजादी के बाद उस मोहभंग की स्थिति को उजागर करता है जिसे तत्कालीन जनता ने झेला था। इनके लेखन से उस खोए हुए समय को पुनः प्राप्त किया जा सकता है। इनके लेखन में उस यथार्थ की भावना है जो तत्कालीन समय की विसंगति को हू-ब-हू बयां करती है। 'कृष्णदत्त पालीवाल' की माने तो "परसाई का पूरा लेखन आजादी के बाद के पतन की महाकाव्यात्मक गाथा है।"[61]

तो वहीं 'विश्वनाथ त्रिपाठी' भी मानते हैं:- "परसाई की रचना को आजादी के बाद की स्थितियों से अलग करके देखा ही नहीं जा सकता। आजादी के बाद की स्थितियाँ जैसी घटित हुई वैसी न होती तो परसाई का लेखन भी वैसा न होता जैसाकि है। यह बात कमोबेश तो स्वातंत्र्योत्तर भारत के सभी प्रसिद्ध रचनाकारों के बारे में कही जा सकती है, किन्तु सबसे ज्यादा यह लागू होती है परसाई के बारे में।"[62]

परसाई साहित्य अपने आप में ही विशेषपन रखता है। वर्तमान के मामूलीपन या 'रोज़मर्रा' को रचना में इतनी प्रतिष्ठिता पहले किसी और ने नहीं दिलाई जितनी खुद परसाई साहित्य ने दी है। यह प्रगतिशीलता का विकास है। उन्होंने छोटे-छोटे घरेलू बिंदुओं तक पर लिखकर अपनी कलम की व्यापकता सिद्ध की है। जिन विषयों पर लेखकगण लिखने से कतराते हैं उस पर परसाई ने बिना किसी हिचक के लिखा है और बहुत खूब लिखा है। जीवन की सामान्य बातों को रचना में स्थान देकर भारतेंदु ने हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रवर्तन किया था। वह आधुनिकता प्रगतिशील थी। 'बालमुकुन्द गुप्त' द्वारा लिखित 'शिवशम्भु के चिट्ठे' में हम इसी मामूलीपन की प्रतिष्ठा पाते हैं। किन्तु स्वातंत्र्योत्तर भारत की विशिष्ट स्थितियों में इस रोज़मर्रा अथवा मामूलीपन को महत्व देकर परसाई ने उसमें गुणात्मक परिवर्तन ला दिया है। इसी पर विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं:- "परसाई के लेखन में रोज़मर्रा का मामूलीपन रचना-क्षेत्र को व्याप्ति ही नहीं प्रदान

---

61 समकालीन व्यंग्य का परिप्रेक्ष्य, संपा. प्रेम जनमेजय, पृ 225

62 समकालीन व्यंग्य का परिप्रेक्ष्य, संपा. प्रेम जनमेजय, पृ 225

।

करता, उनके यहाँ यह मामूलीपन अनिवार्य भी बन गया है। उनके प्रचुर और पर्याप्त लेखन का आधार अतिसामान्य, परिचित, वर्तमानकालिक, प्रत्यक्ष जीवन जगत है लेकिन उसका कोई अंश फालतू या महत्वहीन नहीं। भाव-परिधि का यह विस्तार अभिभूतकारी और आश्चर्यजनक है। "पढ़ते समय वे जितना सहज लगते हैं विचार करने पर उतना ही जटिल।"[63]

तथाकथित गम्भीर साहित्य में गेहूँ , चावल, चीनी जैसी मामूली चीज़ों को कोई खास महत्व नहीं दिया जाता। प्रगतिशील साहित्य में ही कभी-कभी इनकी चर्चा होती है। 'सवा सेर गेहूँ' प्रेमचन्द की मशहूर कहानी है। तथाकथित शिष्ट साहित्य इन जीवनाधार वस्तुओं से यथाशक्ति परहेज़ करता है। घीसू व माधव की सबसे बड़ी आकांक्षा पेट भरकर पूड़ी-तरकारी खाने की थी। परन्तु परसाई साहित्य ऐसी सामग्री से भरापूरा है। उन्हें देखकर 'सुखिया सब संसार है खावै अउर सोवे' का अर्थ साक्षात् हो जाता है। हिन्दी में यह मामूलीपन कविता में नागार्जुन और गद्य में हरिशंकर परसाई के यहाँ सबसे ज्यादा दिखलाई पड़ा है ।

परसाई को रचना-कर्म में सत्य के अनंत विकृत रूप मथते और चिढ़ाते हैं। विंसगति उनके चरित्रों में पूरी तरह घुलमिल गयी है। उन्होंने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा कि:- "अभी मैंने एक कहानी लिखी जिसका नायक डॉक्टर ऑफ साइंस है, वेशभूषा व रहन-सहन पश्चिमी है। मगर वह बाहर बैठक में गैलीलियो और आइंस्टीन के चित्र लगाए बैठा है और भीतर हनुमान जी और सत्य साईं बाबा के। शनिवार को वह हनुमान दर्शन को जाता है। वह मानता है कि उसे डॉक्टरेट हनुमान जी की कृपा से मिली है और प्रोफेसर वह सत्यसाईं बाबा की वजह से बना है। वह जातिवादी है।"[64]

परसाई को समस्या यही दिखाई देती है कि हर अति-बौद्धिक और संस्कृतिवादी अथवा आस्थावादी व्यक्तित्व एक काला कंबल ओढ़े है। जिसमें से विसंगति की बू आ रही है। मानो कृत्रिमता का चोला पहने वह नाच रहा है और दर्शक मुँह बाए देख रहे हैं। और उसे ही सत्य मान रहे हैं। परंतु परसाई जैसे पैनी निगाह वाले जासूस घात लगाए हैं , जैसे

---

[63] वही, पृ 11

[64] व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य, संपा. प्रेम जनमेजय, पृ 225

।

ही कुछ हरकत हुई कि धपाक से पकड़ लिया। इस गहरी विकृति को दर्शाना इनकी चिंता है। परसाई सुधार के लिए नहीं बदलने के लिए लिखा है। उन्हें सुधारवादी आर्यसमाजी वृति पसंद नहीं है। वे तो सामाजिक विद्रूपताओं, विसंगतियों को उजागर करने वाले चिंतक हैं। उनकी कहानी 'सदाचार का तावीज़' सुधारवादी कहानी नहीं है, वह व्यवस्था पर करारी चोट करने को लिखी गयी थी। आर्थिक सुरक्षा दिए बिना कर्मचारियों के भ्रष्टाचार को ख़त्म करना आसान नहीं है। "उनकी तनख्वाह ख़त्म हो गयी। लेकिन तावीज़ बंधा है। मगर जेब खाली है' , इस संकेत को समझना होगा। उनके सामने क्यों ऐसी वजह रही कि इस तरह के धोखेबाज़ी और पाखंड में विश्वास रखने के बावजूद उनकी जरूरतें पूरी नहीं होती। दरअसल बात यही है कि परसाई इस तरह के पाखंड पर कोड़े बरसाते हैं और समाज को इससे दूर रहने को चेताते हैं। जरा सम्भलिये, कहीं गिर न जाएँ आप। इस पाखण्डी कुँए ने, जिसने न जाने कितनों को मूर्ख बनाया और अपना पत्ता साफ़ कर लिया। अपनी सत्ता बनाये रखी।

हरिशंकर परसाई की विकास यात्रा देखें तो पता चलेगा कि उनका लेखन से गहरा रिश्ता है। उन्होंने आसपास से लेकर ज़माने की पहचान तक लिखा जिससे लोगों का हाज़मा बिगड़ा। नंगे को नंगा कहा तो लोग मारने दौड़े। बुरे को बुरा कहा तो लोगों को रास नहीं आया। सत्य यही है जब भी किसी समझदार, चेतना-संपन्न व्यक्ति ने समाज को सही राह पर लाने की कोशिश की , जिसने समाज की गंदगी को सामने लाने की कोशिश की, तब-तब उस व्यक्ति की जो गत हुई यह किसी को बताने की जरूरत नहीं। मध्यकाल के सबसे गुनी और चेतनावान प्राणी कबीर और भारत-पाक के सबसे क्रांतिकारी लेखक मंटो के साथ भी ऐसा ही हुआ था। 'साँच कहो तो मारन धावै झूठे जग पतियाना।' यही हाल बेचारे परसाई के साथ भी हुआ।[65]

(ख) हरिशंकर परसाई व्यंग्य लेखन पर विद्वानों के मत

---

65 कुछ बातें, चुनी हुई रचनाएँ, हरिशंकर परसाई, संपा. कमलाप्रसाद व प्रकाश दूबे

।

'वीरभारत तलवार' का मत है:- "परसाई ने व्यंग्य के विषय क्षेत्र का अभूतपूर्व विकास किया।...उन्होंने व्यंग्य के लिए असंख्य नए क्षेत्र जुटाए जिन पर पहले किसी की दृष्टि नहीं हुई थी।"[66]

मनुष्य का निर्माण रचनाशीलता के समानुपाती होता है जिस ढंग की रचनाशीलता परसाई की रही है 'सभी प्रकार के सत्ता विरोधी स्वभाव वाली' वैसे ही उनका पाठक वर्ग भी निर्मित हुआ है। इस बात के परिप्रेक्ष्य में डॉ. 'बालेन्दुशेखर तिवारी' के कथन से सहमत हुआ जा सकता है। उनके शब्दों में:- "परसाई की व्यंग्य रचनाओं ने एक नए बुद्धिवादी पाठक का निर्माण किया है। जो केवल रंजित नहीं होता उसका चेतन, अवचेतन सब कुछ यह सोचने में लीन हो जाता है कि परसाई ने सामाजिक दंभ के किस पक्ष का विस्फोट किया है।"[67]

हरिशंकर परसाई हिन्दी के ही नहीं समस्त भारतीय साहित्य के प्रमुख व्यंग्यकार हैं। यह अकारण नहीं कहा जा रहा है। इनकी रचनाशीलता इस बात का स्वयं प्रमाण है। इनकी रचनाशीलता की विश्वसनीयता के विषय में एक जगह 'प्रभाकर श्रोत्रिय' ने लिखा है कि:- "परसाई ने जिस गम्भीर सामाजिकता और मानवीयता का परिचय अपने व्यंग्यों में अक्सर दिया है उससे हिंदी व्यंग्य की विश्वसनीयता और प्रतिष्ठा बढ़ी है।"[68]

पिछले कुछ दशकों की ऐसी कौन-सी महत्वपूर्ण घटना है जिस पर परसाई ने नहीं लिखा है। प्रेमचंद की संवेदना की व्याप्ति परसाई में मिलती है। प्रेमचंद के बारे में कहा गया है कि:- "आप उनकी उँगली पकड़कर पूरे उत्तरी भारत की या पूरे भारत की सैर कर सकते हैं।" ऐसे ही 'विश्वनाथ त्रिपाठी' ने माना है कि:- "परसाई के व्यंग्य-निबंधों को पढ़ते समय आप पूरे वर्तमान भारत को देख सकते हैं।"[69]

---

[66] सामना, वीरभारत तलवार, पृ 19

[67] https://www.apnimaati.com/2021/07/blog-post_4.html

[68] वही

[69] देश के इस दौर में, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ 73

।

परसाई स्वातंत्र्योत्तर युग के युगांतरकारी व्यंग्यकार हैं। उन्होंने हिंदी गद्य को व्यंग्य की एक ऐसी तेजस्विता प्रदान की जो हिंदी जगत के लिए बिलकुल नई थी। आज़ादी के बाद भारतीय जीवन में व्याप्त असंगति, उसकी विद्रूपता और असंतोष को व्यक्त करने के लिए परसाई ने व्यंग्य का ही सहारा लिया। परसाई का लेखन लगभग चालीस वर्षों तक चला। 1950 से 1990 तक की शायद ही कोई ऐसी घटना हो जिस पर परसाई की कलम न चली हो । 'ज्ञानरंजन' जी के शब्दों में 'नामवर सिंह' के इस कथन को अगर मानें कि:- "हिंदी में पिछले पचास साल का साहित्य प्रोटेस्ट का साहित्य है तो परसाई इस प्रोटेस्ट के सबसे विरले रचनाकार हैं। परसाई ने इस समय की राजनीति, साहित्य और सामान्य आचरण की इतनी विकृतियाँ चित्रित की हैं, जिसे देखकर मन चमत्कृत रह जाता है।"[70]

सन 1975 में राष्ट्रीय आपातकाल के समय सत्ता पक्ष के विपरीत जाकर सच कह पाने का साहस परसाई के निबंधों में ही दिखता है। राष्ट्र के धर्म-निरपेक्ष ताने-बाने को नष्ट करने वाले तत्वों को वो अपनी लेखनी के माध्यम से आड़े हाथों लेते थे। 'विश्वनाथ उपाध्याय' लिखते हैं:- "मुझे हरिशंकर परसाई की लंबी पतली काया बंदूक की नली-सी लगती है जिसमें से व्यंग्य भन्नाता हुआ निकलता है और जनशत्रु को छार-छार कर देता है।" [71]

"हरिशंकर परसाई ने पिछले तीस वर्षों में सामान्य-जन को प्रगतिशील जीवन-मूल्यों के प्रति सचेत एवं समाज-राजनीति में भिदे हुए पाखंड को उद्घाटित करने का जितना कार्य किया है, प्रेमचन्द के बाद उतना हिंदी के किसी लेखक ने नहीं किया। हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द की परम्परा को बढ़ाने वाले जो साहित्यकार स्वतंत्र भारत में साहित्य रचना कर रहे हैं, उनमें हरिशंकर परसाई सबसे आगे हैं।"[72]

"हमारी शताब्दी के दूसरे, तीसरे और चौथे के लगभग आधे दशक के प्रतिनिधि जन-लेखक यदि प्रेमचन्द हैं, तो छठवें और सातवें दशक के हरिशंकर परसाई । साहित्य के माध्यम से सामान्य जनता को सामाजिक और राजनैतिक समझदारी देने और सड़ी-गली जीवन-व्यवस्था को नष्ट कर, एक नई समाज-रचना का संकल्प कर, हिन्दी में जिन लेखकों

---

[70] व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य, संपा. प्रेम जनमेजय, पृ 275

[71] https://www.google.com/amp/s/m.thewirehindi.com/article/hindi-literature-harishankar-parsai-satire

[72] काग भगोड़ा, हरिशंकर परसाई, पृ 5 व 6

।

ने साहित्य का निर्माण किया है उनमें परसाई का नाम काफी आगे की कतार में है। प्रेमचन्द ने हमारी संवेदना का जितना विस्तार किया उतना विस्तार बहुत कम लेखक कर पाते हैं। परसाई ने सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ की जितनी समझ और तमीज़ पैदा की उतनी हमारे युग में कोई और लेखक नहीं कर सका है।" [73]

"परसाई एक खतरनाक लेखक हैं, खतरनाक इस अर्थ में कि उन्हें पढ़कर हम ठीक वैसे ही नहीं रह जाते जैसे उनको पढ़ने के लिए होते हैं। वे पिछले तीस वर्षों के हमारे राजनैतिक-सांस्कृतिक जीवन के यथार्थ के इतिहासकार हैं। स्वतंत्रता के बाद के हमारे जीवन मूल्यों के विघटन का इतिहास जब भी लिखा जायेगा तो परसाई का साहित्य सन्दर्भ सामग्री का काम करेगा।"[74]

अपने प्रसिद्ध निबंध संग्रह 'विकलांग श्रद्धा का दौर' के लिए सन 1982 में साहित्य अकादमी सम्मान प्राप्त करने वाले परसाई हिन्दी के एकमात्र व्यंग्यकार हैं। परसाई की रचनाओं के अनुवाद लगभग सभी भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी में हो चुके हैं।

(ग) व्यंग्य पर परसाई की विचारधारा

व्यंग्य और समाज का अभिन्न रिश्ता है। व्यंग्य की उत्पत्ति इसी समाज से सम्भव है जिसमें मानव जीवन निवास करता है। सही व्यंग्य के लिए व्यापक रूप से मानव जीवन व जीवन परिवेश को समझने की जरूरत है। जीवन की कोख में जाकर अंदर से सत्य का पता करके आना और उसी रूप में पेश करने से व्यंग्य की रचना होती है। इस जीवन में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवेश की विसंगति और मिथ्याचार व्यंग्य के लिए अनिवार्य तत्व बनते हैं। ऐसे ही असामंजस्य, अन्याय आदि की तह में जाना व उन कारणों का विश्लेषण करना, उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में देखना इससे सही

[73] वही, पृ 5 व 6

[74] वही, पृ 5 व 6

।

व्यंग्य बनता है। यदि व्यंग्य चेतना को झकझोर देता है, विद्रूप को सामने खड़ा कर देता है, आत्म-साक्षात्कार कराता है, सोचने को बाध्य करता है व्यवस्था की सड़ांध को इंगित करता है और परिवर्तन की ओर प्रेरित करता है, तो वह सफल व्यंग्य है। जितना व्यापक परिवेश होगी, जितनी गहरी विसंगति होगी और जितनी तिलमिला देने वाली अभिव्यक्ति होगी व्यंग्य उतना ही सार्थक होगा। व्यंग्य उतना ही निखर के सामने आएगा। उससे व्यंग्यकार की तीक्ष्ण चेतना, कल्पना शक्ति, तर्क शक्ति का परिचय मिल सकेगा। चूँकि व्यंग्य समाज की विसंगति से पैदा होता है जिसका निर्णय हमारी बुद्धि करती है। अतः कहा जाना चाहिए कि व्यंग्य के निर्माण में मानव-मस्तिष्क का भी अहम रोल है।[75]

परसाई का लेखन भी इन सब तत्वों से अधूरा नहीं। उनकी रचनाओं में बुद्धिपक्ष तो गूढ़ता में छिपा ही रहता है, बल्कि मानव चेतना का बीज भी अंकुरित होता है। उनकी रचनाओं से हमारे मस्तिष्क के बंद ताले भी अकस्मात् खुल जाते हैं। वह समाज की हर गंदी वस्तु का साक्षात्कार कराके उसे नष्ट करने के उपाय बता जाते हैं। वह एक मार्गदर्शक के रूप में हमारे सामने खड़े होते हैं और इंतेज़ार करते हैं हमारी बारी का, 'कि कब हम जागते हैं और समाज की इस गंदगी का सफाया करने के लिए तैयार होते है।'

आज हमारा देश स्वतंत्र है। सैकड़ों वर्षों के औपनिवेशिक शोषण से हमने मुक्ति पाई है। लेकिन लगता है यह स्वतंत्रता एक खास वर्ग के लिए ही आई है। जनता के लिए नहीं, राजनेताओं के लिए। इसलिए परसाई को व्यंग्य लेखन की जरूरत पड़ी। वर्तमान व्यवस्था में व्याप्त अवसरवादिता और भ्रष्टाचार की सडाँध, दूसरी और आम आदमी का त्रासद यथार्थ, मूल्यहीनता के विरुद्ध संघर्ष, इन सबको विश्लेषित कर प्रस्तुत करना यही परसाई के लेखन की ज़मीन है। यही उनकी वैचारिकी है। यह सिर्फ वैचारिक दृष्टि नहीं है, यह अपने समय में देश की समस्त व्यवस्था के ऊपर मंडरा रहे ख़तरे को देखने वाली चौकन्नी दृष्टि है, जिसने अपने समाज को अपने समय में अपनी दृष्टि से देखा है।

---

75 मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, हरिशंकर परसाई, पृ 11

।

परसाई सत् और असत् के चिरंतन संघर्ष में मानवतावादी होने की सुविधा लेते हुए तटस्थ होने की चालाकी नहीं बरतते। इसीलिए वे आम आदमी के साथ होते हैं। यह मानवीय पक्षधरता व सजग विवेक चेतना उनकी व्यंग्यदृष्टि का अविभाज्य हिस्सा है। उनकी दृष्टि मानवीय मुक्ति के विराट स्वरूप में प्रतिफलित होती है। व्यंग्य को कभी उन्होंने किसी के विरुद्ध लड़ने का हथियार बनाया है तो कभी किसी को हिम्मत और ढाँढस बंधाने का साधन।

परसाई ने तुलसी की समन्वयवादी, आदर्शवादी लोकदृष्टि के स्थान पर कबीर की क्रांतिकारी लोकदृष्टि को अपनाया। यही इनकी व्यंग्यात्मक वैचारिकी है। आधुनिक नौकरशाही इस हद तक पहुँच गयी है कि नारद स्वयं भी आयें तो उनकी वीणा घूस के रूप में रखवा लें (भोलाराम का जीव)। परसाई की दृष्टि और अंदर तक गयी और उन्होंने देखा कि घूस लेने के पीछे वास्तविक कारण क्या है (सदाचार का तावीज) ? उनकी पैनी दृष्टि अधिकारों की लड़ाई की ओर गयी जहाँ चूहा अपने हक के लिए उछल-कूद मचाता है, किन्तु आम आदमी गज़ब की तटस्थता अपनाये चुप बैठा है। चूहे से भी गए-गुज़रे 'चूहा और मैं' नेतागण तो सिर्फ कुर्सी के लिए ही बने हैं। आज़ादी की लड़ाई में भाग लिया था , अब उसे भुना रहे हैं। उन बंदरों की तरह जो कहते हैं- बहुत मेहनत की लंका-विजय के लिए अब हमसे आपकी जय बोलने के सिवाय कुछ नहीं होता, 'लंका विजय के बाद' में। इस तरह के अन्य कई प्रसंग हैं।

हरिशंकर परसाई के लेखन में व्यंग्य ऋणात्मक नहीं है। वह उनका मौलिक सृजन है, उनकी खुद की पैदावार है। उनका श्रम है, उनका पसीना है जिसमें एक बेहतर समाज की छाया दिखाई देती है। वह अपने समय की राजनैतिक, शैक्षिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक विसंगतियों पर किए गए व्यंग्य की ईमानदारी बरतते है, जिसमें बिना किसी लाग लपेट के ऐसी विसंगतियों पर प्रहार है। जो मानव विरोधी है। इस प्रहार में कोई मैल नहीं है अपितु पाश्चात्य आलोचक 'मेरीडेथ' के शब्दों में कहें तो 'एक सामाजिक ठेकेदार का रूप था जो सामाजिक सफाई में विश्वास करता है।' 'प्रेम जनमेजय' को दिए गए एक साक्षात्कार के दौरान परसाई ने भी कहा था – "व्यंग्यकार के अंदर मैल नहीं होना चाहिए।"[76]

76 https://abhivyakti-hindi.org/snibandh/2001/parsai.htm

।

एक झोंक में हर किसी पर आक्रमण करते चले जाना परसाई की प्रवृत्ति नहीं है। वह निशाना तय करते हैं किस पर आक्रमण किया जाए, व्यंग्य के लिए किसे निशानेबाजी का पुतला बनाया जाए। यह परसाई की सुलझी हुई चेतना का विश्लेषण है। वह तय करते हैं किसके लिए रोना है और किसके ख़िलाफ हँसना है। उनके लेखन में एक गहरी करूणा छिपी है जो पाठक को सही चिंतन की ओर मोड़ती है। यही करुणा दयनीय, असहाय और बेबस लोगों की शक्ति बनकर लेखन में फूटती है और उन्हें न्याय दिलाने के लिए सबसे आगे रहती है। व्यंग्य के प्रति हिंदी के आलोचकों की उपेक्षा पर भी उन्होंने व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ की है। परसाई का मूल विरोध ऐसे आलोचकों से था जो व्यंग्य को हास्य के साथ जोड़ते हैं तथा उसे दूसरे दर्जे का साहित्य मानते हैं। परसाई एक दृष्टि संपन्न रचनाकार हैं। उन्होंने हास्य और व्यंग्य के भोंडे मिश्रण को अलग करके देखा है। परसाई ने व्यंग्य के लिए हास्य की बैसाखी को कभी स्वीकार नहीं किया। यही कारण है कि उनके साहित्य में फूहड़ हास्य का कोई स्थान नहीं है। उन्होंने व्यंग्यकार के रूप में स्वयं को 'फनीथिंग' मानने से भी इंकार किया।[77]

परसाई की दृष्टि करुणा के सागर के समान है जिसमें प्रत्येक दुखियारे-दुखियारिन के लिए बराबर स्थान है। उनकी एक रचना है 'अकाल उत्सव'। इसे देखने के बाद समझ आता है कि इनके लेखन में आई करुणा रौंगटे खड़े कर देने का दम रखती है। रचना का शीर्षक ही व्यंग्य की सृष्टि करता है। इस रचना में स्पष्टतः परसाई दबे तथा साधनहीन तबके के साथ खड़े दिखाई देते हैं। वह लिखते हैं:- "हड्डी-ही-हड्डी। पता नहीं किस गोंद से इन हड्डियों को जोड़कर आदमी के पुतले बनाकर खड़े कर दिए गए हैं। यह जीवित रहने की इच्छा ही गोंद है। यह हड्डी जोड़ देती है। सिर मील भर दूर पड़ा हो तो जुड़ जाता है। जीने की इच्छा की गोंद बड़ी ताकतवर होती है। पर सोचता हूँ यह जीवित क्यों हैं। ये मरने की इच्छा खाकर जीवित हैं। ये रोज कहते हैं– इससे तो मौत आ जाए अच्छा ।"[78]

परसाई के उक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी रचनात्मक चेतना आत्माभिज्ञान, अनुभवों के तार्किक विश्लेषण से परिपक्वता की ओर अग्रसर हुई है। इसी संदर्भ में 'कांतिकुमार जैन' का उद्बोधन परसाई की सतत्

[77] वही

[78] परसाई रचनावली, भाग- 1, पृ 316

।

सामाजिक सरोकार के प्रति दृढ़ता और समर्पण भाव को लक्षित करता है:- ''परसाई एक खतरनाक लेखक हैं, खतरनाक उस अर्थ में कि उन्हें पढ़कर हम ठीक वैसे नहीं रह पाते जैसे उनको पढ़ने से पहले रहते हैं। वे पिछले अनेक वर्षों से हमारे राजनैतिक-सांस्कृतिक-सामाजिक जीवन के यथार्थ के इतिहासकार है।[79]

हमारा वर्तमान सामाजिक परिदृश्य अनेक प्रकार की विसंगतियों के कारण विकृत हो चुका है। जिसपर परसाई बेबाक प्रहार करते हैं और लोक कल्याण की भावना से समाज में नई चेतना का संचार करना चाहते हैं। परसाई की संवेदनापूर्ण निष्पक्ष और विवेकोचित अभिव्यक्तियाँ व्यंग्य को आमजन से जोड़ती हैं और प्रभावशाली अभिव्यक्ति का माध्यम बनती हैं। परसाई ने अपने व्यंग्य लेखन के द्वारा आधुनिक समाज के लगभग सभी कोनों को छुआ है। जीवन के सभी समसामयिक प्रश्नों पर गहनता से विचार किया है। पाठक को भी वे सभी क्षेत्रों पर सोचने के लिए विवश करते हैं। इसीलिए परसाई के लेखन में उनके धार्मिक, शैक्षिक, साहित्यिक, सामाजिक व राजनैतिक संबंधी विचारों पर चर्चा करना समीचीन होगा।

धर्म संबंधी विचार

इस संसार में सभी धर्मों की स्थापना मानवीय समता, निःस्वार्थ त्याग और आदर्श की भावना को लेकर हुई थी। सभी धर्मों का मूल एक ही है- मानव कल्याण। संसार में शांति और भाईचारे के साथ रहना, प्रेम बाँटना, छोटे-बड़ों का आदर करना इत्यादि मूल्यों को बनाये रखना ही इनका उद्देश्य है। किन्तु उनके मतावलम्बी आज ठीक इसके विपरीत आचरण कर रहे हैं। और धर्म के ठेकेदारों ने इसे एक गोरखधंधा बना दिया है। उसमें भी सबसे ज्यादा 'हिन्दू धर्म' में। परसाई 'अरस्तू की चिट्ठी' में कहते हैं:- "धर्म का जो वास्तविक तत्त्व है , उसे भुलाकर आडम्बर किए जा रहे हैं। धन के चोचले बताये जा रहे हैं , मैंने पहले भी कहा था कि जिस धर्म के पालन करने में लाख रुपये लगे, वह धर्म नहीं, धंधा

[79] काग भगोड़ा, हरिशंकर परसाई, पृ 5 व 6

।

होगा।[80] इसे और आसानी से समझने के लिए बॉलीवुड की चर्चित फिल्म 'ओ माई गॉड' देखनी चाहिए। इसमें परेश रावल कहते हैं:- "आप किसी भी मंदिर में जाइये , जाते ही आपके सामने दानपात्र मिलेगा। सर झुका नहीं कि बाअअअ, पैसे डालो। उसके बाद छोटी लाइन 'स्पेशल लाइन' का भी पैसा लेते हैं। और इतना ही नहीं दरगाह की चद्दर, चर्च की कैंडल, माँ की चुंदड़ी। …..अरे मीलॉर्ड ये लोग तो भगवान के प्रसाद का भी पैसा लेते हैं।"[81]

इन सभी धर्मों की ये हालत न केवल उनके ठेकेदारों ने की है बल्कि उस पाखंड में विश्वास जताने वाले अंधभक्तों की भी देन है। यदि इन अंधभक्तों की आँखे समय से खुल गयी होती या आज भी खुल जाए तो ये हालत न हो। ये कथित भक्त निजी स्वार्थों के लिए दया, त्याग और आदर्श भावना का दिखावा करते हैं। 'मुँह में राम बगल में छुरी' वाली वृत्ति आज सभी धर्मों का अंग बनी हुई है। इस पर परसाई कहते हैं:- "सब धर्माचार्यों को उसके भक्तों ने ही कलंकित किया है। सनातन धर्म वाले कभी बौद्धों के सिर काटते थे। फिर बौद्धराज्य हुए तो सनातनधार्मियों के मस्तक उतारने लगे। ईसाई धर्म वाले हिरोशिमा में बम पटकते हैं और ओमान में नरसंहार करते हैं। इस्लाम वाले कश्मीर में लूट, आगजनी, हत्या करते हैं। जैन धर्म वाले पानी छानकर पीते हैं, मगर खुले बाजार आदमी का खून बगैर छना पी जाते हैं।"[82]

परसाई का धर्म मानवीयता के व्यापक धरातल पर खड़ा है। वे मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। जो धर्म मनुष्य की अवहेलना करे, वह धर्म है ही नहीं, ढोंग है। उनका धार्मिक पक्ष मानवता को प्रथम स्थान देता है, तब किसी अन्य का स्थान आता है। इसी संदर्भ में उन्होंने कहा भी है:- "मनुष्य से बड़ा कोई नहीं है। मनुष्य का जिससे कल्याण होता है, वह धर्म है। जो मनुष्य का हित करता है, वही साधु है। जो मनुष्य को ऊपर उठाता है, वही संत है।"[83]

धर्म जैसे गम्भीर और गूढ़ सवाल के उत्तर को समझने के लिए इससे संबंधी अनेकानेक परिभाषाओं में से एक परिभाषा यह भी हो सकती है जिसे उपरोक्त फ़िल्म 'ओ माई गॉड' में अभिनेता 'अक्षय कुमार' कहते हैं- "मज़हब इंसानों

---

80 परसाई रचनावली, भाग 6, पृ 54

81 http://moviedialoguesinhindi.blogspot.com/2015/06/omg-movie-dialogues-in-hindi.

82 परसाई रचनावली, खण्ड 6, पृ 41

83 परसाई रचनावली, खण्ड 4 , पृ 359

।

के लिए बनता है इंसान मज़हब के लिए नहीं बनते।"[84] मेरा मत भी इसी से मिलता जुलता है कि धर्म की स्थापना मनुष्य ने अपनी सहूलियत के लिए की थी न कि ईश्वर की चिंता में। भगवान, धर्म, शास्त्र, वेद, उपनिषद, पुराण इत्यादि प्राचीन धार्मिक ग्रन्थ इन सबकी निर्मिति मानव समाज के हित के लिए की गई है। परन्तु समय के प्रवाह में यदि उसमें कुछ संशोधन करना पड़े तो उसके लिए भी तैयार रहना चाहिए। नाकि यह सोचें कि हमारे पूर्वजों व ऋषियों ने जो बातें कह दी वह 'पत्थर की लकीर' है। इसलिए आये रोज़ धार्मिक ग्रँथों पर सवाल उठते रहते हैं और बहस छिड़ी रहती है।

परसाई ने धर्म और आस्था के नाम पर फिजूलख़र्ची और जरूरतमन्दों की मदद न करने वालों को भी आड़े हाथों लिया है। वह कहते हैं:- "लोग पंडित को पैसे देकर ग्रह शांति का जाप करवाते हैं। मानों भगवान से कह रहे हों, 'हमें तो आपका नाम लेने की फुर्सत नहीं, इन्हें पैसे दे दिये हैं, ये तुम्हारी स्तुति गा देंगे।" भगवान भी क्या देख सुन नहीं सकता ? वह स्तुति करने वाले को फल देगा या पैसे देने वाले को ? हमारे समाज में अंधविश्वास इतने गहरे पैठ गया है कि उसे निकालना बहुत मुश्किल है। परसाई ने बड़ी सहजता से इसका वर्णन किया है- "साधो, अष्टग्रहों को बुद्ध बनाने के प्रयत्न चालू हो गये हैं। जगह-जगह यज्ञ हो रहे हैं। हजारों-लाखों रुपये यज्ञ के लिए चन्दे में मिल जाते हैं। जहाँ अस्पताल या स्कूल के लिए फूटी कौड़ी गाँठ से नहीं निकलती , वहाँ यज्ञ के लिए रुपये निकल आते हैं। इस उत्साह से यज्ञ हो रहे हैं कि सारे देश के वातावरण में धुआँ छा जायेगा और ग्रहों को दिखेगा ही नहीं कि भारत कहाँ है। बस , वे चीन की ओर चले जायेंगे।"[85]

अतः कहा जा सकता है कि परसाई ने धर्म और ईश्वर के नाम पर समाज में पाखंड फैलाने वालों को तबियत से धोया है। उन्होंने किसी धर्म की पक्षधरता में आकर दूसरे धर्म के साथ अन्याय नहीं किया। उनका सभी धर्म में समान विश्वास था जोकि मानव कल्याण पर आधारित था। परसाई ने सभी धर्मों की अनुचित क्रियाओं को समाज के सामने लाकर चेताने की चेष्टा भी की है। उन्हें धर्म से नहीं उसमें शामिल धोखेबाज़ी , छलावे , लूटपाट आदि क्रियाओं से परहेज़ है।

---

[84] http://moviedialoguesinhindi.blogspot.com/2015/06/omg-movie-dialogues-in-hindi.

[85] परसाई रचनावली, भाग -5, पृ 39

।

शिक्षा सम्बन्धी विचार

किसी भी देश की उन्नति, तरक्की या प्रगति हो उसके लिए अव्वल शिक्षा ही सबसे महत्वपूर्ण है। शिक्षा के अभाव में जन-जागरूकता नहीं आ सकती, समाज किसी भी क्षेत्र में आविष्कार के योग्य नहीं हो सकता। समाज को सही दिशा में आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। शिक्षा का अभाव ही होगा जब हम सामाजिक रूढ़ियों, वर्जनाओं, अनुचित को रोकने में असमर्थ रहेंगे। शिक्षा के अभाव में जनता में स्वतंत्रता का भाव व अपने हक के लिए लड़ना सिखा नहीं पाएँगे। शारिरिक रूप से सोती हुई जनता को पानी के छींटे मारकर, उसके कान के पास भोंपू बजाकर, कुछ उठापटक करके या कोई वस्तु गिराकर उसे उठाया जा सकता है। या कुंभकर्ण को जिस योजना के तहत नींद से जगाया गया था उसका भी पालन किया जा सकता है परन्तु ! यह 'लेकिन' , 'किंतु' , 'परन्तु' शब्द बहुत गहरे अर्थ रखते हैं जिससे एक झटके से अर्थ बदल जाता है। भाव बदल जाता है। परन्तु मानसिक रूप से सोती हुई जनता को तो केवल शिक्षा के दमपर ही जगाया जा सकता है न ! इसके लिए पाठशाला में भेजा जा सकता है, गुरुकुल में भेजा जा सकता है या लोगों के बीच व्यवहारिक ज्ञान के माध्यम से भी सचेत किया जा सकता है। इन सबका मूल एक ही है- शिक्षा के अभाव में समाज चल नहीं सकता।

हरिशंकर परसाई ने शिक्षा को विभिन्न दिशाओं से देखा है जिसमें एक दिशा उसके विकृत रूप में झलकती है। वह शिक्षा को एक ऐसे व्यवसाय के रूप में देखते हैं जहाँ शिक्षक एकदम मज़े से जिंदगी काटते हैं। विद्यालय उनके लिए शिक्षा देने का स्थान नहीं, बल्कि आराम फरमाने की जगह है। उनका कहना है कि हमारे देश में यह एक परम्परा ही बन गयी है जो जितने ऊँचे पद पर हो, वह उतना ही कम कार्य करेगा। प्राइमरी, मिडिल, हाईस्कूल, कॉलेज और फिर विश्वविद्यालय क्रम से अध्यापक का पढ़ाने का कार्य कम होता जाता है, विश्वविद्यालय में बिल्कुल ही पढ़ाई नहीं होती। आचार्य आशीर्वाद देते हैं बच्चे आशीर्वाद लेते हैं और जमा करते जाते हैं। जिस बच्चे के पास जितने ज्यादा आशीर्वाद वह उतना ही गुणी। अब उसके गुण में कितनी सच्चाई है और उसके गुण से क्या निखार आएगा यह तो उसका अध्यापक ही बताएगा। परसाई कहते हैं:- "अब साथी जहाँ तक अच्छे नम्बर मिलने और पहला दर्जा पाने का सवाल है, प्राइमरी

।

से लेकर विश्वविद्यालय तक सब गुरु कृपा से होता है। अपना युगों से विश्वास रहा है कि विद्या पढ़ने से नहीं आती, गुरु कृपा से आती है। गुरु अगर प्रसन्न हो जाये तो अपने प्रिय विद्यार्थी को एकलव्य का अंगूठा काटकर दे सकता है।"[86]

अच्छे नम्बर के लिए चाहे किसी कला की कुर्बानी देनी हो वह इसके लिए भी तैयार रहते हैं। उन्हें अपने बच्चों से मतलब है , भाड़ में जाये दूसरे बच्चे , हमें तो अपने बच्चों को आशीर्वाद देना है। उनके बच्चे उनका झोला उठाते हैं , बात-बात पर नमस्ते-सर नमस्ते -सर कहते हैं, दूसरों के आगे अध्यापक के गुणगान गाते थकते नहीं। इन लोगों ने न जाने कौन-सा टॉनिक लिया होता है कि आठों पहर जी-हुजूरी के बाद भी ढीले नहीं होते। इतनी तपस्या पर गुरुकृपा तो बनती है।

हमारे देश का भी अजब हाल है। जो जिस काम में गुनी होता है उसे तो वह सौंपा नहीं जाता लेकिन जिसे उस काम की ज़रा भी जानकारी नहीं उसे झट उस काम के लिए नियुक्त कर दिया जाता है। हमारे देश में ऐसे-ऐसे मंत्री हैं जिन्हें राजनीति का 'र' नहीं पता होगा लेकिन मंत्री बने बैठे हैं। नौटंकी करने वाले कहीं सरकार में आ बैठे हैं। कोई गीत गाने वाला तो कोई फिल्म अभिनेता। तो कई स्पोर्ट्समैन सरकार का अंग बनने लगे हैं। ऐसे में उनके फ़ैसले कई बार खुद उन्हें ही समझ नहीं आते की क्या बोल गए , तो जनता को ख़ाक समझ आएगा। शिक्षा के मामले मंत्रियों द्वारा तय करने के बाबत परसाई कहते हैं:- "और एक विचित्र बात है। हमारे यहाँ भाषा और साहित्य के मामले भी मंत्रियों द्वारा तय होते हैं। भाषा या लिपि के निर्णय विशेषज्ञ नहीं लेते, मंत्रिगण बैठकर तय कर लेते हैं। इन मंत्रियों को शिक्षा , साहित्य और भाषा के विषय में कितना ज्ञान है, यह कोई बताने की बात नहीं है। हमारी हर वस्तु का भाग्य-विधाता राजपुरुष और राजनेता है, सर्वज्ञ है। शिक्षा मंत्रियों ने तय कर लिया है कि अंग्रेज़ी अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाने वाला विषय होना चाहिए। क्यों होना चाहिए ? उन्हें क्या सामान्य भारतीय विद्यार्थी की विडम्बना मालूम है ? सामान्य बुद्धि के, तीसरे दर्जे में ढकेले जाने वाले लड़के अंग्रेजी में क्यों सर खपायें ? कितने लड़कों की जिन्दगी खराब होती है , इसे वे ही जानते हैं , जो शिक्षण कार्य में लगे हैं।"[87] उदाहरण के लिए जब देश की सबसे बड़ी नौकरी कराने वाली संस्था के सिलेबस में कुछ

---

86 हिंदी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, डॉ मदालसा व्यास, पृ 43

87 परसाई रचनावली, खण्ड 6, पृ 154

।

फेरबदल करने की बात चल रही थी और सी-सैट को जोड़ने की बात हो रही थी तब इसे डिबेट में ‘मनोज तिवारी’ को सरकार का प्रवक्ता बनाकर भेजा गया था। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि सरकार को अपना बचाव करना है चाहे जो हो जाए। लेकिन बचाव के चक्कर में सरकार यह भूल कर बैठती है कि जिसे प्रवक्ता के तौर पर भेजा गया है उसे विषय का ज्ञान ही नहीं है। उलटा वो सरकार की नाक कटवा देगा। इसी डिबेट में ‘विकास दिव्यकीर्ति’ सर ने अपने तर्कों से मनोज तिवारी के परख्च्चे उड़ा दिए थे। एक और उदाहरण लीजिए। ‘संबित पात्रा’ को भी सरकार हर विषय पर बोलने के लिए छोड़ जाती है। क्या एक आदमी को सभी विषयों पर गहन जानकारी हो सकती है ? यह असंभव है। हाँ अगर पार्टी को बचाने की बात है तो अलग मसला है। और वैसे भी संबित पात्रा खुद भी ये कुबूल चुके हैं कि वह प्रवक्ता हैं और प्रवक्ता का काम सरकार का पक्ष रखना होता है उसे बचाना होता है।

इसी क्रम में परसाई जिस अंग्रेज़ी भाषा के जबरन थोपने की चर्चा करते हैं उसे 'हिंदी मीडियम' मूवी में भी देख सकते हैं। जहाँ जबरदस्ती अंग्रेज़ी की तरफ झोंकना, अंग्रेज़ी के बिना बेकाम का मानना, अपमानित समझना दिखाया गया है। एक इंटरव्यू में 'मनोज वाजपेयी' ने भी इस समस्या पर अपने विचार रखते हुए कहा है:- "हमारे देश में अंग्रेजी को भाषा के तौर पर कभी लिया ही नहीं गया। उसे एक स्किल के तौर पर लिया है। अगर आपको अंग्रेजी नहीं आती तो आप इसके लायक नहीं।"

स्वातंत्रोयत्तर भारत में जिन मूलभूत सुविधाओं पर काम करने की जरूरत समझी गई थी उसमें शिक्षा भी थी। परन्तु इसका परिणाम क्या निकला यह हमसे छुपा नहीं। आज शिक्षा की क्या हालत हो गयी है इसे समझने के लिए आपके आसपास हजारों की संख्या में कोचिंग माफियाओं की दुकानें खुली हैं। इसके पीछे के तर्क और कारण को समझने के लिए आपको थोड़ा परिश्रम करना होगा और जानना होगा सरकार की शिक्षा के प्रति जागरूकता और जिम्मेदारी को। शिक्षा के लिए दिए जाने वाला बजट इसका सबसे बड़ा कारण है। क्योंकि पैसा नहीं तो विकास नहीं।

शिक्षा जैसी मूलभूत आवश्यकताओं पर जब देश का बजट ख़र्चा नहीं जाएगा तब ऐसी स्थिति में बच्चों को कोचिंग सेंटर की तरफ ही मुँह बाए खड़ा रहना होगा। जो काम एक सरकार को करना चाहिए वह काम देश के बड़े-बड़े

।

शिक्षक ऑनलाइन-ऑफलाइन कोचिंग क्लास के माध्यम से कर रहे हैं। सालों से शिक्षा को भी व्यवसाय बनाया जा रहा है। जगह-जगह प्राइवेट स्कूल व कॉलेज खोले जा रहे हैं। उनमें छात्रों के भविष्य के बारे में कम, लाभ-हानि के बारे में ज्यादा ध्यान दिया जाता है। क्योंकि प्राइवेट का एक ही अर्थ होता है 'पैसा कमाना'। वह आपके लिए नहीं खुद के लिए जन्म लेता है। कई स्कूल, कॉलेज तो किसी कंपनी के अंदर या उसकी शाखा के तहत चल रहे होते हैं जहाँ के अध्यापकों की हालत एकदम घर के नौकर के समान होती है। जिन्हें अपने मालिकों के लिए काम करना होता है स्कूल-कॉलेज के लिए नहीं। इसपर परसाई कहते हैं:- "जैसा कि आरंभ से ही घोषित कर दिया गया है, यह कॉलेज हमारी फर्म की एक शाखा है। इसलिए इसके प्रिंसिपल का दर्जा हमारी दुकान के हेड मुनीम के बराबार रहेगा और प्रोफेसर लोग मुनिम माने जाएँगे।"[88]

देश की इस बिगड़ती हुई शिक्षा पद्धति को उचित रूप से समझने के लिए हमें 'आरक्षण' , 'सुपर 30' , 'हिचकी' , 'हिंदी मीडियम' , 'अंग्रेजी मीडियम' , 'थ्री इडियट्स' , 'निल बटे सन्नाटा' , 'आई एम कलाम' , 'तारे ज़मीन' पर आदि फिल्में देखनी चाहिए। इन फिल्मों के माध्यम से भारतीय शिक्षा परंपरा जो अभी तक किस हालत में पहुँच गयी है और किस तरह शिक्षा का ढाँचा पूरा टूटता जा रहा है ,इनमें बखूबी दर्शाया है।

समाज सम्बन्धी विचार

किसी भी स्वस्थ समाज की कल्पना हर कोई करता है या करना चाहता है। इसलिए बात-बात पर रामराज्य या एक सुंदर, सभ्य समाज की स्थापना पर लोगों का ज़ोर रहता है। एक ऐसा समाज जहाँ सभी सुरक्षित हों, सभी को स्वतंत्रता हो, सभी को अपनी बात रखने का हक हो। आप सड़क पर चल रहे हों तो ऐसा न लगे कि कहीं कोई कमेंट पास कर देगा। आप अपनी बहन क्यों प्रेमिका के साथ भी चल रहे हो तो ऐसा न लगे की कोई दल आके आपको कूट देगा। क्योंकि

[88] पगडंडियों का ज़माना, हरिशंकर परसाई ,पृ 18

।

ऐसे दल अपनी मानसिक विकृति और कुंठा के शिकार होते हैं। ऐसे दलों को समर्थन देने वालों का आलम यहाँ तक है कि स्वयं प्रेम में पड़े होने के बावजूद ज्ञान ऐसा देंगे कि बस पूछो मत।

आप अपने घर से बाहर किसी काम से निकले हैं तभी देखते हैं कि यात्रा के लिए पैसे नहीं हैं, तब किसी दूसरे यात्री द्वारा आपकी टिकट लेना एक सभ्य समाज का परिचय है। आपको अर्जेंट कॉल करना है और आपके फोन में बैलेंस नहीं है तब कोई दूसरा आपको कॉल करा दे या सड़क पार करने में कोई बुजुर्गों की मदद कर दे तब आपने एक बेहतर समाज की स्थापना करने में भूमिका निभाई है। ऐसे ही छोटे-छोटे उदाहरणों से एक सभ्य समाज बनता है। रात के बढ़ते अंधियारे में भी अगर आप सुरक्षित घर पहुँच जाते हैं तो हम समझ सकते हैं हम एक अच्छे समाज में जी रहे हैं। नहीं तो रात के चमगादड़ आपको तंग करने लगेंगे। इसके लिए 'तापसी पन्नू' और 'अमिताभ बच्चन' की प्रसिद्ध मूवी 'पिंक' का यह डायलॉग देखना चाहिए जब कोर्ट में तापसी पन्नू और उनकी साथी सहेलियों पर अटेंप्ट टू मर्डर और एक्सटॉर्शन का केस चल रहा होता है। फ़िल्म में वकील सहगल साहब 'अमिताभ बच्चन' कहते हैं- “रात को लड़की जब सड़क पर अकेली जाती है तो गाड़ियाँ धीमी हो जाती है और उनके शीशे नीचे हो जाते हैं। दिन में ये महान विचार किसी को नहीं आता।"[89]

इस सभ्य समाज की स्थापना उसमें रह रही जनता से ही मुमकिन है। किसी भी समाज को बनाने और बिगाड़ने में केवल-और-केवल वहाँ की जनता ही ज़िम्मेदार है। उसी समाज से कुछ असामाजिक तत्व निकलकर समाज को गंदा करते हैं और उसी समाज से कुछ बुद्धिजीवी , कुछ देवता तो कुछ देवता-रूपी दानव भी पैदा होते हैं , जिनका काम समाज से इस गंदगी को हटाना है। इसके लिए जनता का जागरूक रहना अनिवार्य है। परसाई वर्तमान समाज की इसी सड़ी-गली व्यवस्था का घोर विरोध करते हैं। समाज की अव्यवस्था दूर करने के लिए सामान्यजन को सजग करते हुए परसाई कहते हैं:- "अव्यवस्था दूर करने के लिए ठोस कदम उठाना होगा। मात्र भाषणों , लेखों और सर्कुलरों से समाज की स्थिति नहीं सुधर सकती। इसके लिए समाज की व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाना होगा। बिना व्यवस्था में परिवर्तन

[89] www.scrolldroll.com/dialogues-from-pink

।

किए , भ्रष्टाचार के मौके बिना ख़त्म किए और कर्मचारियों को बिना आर्थिक सुरक्षा दिये, भाषणों, सर्कुलरों, सदाचार समितियों, निगरानी आयोगों द्वारा कर्मचारी सदाचारी न होगा।"[90]

परसाई का कहना है कि हम लोग दुनियाभर की उदारता और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का नारा लगाते हैं किन्तु अपने सामाजिक और पारिवारिक परिवेश में इतने संकीर्ण हैं कि हमारी नयी पीढ़ी अंदर ही अंदर घुटन महसूस करने लगती है। घुटन में विकृति और रुग्णता आती है। लेखक कहता है:- "तुम्हारे बुज़ुर्गवार जो स्वयं करते हैं, उसे दूसरों के लिए बर्ज्य मानते हैं। ढलती उम्र का बूढ़ा बालों में खिजाब लगाता और ताकती गोलियाँ खाता है, पर अगर उसकी तरुणी लड़की आईने के सामने ज्यादा देर खड़ी रहे तो उसे लगता है कि यह गलत है। रात की काली चादर ओढ़कर सब कुछ करने वाले दिन निकलने पर कैसे सभ्य बन जाते हैं। तुम्हारे सामाजिक जीवन का पाखंड है यह जिसके कारण असंख्यक युवक-युवती अपने जीवन को अंत करने योग्य समझने लगते हैं।"[91]

अक्सर हम अपनी रिश्तेदारी में होने वाले गलत के प्रति चुप्पी साध लेते हैं और कन्नी काटकर निकल जाते हैं। सोचते हैं कहीं उन्हें बुरा न लग जाए , कहीं हमारी छवि धूमिल न पड़ जाए। इन्हीं रिश्तेदारों की तो कृपा है जिससे हमें सैकड़ों काम निकलवाने हैं। बच्चों की शादी से लेकर उनकी नौकरी तक, जरुरत पड़ने पर उधार माँगने से लेकर लड़ाई होने पर इन्हें बुलाने तक, हर जगह यही रिश्तेदार तो काम आते हैं। फिर इनके खिलाफ कैसे जाएँ ? जबकि होना तो यह चाहिए कि सबसे पहले खुद के लोगों के खिलाफ खड़ें होना सीखना चाहिए तब कहीं दूसरों को सिखाना चाहिए। ऐसे दोमुँहे व्यवहार पर परसाई कहते हैं:- "कि कोई पराया व्यक्ति गलती करे तो हम उसे टोक देते हैं, जबकि हमारा कोई रिश्तेदार या मित्र गलत काम कर रहा हो तो हम अपना फर्ज भूल जाते हैं और उसे सचेत नहीं करते। हम सोचते हैं दोस्ती है , ऐसा कहना ठीक नहीं, उन्हें बुरा लग सकता है। यदि कोई गड्ढे में गिर रहा है तो उसे सचेत करने के बदले कहेंगे-

---

[90] हिंदी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, डॉ मदालसा व्यास, पृ 44

[91] परसाई रचनावली, खण्ड 6, पृ 43

।

रिश्तेदारी का मामला है, बुरा मानेंगे। गिर ही जाने दो।"[92] यदि हमें समाज के प्रति अपने कर्तव्य को निभाना है तो जो कुछ हो रहा है, वह ठीक नहीं है, तो उसके बारे में साफ़-साफ़ राय देनी चाहिए। हो सके तो विरोध करना चाहिए।

परसाई ने समाज सेवा के नाम पर बढ़ती लूट को भी अपने लेखन में स्थान दिया है। उनका कहना है कि कुछ लोग समाज सेवा के नाम पर चंदा एकत्र करते हैं, उनसे समाज का कम , अपना भला ज्यादा करते हैं। उसी पैसे को खा-खा के भारी भरकम मुट्टले हो गए हैं और उनकी बढ़ती तोंद उस प्रत्यक्ष का प्रमाण है। जब जनता इनकी चालाकी समझ जाती है तो ये कहते हैं- "मानव सेवा में बहुत ख़तरे हैं। मेरा दो बार चिराव हो चुका है और तीन बार पिट चुका हूँ।"[93]इस तरह के उदाहरण समाज में बहुतेरे हैं जैसे- लोग जागरण , कावड़ यात्रा या माता की चौकी के लिए पैसे माँगते हैं। कभी ब्लाइंड या हैंडीकैप्ड बच्चों के नाम पर पैसे माँगते हैं तो कभी गरीब बच्चों के लिए , जिसे 'सोशल वर्क' का नाम दे कर वसूला जाता है और अपनी पर्सनल लाइफ सुविधाभोगी बनाई जाती है।

राजनीति सम्बन्धी विचार

हरिशंकर परसाई के सबसे ज्यादा व्यंग्य राजनीति पर लिखे गए हैं। उनकी नज़र समाज के सभी पक्षों पर तो गई है परन्तु राजनीति पर उनका प्रेम कुछ गहरा ही उमड़ा है। वह राजनीति को मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी निर्णायक शक्ति मानते हैं। उनका मानना है कि 'राजनीति हमारे जीवन का एक अंग है, इससे अलग होकर रहने की बात सोची ही नहीं जा सकती। क्योंकि जो लोग यह कहते हैं कि उनकी कोई राजनीति नहीं, उनकी राजनीतिक विचारधारा नहीं है, वह भूल करते हैं। सबसे बड़ी राजनीति ही यही है- कि हमारी कोई राजनीति नहीं।' राजनीति ही हमारा भविष्य तय करती है, इसे संपूर्ण देश का भाग्य-विधाता कहा जा सकता है। क्योंकि वोट के आधार पर ही किसी की सरकार बनती है और वह शासन चलाता है। जिस देश व राज्य की राजनीति या सरकार जिस तरह से कार्य करेगी वहाँ की प्रजा भी उसी गति में

---

92 हिंदी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, डॉ मदालसा व्यास, पृ 45

93 परसाई रचनावली, खण्ड, 6,पृ 140

।

बढ़ने लगती है। हम इस राजनीति से किसी भी रूप में बच नहीं सकते। इसलिए परसाई ने राजनीति को जीवन का अभिन्न हिस्सा माना है। वह कहते हैं:- "आज के लेखन का विशेषतः व्यंग्य लेखन का मूल स्वर राजनीतिक ही है। यह कोई अनहोनी बात नहीं है। ख्याल इस बात का रखना है कि राजनीति के मूल स्वर में जीवन के अन्य पक्ष महत्त्वहीन न हो जायें।" वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था से आज के लेखक का मोह भंग हो गया है। वह दूसरों को भी सचेत करता है:- "इस व्यवस्था की चादर फटकर तार-तार हो गयी है और रफूगर उसमें पैबंद लगाने की कोशिश कर रहे हैं। तार-तारमें कहीं पैबंद लगता है। चादर ही बदलनी पड़ेगी जनाब।"[94]

राजशक्ति और साहित्य का संघर्ष आजकल तीव्र होता जा रहा है। जैसे-जैसे साहित्य बढ़ता जा रहा है उसमें व्यंग्य की संख्या भी तेजी आ रही है। और इस व्यंग्य के सबसे ज्यादा विषय राजनेताओं के खोखले वादे, उनकी झूठी योजनाएँ, उनके अधूरे प्रोजेक्ट और किसी निर्माण में जिस श्रद्धा और तल्लीनता से काम किया गया है, वो सब व्यंग्य की शोभा बढ़ा रहे हैं।

जिस अराजनैतिक होने की चर्चा ऊपर की जा रही है उसके लिए परसाई कहते हैं:- "राजनीति से मुझे परहेज नहीं। जो लेखक राजनीति से पल्ला बचाते हैं, वे वोट क्यों देते हैं ? वोट देने से ही राजनीति तय होती है। बुद्धिजीवी चाहे सक्रिय राजनीति में भाग न ले, पर वह अराजनैतिक नहीं हो सकता। जो अराजनैतिक होने का दावा करते हैं, उनकी राजनीति बड़ी खतरनाक और गंदी होती है।"[95]इसलिए किसी भी व्यक्ति का अराजनैतिक होना पॉसिबल ही नहीं। चाहे वह वोट दे या न दें , बावजूद उसके वह टैक्स देता है , राजनीति पर बात करता है , राजनेताओं पर बहस करता है , सरकार की योजनाओं का समर्थन या विरोध करता है, किसी पार्टी पॉलिटिक्स के काम को सराहता है या बाकी बातें। तब भी वह राजनैतिक ही कहलायेगा। क्योंकि यह सभी बातें राजनीति के अंतर्गत ही शामिल हैं। लिहाज़ा कोई भी टैक्सपेयर, कोई भी सजग मनुष्य, राजनीति की इंच भर भी समझ रखने वाला व्यक्ति अराजनैतिक नहीं हो सकता।

---

[94] हिंदी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, डॉ मदालसा व्यास , पृ 48

[95] वही, पृ 48

।

इनके कुछ राजनैतिक व्यंग्य हैं जैसे -

'देशवासियों के नाम सन्देश' में मोरारजी देसाई की सरकार की पंचवर्षीय योजना पर व्यंग्य किया है। जहाँ एक निश्चित समय में सरकार को देशहित में जितनी योजनाएँ , जितने काम, जितने प्रोजेक्ट शुरू करवाना चाहिए वह अधूरे रह जाते हैं। जितने नीति-नियम लागू करने चाहिए वह उस पंचवर्षीय योजना के तहत पूरा नहीं हो पाता। बस टाइम खिंचता चला जाता है और कहते रहते हैं 'वर्क इन प्रोग्रेस, कार्य प्रगति पर है।' इसका एक उदाहरण देखिए:- "देश के सामने बहुत समस्याएँ हैं। पिछली सरकार ने समस्याएँ-ही-समस्याएँ छोड़ी हैं। आखिर हम क्या हैं ? हम भी तो पिछली सरकार की छोड़ी हुई समस्या हैं। तो देश की सबसे बड़ी समस्या गरीबी और बेकारी है। हम दस वर्षों में गरीबी और बेकारी ख़त्म कर देना चाहते हैं। मगर आप कहेंगे कि यह बहुत जल्दी है। बीस साल में ख़त्म होना चाहिए। खैर , हम समझौता कर लेते हैं- पन्द्रह सालों में गरीबी और बेकारी मिटाएँगे। आप भी खुश, हम भी खुश। पर मैं आपसे साफ कहे देता हूँ कि आप कितना भी जोर डालें, पन्द्रह साल से एक दिन भी ऊपर हम गरीबी और बेकारी नहीं चलने देंगे। आपको भला लगे, चाहे बुरा।"[96]

इसके अतिरिक्त 'विकलांग राजनीति' निबंध में राजनेताओं द्वारा चुनाव जीतने के लिए किसी भी हदतक गिरने और कुछ भी टुच्ची हरकत कर-गुज़रने तक की भौंडी हरकत दिखाई है। चुनाव जीतने के लिए नेतागण किस तरह से दलितों, आदिवासियों, विकलांगों आदि का इस्तेमाल किया जाता है यह हमें बताने की जरूरत नहीं। एक जगह उसी दलित के ऊपर थूक देंगे तो वहीं चुनाव जीतने के लिए उसी के घर में खाना खाने आ जाएँगे। कोई चुनाव जीतने के लिए नाले में उतर जाएगा तो कोई खेतों में जाकर बोझा उठायी महिला के साथ तस्वीर क्लिक कराएगा। उन्हें लगता है पॉवर्टी से वोट आसानी से मिल जाता है। इन्हें समझने के लिए वरुण ग्रोवर, राजू श्रीवास्तव के सटायर देखने चाहिए इसके अलावा अखबारों की कई सुर्ख़ियों को भी देखा जा सकता है। जहाँ हमेशा चुनावी मौसम में ऐसे दृश्य सामने आते रहते हैं।

---

[96] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई पृ 6

।

'एक अपील का जादू' में दिखाया है कि देश की सभी समस्याएँ , सभी योजनाएँ , सारे काम, कायदे-कानून बस नारों और अपीलों तक ही सीमित है। उनका वास्तविक जीवन से दूर-दूर का भी नाता नहीं। बढ़ती महँगाई केवल भाषणों में घटती हुई दिखती है, ज़मीनी हालत कुछ और ही बता रही है। इसी अपील पर चुटकी लेते हुए परसाई कहते हैं: -" प्रधानमंत्री ने गुस्से से कहा , "बको मत। तुम कीमतें घटवाने आए हो न ! मैं व्यापारियों से अपील कर दूँगा ।"

एक ने कहा, "साहब, कुछ प्रशासकीय कदम नहीं उठाएँगे ?"

दूसरे ने कहा, "साहब, कुछ अर्थशास्त्र के भी तो नियम होते हैं।" प्रधानमंत्री ने कहा, "मेरा विश्वास न अर्थशास्त्र में है, न प्रशासकीय कार्यवाही में। यह गांधी का देश है। यहाँ हृदय-परिवर्तन से काम होता है।.... रेडियो से अपील हुई....।दूसरे दिन शहर के बड़े बाजार में बड़े-बड़े बैनर लगे थे व्यापारी नैतिकता का पालन करेंगे। मानवीयता हमारा सिद्धान्त है। कीमतें एकदम घटा दी गई हैं। जगह-जगह व्यापारी नारे लगा रहे थे-नैतिकता ! मानवीयता ! वे इतने जोर से और आक्रामक ढंग से नारे लगा रहे थे कि लगता थ , चिल्ला रहे हैं-हरामजादे ! सूअर के बच्चे !

गल्ले की दुकान पर तख्ती लगी थी- गेहूँ सौ रुपए क्विंटल ! ग्राहक ने आँखें मलीं। फिर पढ़ा। वह आँखें मलता जाता और पढ़ता जाता। उसकी आँखें सूज गई, तब उसे भरोसा हुआ कि यही लिखा है। उसने दुकानदार से कहा, "क्या गेहूँ सौ रुपया क्विंटल कर दिया? परसों तक तो दो सौ रुपए था।"

सेठ ने कहा, "हाँ, अब सौ रुपए के भाव से देंगे।"

ग्राहक ने कहा, "ऐसा गजब मत कीजिए। आपके बच्चे भूखे मर जाएँगे।"

सेठ ने कहा, "चाहे जो हो जाए , मैं अपना और परिवार का बलिदान कर दूँगा, पर कीमत नहीं बढ़ाऊँगा। नैतिकता और मानवीयता का तकाजा है।"

ग्राहक गिड़गिड़ाने लगा।" सेठ ने कहा, "मैं, किसी भी तरह सौ से ऊपर नहीं बढ़ाऊँगा। लेना हो तो लो। वरना भूखे मरो।"[97]

इतना भारी भरकम और तीख़ा व्यंग्य और कहाँ मिलेगा। यही परसाई की वैचारिकी है जहाँ यथार्थ को इतनी कलात्मकता के साथ पेश किया जाता है जिससे उसका मर्म पाठक तक सीधे पहुँचता है।

---

[97] वही, पृ 57

।

परसाई का लेखन सीमित नहीं है , वहाँ पूरा भारतीय समाज मौजूद है। समाज का कोई भी कोना परसाई की सजग दृष्टि से छूटा नहीं है। वे समग्र जीवनदर्शन संपन्न व्यक्ति हैं। वे जानते हैं, जीवन को सुधारने के लिए व्यक्ति को नहीं, पूरी समाज व्यवस्था को ही बदलना होगा। वे यथार्थवादी मान्यता के लेखक हैं। उन्होंने धर्म, राजनीति, शिक्षा, अर्थ और संस्कृति, सभी क्षेत्रों की विद्रूपताओं के विरुद्ध कलम चलायी है; ताकि लोग समझें और लड़ें- सामाजिक न्याय के लिए। उन्होंने ज़्यादातर राजनीति के सम्बन्ध में ही अपने विचार व्यक्त किए हैं। परसाई जी राजनीति को ही मनुष्य के जीवन की नियन्ता मानते हैं। परसाईजी के इस विराट लेखन-संसार में विधाओं की विविधता के साथ-ही-साथ विचारों की विविधता भी है। अंत में परसाई के व्यंग्यों में व्याप्त तीक्ष्णता और प्रहारात्मक गुणों के संदर्भ में डॉ. 'भगवान सिंह' का कथन सत्य है कि:- ''परसाई तंत्रभंजक कलाकार हैं। शायद प्रतिबद्ध्ता, लेखकीय साहस और दृष्टि के खुलेपन के ख्याल से स्वातंत्रोयत्तर भारत के सबसे सशक्त व्यंग्यकार। उनकी रचनाओं में एक खुला प्रहार है। यथास्थिति पर, व्यवस्था पर, प्राचीन रूढ़ियों पर और प्रायः सभी रचनाओं में बदलते मूल्यों और क्रांतिकारी शक्तियों और संभावनाओं के प्रति गहरा सम्मान भाव है, उपेक्षित और शोषित वर्गों के प्रति सहानुभूति और ढोंग का उद्घाटन है।"[98]

(घ) 'विकलांग श्रद्धा का दौर' - विषयवस्तु

हरिशंकर परसाई के प्रसिद्ध निबंध संग्रह 'विकलांग श्रद्धा का दौर' का विषयवस्तु राजनीतिक गतिविधियों से संलग्न है। जिससे पैदा होती विसंगतिबोध दिखाई देता है। देश की दुर्दशा अनिश्चित आपातकाल लगाये जाने के कारण हो चुकी थी। उसी का परिणाम था कि देश का पूरा वातावरण ही हिला हुआ था। उससे न राजनीति बच पाई , न समाज , न विधानपालिका और न ही न्यायपालिका। जब न्यायपालिका भी भंग हो जाये, उस पर से भी लोगों का भरोसा उठ जाए तो देश किस गर्त में आ डूबा होगा इसका अंदाज़ा लगाना सहज ही है।

[98] https://www.apnimaati.com/2013/04/blog-post

।

इस निबंध का पूरा माहौल 1975 से लेकर 1979 तक की अवधि का है। जिसमें मुख्यतः आपातकाल का लगना , उस बीच जनता और विपक्षियों द्वारा उसका विरोध किया जाना, जिसके कारण कई राजनैतिक-ग़ैर राजनैतिक लोगों को , आम जनता को , समाज के अन्य बुद्धिजीवियों को बिना किसी नोटिस के, बिना किसी वॉरंट के, बिना किसी कारण से जेल में ठूँस दिया था। सरकार का विरोध न हो सके इसके लिए प्रेस की आज़ादी पर रोक लगा दी थी। तमाम अमानुषिक यातनाएँ उस समय देश ने झेली थी। इसका परिणाम यह हुआ कि भरसक रोष और विरोध प्रदर्शन के बाद, विपक्षियों द्वारा आंदोलित होने के पश्चात तत्कालीन इंदिरा सरकार गिरी और पाँच ग़ैर-कम्युनिस्ट दलों द्वारा मिलकर बनी गठबंधन सरकार जिसको देश चलाने का मौका दिया गया। इसका नाम 'जनता पार्टी' रखा गया। इसका नेतृत्व 'मोरारजी देसाई' कर रहे थे। इस सरकार और आपातकाल से मिली आज़ादी को 'दूसरी आज़ादी' कहा गया। साथ ही पिछली सरकार की जाँच करने के लिए अलग से एक जाँच कमीशन भी बनाया गया था।

जैसाकि शीर्षक से ही पता चल रहा है कि तत्कालीन वातावरण एक झूठी और धोखेबाज़ी प्रवृत्ति का हो चुका था। जगह-जगह फर्जीवाड़ा और दिखावे व स्वार्थ ने अपने पाँव पसार लिए थे। व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के प्रति श्रद्धाभाव कृत्रिमता लिए हुए था। यह ऐसा भाव था, ऐसी श्रद्धा थी जिसपर आँख मूँदे विश्वास करना अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारने के समान था। चूँकि देश में हर जगह राजनैतिक-सामाजिक विकलांगता छा गयी थी इसके कारण पूरा एक दौर ही विकलांग हो चुका था। एक जगह लेखक कहते हैं:- "आत्म-पवित्रता के दंभ के इस राजनीतिक दौर में देश के सामयिक जीवन में सबकुछ टूट-सा गया। भ्रष्ट राजनीतिक संस्कृति ने अपना असर सब कहीं डाला। किसी का किसी पर विश्वास नहीं रह गया था-न व्यक्ति पर न संस्था पर। कार्यपालिका , विधायिका और न्यायपालिका का नंगापन प्रकट हो चुका।"[99]और इसी नंगेपन का वर्णन परसाई ने इस निबंध में किया है।

---

99 विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई पृ 6

।

'विकलांग श्रद्धा का दौर' वाक्य को यदि ध्यान से देखें तो कुछ शब्द हैं जिनके कुछ विशेष अर्थ निकलते हैं। या यूँ कहे कि वह अपने रूढ़ अर्थ के लिए प्रसिद्ध हैं। जैसे 'श्रद्धा' का अर्थ किसी सम्मानीय या पूजनीय के प्रति व्यक्त की जाने वाली आस्था व विश्वास से है। जैसे ईश्वर के प्रति या अपने गुरुजनों के प्रति हमारे मन में अगाध श्रद्धा होती है। इसका एक अन्य अर्थ 'व्यक्ति की इच्छा या मनोकामना' से भी जुड़ा है। जैसे अपनी इच्छानुसार या अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए लोग भगवान को चढ़ावा चढ़ाते हैं। कोई धन से अपनी कामना पूरी करना चाहता है तो कोई फल-फूल से। फिर चाहे वह आरती की थाल हो या बड़ा-भव्य मंदिर या कोई धार्मिक स्थल। यह तो हुई नैसर्गिक आस्था जिसमें कोई खोट, कोई स्वार्थ नहीं है। परन्तु लेखक हमारा ध्यान कहीं ओर ही खींचना चाहता है।

परसाई का अर्थ इस नैसर्गिक आस्था को तोड़ता है जिससे देश की दयनीय हालत झाँक रही है। यह ऐसी आस्था है जो अंगहीन हो चुकी है, जिसका मानव शरीर से कोई लगाव नहीं है। यह ऐसी आस्था है जिसमें दीमक लग चुकी है जो इंसानों की भावनाओं, उनकी आस्थाओं, उनकी संवेदनाओं को खोखला कर रहा है। और यह केवल एक समय के लिए नहीं हुआ बल्कि एक दौर ही इसकी चपेट में आ गया है। इसलिए लेखक ने बड़ी सावधानी और छानबीन करके 'दौर' शब्द का प्रयोग किया है।

इस विकलांगता में दोमुँहापन वाली प्रवृत्ति घुस चुकी थी जिससे असल भाव का पता लगाना मुश्किल हो गया था। काम के लिए या मजबूरी में 'गधे को भी बाप बनाना पड़ता है' जैसी इस समय समाज में खूब ज़ोर-शोर पर थी। परन्तु गधे को भी क्या पता था कि मनुष्य जाति इतनी दुश्चरित्रवान है कि अपने स्वार्थ के लिए मुझे ही निशाना बनाएगी। एक दूसरे पर कीचड़ उछालने से लेकर झूठ , फरेब, नैतिक मूल्यों का ह्रास बाकी सबकुछ हुआ। जो नहीं हुआ तो बस आदर्श की स्थिति, सदाचारी वृत्ति, लोगों का एक दूसरे पर अगाध विश्वास और बाकी बातें। इसलिए लेखक ने कहा है: -"इस दौर में चरित्रहनन भी बहुत हुआ। वास्तव में यह दौर राजनीति में मूल्यों की गिरावट का था। इतना झूठ, फरेब, 'छल पहले कभी नहीं था। दगाबाजी संस्कृति हो गई थी। दोमुँहापन नीति। बहुत बड़े-बड़े व्यक्तित्व बौने हो गए। श्रद्धा सब कहीं से टूट गई।"[100]

---

100 वही, पृ 6

।

इस विकलांगता का असर समाज के उन बुद्धिजीवियों पर भी हुआ जिनका काम कलम चलाकर समाज को चेतनावान बनाना है और सही-गलत में भेद सिखाना है। जिस देश का कलमगीर भी झूठी और दिखावे की जिंदगी जीने के लिए लालायित होने लग जाए उस देश का पाठक किस दिशा में आगे बढ़ने लगेगा यह चिंता का विषय बन जाता है। इससे लेखक भी नहीं बच सके। उनके लिए भी लोगों ने विकलांग श्रद्धा ही व्यक्त की। लेखक निबंध में कहते हैं:- " वैसे चरण छूना अश्लील कृत्य की तरह अकेले में ही किया जाता है। पर वह सज्जन सार्वजनिक रूप से कर बैठे , तो मैंने आसपास खड़े लोगों की तरफ गर्व से देखा- तिलचट्टो, देखो मैं श्रद्धेय हो गया। तुम घिसते रहो कलम... पर तभी उस श्रद्धालु ने मेरा पानी उतार दिया। उसने कहा, "अपना तो नियम है कि गौ, ब्राह्मण, कन्या के चरण जरूर छूते हैं।" यानी उसने मुझे बड़ा लेखक नहीं माना था। बाह्मन माना था।"[101]

सिर्फ इतना ही नहीं। उस देश के शोधकर्ताओं ने क्या ही खोज की होगी जो जी-हुजूरी में लग गया हो। परसाई कहते हैं:- "डॉक्टरेट अध्ययन और ज्ञान से नहीं, आचार्य कृपा से मिलती है। आचार्यों की कृपा से इतने 'डॉक्टर' हो गए हैं कि बच्चे खेल-खेल में पत्थर फेंकते हैं तो किसी डॉक्टर को लगता है। 'एक बार चौराहे पर यहाँ पथराव हो गया। पाँच घायल अस्पताल में भर्ती हुए वे पाँचों हिन्दी के 'डॉक्टर' थे। नर्स अपने अस्पताल के डॉक्टर को पुकारती : 'डॉक्टर साहब', तो बोल पड़ते थे ये हिन्दी डॉक्टर।'[102]

वर्तमान में शोधकर्ताओं को न सिर्फ़ जी-हुजूरी करनी पड़ती है उसके अलावा नम्बर पाने के लिए और एडमिशन लेने तक के लिए टीचर्स के आगे दुम हिलानी पड़ती है , उनकी विचारधारा अपनानी पड़ती है , झंडा उठाना पड़ता है। एक काम और भी करना पड़ता है। जैसे प्राचीन समय में या वर्तमान में भी आप देख पाएँगे कि ऋषि-मुनियों के पास, संत-महात्माओं के पास उनका एक कमंडल होता है, एक भिक्षापात्र होता है। जिसमें वह अपनी भिक्षा को ग्रहण करते हैं। अथवा जरूरत के समय उसका उपयोग करते हैं। ऐसे ही इस नवीन शिक्षा पद्धति में अध्यापकों का एक हिस्सा और

---

101 वही, पृ 31

102 वही, पृ31

।

बन गया है। उनका 'झोला'। झोला होता तो पहले भी था जिसमें कई ज्ञानभंडार की सामग्री होती होगी और जिसका भार सहना उनके खुद के कंधों की ज़िम्मेदारी थी। लेकिन आज ट्रेंड दूसरा ही है। अब इसके लिए अलग से छात्र तैयार किए जाते हैं। जैसे सेना में देशसेवा के लिए सैनिक तैयार किए जाते हैं। ठीक ऐसे ही अब शिक्षा में भी पाठक नहीं 'चेले' तैयार किए जाते हैं। जिनका काम अपने गुरुओं का झोला उठाना, सामान उठाना, उनके झूठे बर्तन तक धोना है। कोई उनके केबिन में बर्तन धो रहा है तो कोई केबिन की चौखट के बाहर लगा है कप-गिलास चमकाने। लेकिन लगे होते हैं पूरी शिद्दत से। कई चेले तो इतने गुणी और आस्थावान होते हैं कि उनके घर का काम भी शुरू कर देते हैं। बाजार से सब्जी लाना , उनके बच्चों को स्कूल से लाना ले जाना, घर के अन्य काम करना, उनके कुत्ते को घुमाना-फिराना, टट्टी कराना तक। ऐसे छात्रों का भविष्य बड़ा उज्ज्वल होता है। एक प्रकाश उनके माथे पर चमक रहा होता है। उन्हें इतनी भी फिक्र नहीं होती कि उनका भविष्य किस ओर करवट बदलेगा। क्योंकि वह अपने भविष्य की जिम्मेदारी निभा चुके होते हैं। उनके माथे से शिकन जा चुकी होती है। केवल परिणाम का इंतज़ार रहता है। अब केवल गुरु को अपनी जिम्मेदारी निभानी है।

इस विकलांग श्रद्धा के लिए व्यक्तियों ने दिखावे की उसी संस्कृति को अपनाया जिसकी चर्चा ऊपर की गई है। जब लोग आपको सम्मान न देने लगे, आपके प्रति उनके मन से आस्था खत्म होने लगी, आपकी पद-प्रतिष्ठा व आपकी कामयाबी पर कोई ताली न पीटे तब आप ऐसी तरकीब अपनाकर आस्थावान, श्रद्धावान और सम्मानीय बन सकते हैं। उसके लिए आपको अपनी शिक्षा और टेलेंट की ढपली पीटनी होगी , आपने जितने मैडल जीते हैं अगर तो , उन्हें घर के बाहर, ऑफिस के गेट पर नजरबट्टू की तरह लटकाना होगा। या गले में रेशमी टाई की तरह पहनकर अपनी शोभा बढ़ानी होगी। क्योंकि 'जो दिखता है वो बिकता है।' अगर आप दिखायेंगे नहीं तो कोई कैसे मानेगा आप कितने सम्मानित हैं। पर इस सबसे एक नुकसान आपको हो सकता है अगर आपकी आत्मा थोड़ी भी बची होगी। आपमें थोड़ी भी मर्यादा शेष होगी तो। आपकी इस फूहड़ता पर लोग हँसेंगे। ख़ैर जो इतना कुछ कर लेने का दम भरता हो उसकी आत्मा क्या ही बची होगी। इसलिए परसाई ने भी कहा है- "मेरे ही शहर के कॉलेज के एक अध्यापक थे। उन्होंने अपने नेमप्लेट पर खुद ही 'आचार्य' लिखवा लिया था। मैं तभी समझ गया था कि इस फुहड़पन में महानता के लक्षण हैं। "[103] अर्थात परसाई

[103] वही, पृ 31

।

इस बात की ओर भी संकेत कर रहे हैं आजकल नाम का आदर होता है काम नहीं। यही विकलांग श्रद्धा है, यही झूठी प्रतिष्ठा है।

आप कितने ही गुणी, महान, पूजनीय हो यदि मार्केट में आपका नाम नहीं है तो आपका माल नहीं बिक सकता। आपको ग्राहकों के सामने कुत्ते की तरह लार टपकाये खड़ा रहना होगा कि कोई रोटी या गोश्त का टुकड़ा डाल दे। घटिया से घटिया माल, ब्रांडिड माल की कॉपी तक नाम से बिक जाती है फिर इंसानों का तो कोई ब्रांड ही नहीं। उन्हें कितनी मशक्कत करनी होगी। इसलिए आपको भी नेमप्लेट लगवानी पड़ेगी। इस पर परसाई कहते हैं:- "मैं भी अगर नेमप्लेट में नाम के आगे 'पंडित' लिखवा लेता तो कभी का 'पण्डितजी' कहलाने लगता।"[104]

परसाई ने तत्कालीन राजनीति का जो वर्णन किया है उसमें तख़्त की शोभा बढ़ाते हुए दुरात्माओं यानी नेताओं पर भी व्यंग्य कसा है। झूठे-से-झूठा, भ्रष्टाचारी, जनता के वोट पाकर पाँच साल के लिए अज्ञातवास पर चले जाना वाला नेता भी सम्मान का अधिकारी हो जाता है। क्योंकि उसके पास विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का आधार जो है। उसके पास जनता का विश्वास है। इसलिए परसाई फिर से कहते हैं:- " तख्त ऐसा पवित्र आसन है कि उस पर लेटे दुरात्मा के भी चरण छूने की प्रेरणा होती है।"[105]

भारतदेश बीमार, असहाय, दयनीय के प्रति इतना चिंतामग्न और सहानुभूति व्यक्त करने वाला देश है कि पूछो मत। लेकिन यह सहानुभूति कब जगती है, जब उससे कोई काम निकलवाना हो। जब तक वो बीमार पड़ा रहा, उसे किसी की जरूरत रही तो कोई कुत्ता भी मूतने नहीं आया। अब जब वो मरने की हालत पर आ गया है, अस्पताल में भर्ती हो चुका है तब सभी दौड़े आते हैं अपनी-अपनी चिंता की गठरी थामे। सबके अंदर करुणा की ज्योति खुद ही जल जाती है और उस व्यक्ति से पता नहीं कौन-सी सदी का रिश्ता स्वतः ही जुड़ जाता हैं। तब आप ही कहेंगे ' एक बार कम से कम बता तो दिया होता तुम्हारे लिए अपनी जान तक छिड़क देते।' इस बीमारी के मौसम ने भी देश में कई लोगों के प्रति श्रद्धा

104 वही, पृ 31

105 वही, पृ 31

।

व्यक्त की है। लेखक भी इससे अछूता नहीं रहा। वह कहते हैं:- "जानता हूँ , देश में जो मौसम चल रहा है, उसमें श्रद्धा की टाँग टूट चुकी है तभी मुझे भी यह विकलांग श्रद्धा दी जा रही है। लोग सोचते होंगे- इसकी टाँग टूट गई है। यह असमर्थ हो गया। दयनीय है। आओ, इसे हम श्रद्धा दे दें। हाँ, बीमारी में से श्रद्धा कभी-कभी निकलती है।"[106]

परसाई इस युग में श्रध्देय बनने के ख़तरे देख चुके थे और इसे सचेत रहने की सलाह दे रहे हैं। क्योंकि ऐसी श्रद्धा देश हित में नहीं। उससे देश का सम्मान बनने की जगह बिगड़ जरूर जाएगा। इसकी जगह क्रांतिकारी बनना चाहिए और देशहित में कुछ कर गुजरने का साहस कायम रखना चाहिए। इसलिए परसाई ने कहा कि:- "और फिर श्रद्धा का यह कोई दौर है देश में ? जैसा वातावरण है , उसमें किसी को भी श्रद्धा रखने में संकोच होगा। श्रद्धा पुराने अखबार की तरह रद्दी में बिक रही है। विश्वास की फसल को तुषार मार गया। इतिहास में शायद कभी किसी जाति को इस तरह श्रद्धा और विश्वास से हीन नहीं किया गया होगा जिस नेतृत्व पर श्रद्धा थी, उसे नंगा किया जा रहा है। जो नया नेतृत्व आया है, वह उतावली में अपने कपड़े खुद उतार रहा है। कुछ नेता तो अंडरवियर में ही हैं। कानून से विश्वास गया। अदालत से विश्वास छीन लिया गया। बुद्धिजीवियों की नस्ल पर ही शंका की जा रही है। डॉक्टरों को बीमारी पैदा करनेवाला सिद्ध किया जा रहा है। कहीं कोई श्रद्धा नहीं, विश्वास नहीं। अपने श्रद्धालुओं से कहना चाहता हूँ:- "यह चरण छूने का मौसम नहीं , लात मारने का मौसम है। मारो एक लात और क्रान्तिकारी बन जाओ ।"[107]

अतः कहा जा सकता है कि देश की इस विकलांग श्रद्धा पर परसाई ने बड़ी मार्मिकता से जो आघात उस समय किया था उसका असर आज भी महसूस किया जा सकता है। क्योंकि देश के हालातों में कोई विशेष सुधार तो आया नहीं है। जैसी परिस्थितियाँ उस समय थी आज भी बहुत-सी जस-की-तस बनी है। आज भी लोग एक-दूसरे को धोखा दे रहे हैं, झूठा सम्मान दे रहे हैं, बेमतलब की चिंता व्यक्त कर रहे हैं। तब परसाई आज भी प्रासंगिक बने हैं। उनका विकलांग श्रद्धा का लेखन आज भी समाज की विकलांगता पर दवा लगाने का काम कर सकता है। चूँकि उन्होंने स्वयं कहा है कि

---

[106] वही, पृ 32

[107] वही, पृ 33

।

यह मौसम चरण छूने का नहीं है अर्थात दिखावे के नहीं है और न ही दिखावा सहने का। उल्टा इसका विरोध करो। नहीं तो घेरे जाओगे। तो आओ मिलकर और ऐसी विकलांगता को अपने समाज से बाहर निकालने के लिए खड़े हो।

।

तृतीय अध्याय

'विकलांग श्रद्धा का दौर' में चित्रित व्यंग्यात्मक संवेदना और भाषिक विश्लेषण

प्रत्येक युग, प्रत्येक समय, प्रत्येक परिस्थिति अपने काल के इंसानों को प्रभावित करती है। उसमें आमजन से लेकर विशिष्ट जन तक शामिल रहते हैं। समाज को प्रगति के स्थान पर पहुँचाने से लेकर का उस प्रगति का लाभ लेने वाले तक इन प्रभावों से अछूते नहीं रहते। इनमें विशेषकर समाज के बुद्धिजीवी प्रभावित होते हैं और यह प्रभाव उनके रचनात्मक कौशल के माध्यम से प्रस्फुटित होता है। ऐसे ही बुद्धिजीवियों में साहित्यकारों का नाम भी गिना जाता है। इन साहित्यकारों के लेखन ने हमें सदैव समय के यथार्थ का दर्शन कराया है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी विशेषता और कार्यक्षेत्र के लिए जाना जाता है। इसी क्रम में समाज के बिगड़े रूप की अभिव्यक्ति मजबूती के साथ व्यंग्यकार दिखाता है। परसाई का समस्त लेखन ही आजादी के बाद के भारत की जीवंत गाथा है। वह भारत का पक्का और ठोस यथार्थ दस्तावेज है। उनके इस दस्तावेज की शक्ल उनकी अनोखी भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होती है।

'विकलांग श्रद्धा का दौर' का संवेदना पक्ष और भाषाई पक्ष परसाई की उत्तम कला का पर्याय है। इस संग्रह में परसाई ने जिस सावधानी और अध्ययन के पश्चात विविध संवेदनाओं को अपनी अनूठी भाषा के द्वारा हिंदी पाठकों के समक्ष रखा है वह उनकी साहित्य और समाज के प्रति गम्भीरता का उदाहरण पेश करता है। इस संग्रह में उन्होंने संवेदनाओं जितने आयाम पेश किए हैं, भाषा के स्तर पर भी उनका विस्तार हुआ है। कहीं व्यंग्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया है तो कहीं पूरा का पूरा वाक्य ही वक्रोक्ति लहज़े में लिखा हुआ है। इस दृष्टि से उक्त संग्रह परसाई की कला का प्रमाण है।

।

उक्त शोध ग्रँथ 'विकलांग श्रद्धा का दौर' का यह अध्याय शोध विषय का मूल अध्याय है। इसमें शोध विषय को सबसे ज्यादा विस्तार व तर्क के साथ विवेचित किया है। संग्रह में प्रस्तुत सभी मुख्य प्रसंगों को इस अध्याय में उकेरा गया है। इस अध्याय को शोध विषय की आधारशिला भी कहा जा सकता है। क्योंकि यह हमारे शोध का अंतिम और लक्षित अध्याय भी है। इस अध्याय में प्रस्तुत निबंधों को संवेदना और भाषा दो भागों में विश्लेषित किया गया है। प्रथम पक्ष में निबंधों में छुपे मर्म को दिखाने का सफलता प्राप्त हुई है। जिसमें समाज, राजनीति, साहित्य, संस्कृति, शिक्षा, न्यायपालिका, प्रशासन, धर्म आदि के भीतर छुपे अच्छे-बुरे दोनों भावों की अभिव्यक्ति हुई है। इन भावों के माध्यम से समाज की विसंगति ही ज्यादातर उभर कर सामने आई है। यही व्यंग्य की ताकत होती है और शोध विषय का मूल भी इसी पर टिका हुआ है। साथ ही संग्रह में परसाई ने जिस उत्कृष्ट भाषा व उसके विभिन्न रूपों का प्रयोग किया है वह भी इस अध्याय में आया है। भाषा के विभिन्न रूपों में मुहावरें, लोकोक्तियों, सूक्तियों व व्यंग्यात्मक शब्दों आदि का भी यथास्थान प्रयोग हुआ है। भाषा के इतने रूपों को देखकर कहा जा सकता है कि परसाई का यह प्रयोग अपनी सम्वेदनाओं की अभिव्यक्ति में सिद्ध हुआ है।

अतः कहा जा सकता है कि शोध विवेच्य में संवेदना और भाषा पक्ष दोनों खुलकर सामने आया है। उसमें तर्क की पूरी शक्ति शामिल है जो किसी भी शोध के लिए अनिवार्य होती है। इस अध्याय का केंद्र भी निबंधों के संवेदना और भाषा पक्ष की अभिव्यक्ति से ही जुड़ा हुआ है। इससे शोध विषय को मौलिकता व परसाई लेखन को नवीनता प्रदान हुई है।

व्यंग्यात्मक संवेदना

साहित्य की दृष्टि से व्यंग्यात्मक संवेदना उसे कहा जाता है जिन रचनाओं अथवा जिन वाक्यों से व्यंग्य पैदा होता है। इन रचनाओं अथवा वाक्यों में समाज के ऐसे दृश्य खींचे जाते हैं जो आदर्श, नैतिकता, उचित, न्यायसंगत आदि

।

मूल्यों के विरोधी स्वर होते हैं। यह व्यंग्य विभिन्न रूपों में दिखाई देता है। जैसे- शब्द, पद, वाक्य। इस में तो कभी-कभी पूरी रचना ही व्यंग्य लक्षणों से बंधी होती है। ऐसी सम्वेदनाओं से समाज की विसंगतियों और इन्हीं विसंगतियों से व्यंग्य का जन्म होता है। इन विसंगतियों में समाज के दोहरे रूप, अनमेल ढाँचे, वर्ग-संघर्ष, ग़ैर बराबरी जैसी समस्याओं को उठाया जाता है और उसमें छुपी संवेदना को लेखन का रूप देकर यथार्थ का अंकन किया जाता है। इन संवेदनाओं को कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार आदि विभिन्न रूप में अपनी रचनाओं में चित्रित करते हैं। उसी प्रकार की रचना विवेच्य निबंध संग्रह में है। इसमें निबंधकार हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य को निम्न संवेदनाओं के रूप में चित्रित किया है।

सामाजिक व्यंग्य

जिसमें समाज को केंद्र में रखकर लेखन किया जाता है वह व्यंग्य इस श्रेणी में शामिल किए जाते हैं। सामाजिक व्यंग्य समाज के अनुचित व्यवहार, उसके अनुशासनहीन रवैये, उस में व्याप्त रूढ़ियाँ और कुप्रथाएँ, उसमें निहित भेदभाव फिर चाहे उसका स्तर कोई भी हो तथा समाज की प्रगति में बाधक तत्वों इत्यादि तक की पड़ताल कर उसके स्वरूप को पाठक वर्ग के सामने पेश करना और उस पाठक को अर्थात समाज को सोचने के लिए मजबूर कर देना ही ऐसे व्यंग्यों का उद्देश्य रहता है। इन दृष्टि से परसाई के कुछ सामाजिक निबंध हैं:-

'पवित्रता का दौर' निबंध में परसाई ने एक ऐसे समाज की रचना की है जहाँ पवित्रता के नाम पर सिर्फ-और-सिर्फ ढोंग है , केवल थोथी पवित्रता है। उसके साथ है - अच्छे और साफ बनने की नौटंकी। समाज में पवित्रता का ऐसा नँगा नाच हो रहा है कि पूरा समाज ही अपवित्रता के घेरे में घिर गया है। समाज के किसी भी हिस्से में अब पवित्रता नहीं बची है। जो रही सही है उसकी भी नष्ट होने की नौबत आ रही है। निबंध के मूल में पवित्रता और अपवित्रता की लड़ाई के घेरे में साहित्य और कलम आ फँसी है। जिसे अभिव्यक्त करना परसाई ने जरूरी समझा है। 'साहित्य भवन' और 'सिनेमा' जैसी दो संस्थाओं को आमने-सामने रखकर साहित्य में हो रही भ्रष्टाचारी वृत्ति व उसमें फैली अपवित्रता को परसाई ने इस निबंध में दिखाया है।

।

समाज में जिस पवित्रता की दिखावटी मानसिकता चहुँओर व्याप्त है उसपर अपनी राय रखते हुए परसाई कहते हैं- " पवित्रता ऐसी कायर चीज है कि सबसे डरती है और सबसे अपनी रक्षा के लिए सचेत रहती है। अपने पवित्र होने का अहसास आदमी को ऐसा मदमाता बनाता है कि वह उठे हुए साँड़ की तरह लोगों को सींग मारता है, ठेले उलटाता है, बच्चों को रौंदता है। " (पृ 44)[108] तो वहीं कलम की अपवित्रता, उसकी स्वतंत्रता पर पड़ने वाले खतरे पर परसाई कहते हैं- "सोचता हूँ, हम कहाँ के पवित्र है। हममें से अधिकांश ने अपनी लेखनी को रंडी बना दिया है, जो पैसे के लिए किसी के भी साथ सो जाती है। सत्ता इस लेखनी से बलात्कार कर लेती है और हम रिपोर्ट तक नहीं करते। …….अखबार का सम्पादन करा लो और कल मैं उससे ज्यादा पैसे लेकर ट्रेड यूनियन के अखबार का सम्पादन कर दूँ। …..अब फिर 'इन्दिरा भारत है' लिख रहा हूँ।" (पृ 46)[109]

विवेचन- परसाई ने इस प्रसंग के माध्यम से समाज में समाप्त होती पवित्रता और नैतिकता का यथार्थ चित्रण किया है। समाज में जिस चरित्र की माँग है आज उसका अंश भी ब-मुश्किल ही शेष है। इससे लेखक खुद भी नहीं बच सके। आज का लेखक बनियागिरी करते जा रहा है जो अपनी कलम को बेचने के लिए मोलभाव करने पर उतर आया है। इससे लेखन का स्तर गिरता जा रहा है। उसकी गिरती अवस्था पाठकों में हीनता बोध ला रही है। समाज की ऐसी व्यवस्था पर परसाई ने चिंता जाहिर की है।

परसाई ने आगे बताया है कि साहित्य संस्था और सिनेमा हॉल दोनों अपनी-अपनी दुकान चलाने के लिए एक-दूसरे पर कीचड़ उछाल रहे हैं। दोनों चाहते हैं कि सामने वाले का ठिया हट जाए और अपनी दुकान चल पड़े।। परन्तु समाज के लिए यह दोनों ही कितने आवश्यक है हम जानते हैं। सिनेमा और साहित्य दोनों के माध्यम से समाज प्रगति करता है। ऐसी स्थिति में किसी एक का भी अपवित्र होना समाज के लिए हानिकारक है। दोनों के भ्रष्ट आचरण पर चुटकी लेते हुए वह कहते हैं- " मैं शामवाले पत्र से हलका हो गया। पवित्रता का मेरा नशा उतर गया। मैंने सोचा, साहित्य भवन

---

108 विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 44

109 वही, पृ 46

।

के सचिव को लिखूँ- मुझे दूसरे पक्ष का पत्र भी मिल गया है।….. अब तो सिनेमा मालिक को ही माँग करनी चाहिए कि यह साहित्य की संस्था यहाँ से हटाई जाए….. इसमें बड़ा भ्रष्टाचार है" (पृ 46)[110]

विवेचन - इस तरह साहित्य के घटते गौरव को ध्यान में रखकर यह प्रसंग लिखा गया है। इस तरह का साहित्य पाठकों में उपेक्षित भाव जगा रहा है। मनोरंजन और मसालेदार साहित्य गम्भीर साहित्य के मूल्य को खत्म कर रहे हैं और समाज में ऐसे पाठक तैयार कर रहे हैं जो साहित्य की गम्भीरता और उसकी जिम्मेदारी के लिए घातक साबित हो रहे हैं। उन्हें अब मनोहर कहानियाँ, मस्तराम, अन्तर्वासना जैसी पत्रिकाओं और सोशल साइट्स में आनंद आने लगा है। अब उन्हें प्रेमचंद के उपन्यास, प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, निराला और महादेवी की कविताएँ नहीं पढ़नी। उनके अनुसार फाड़ कर फेंक देना चाहिए या जला देना चाहिए ऐसा साहित्य। अतः समाज में पाठकों के अंदर इस तरह की बढ़ती कुवृत्ति और अगाम्भीर्य के प्रति परसाई की चिंता वाजिब है।

'एक मध्यवर्गीय कुत्ता' में परसाई ने मध्यवर्ग की विशेषता को व्यंग्यात्मक अंदाज़ में दिखाया है। यह विशेषता उसकी अच्छाई को नहीं बल्कि उसकी बुराई को दिखाती है। मध्यवर्गीय की खासियत क्या है- झूठा, दब्बू, अवसरवादी, चुप रहना आदि। यह डरपोक के साथ चाटुकार भी है। जो पूरे जीवन अपने वर्ग को तय करने और उसमें फिट होने में निकाल देता है। उसे किसका साथ देना है, कब देना है, किसके साथ खड़े रहना है यह सब तय करते-करते उसकी सारी जिंदगी निकल जाती है और वो कहीं का नहीं रहता। बीच में पिसता रहता है।

इसके अतिरिक्त मध्यवर्ग की धोखेबाज़ी और उसके पीछे के सच को दिखाने के लिए परसाई ने इसकी तुलना कुत्ते से की है। उन्हें लगता है, जैसे कुत्ता कभी वफादार तो कभी धोखा दे देता है ठीक ऐसे ही मध्यवर्ग का कोई भरोसा नहीं। वो सबसे बड़ा अवसरवादी है। उसे केवल अपने लाभ से मतलब है बाकी किसी और से नहीं। परसाई का मत है कि यह वर्ग कुत्ते से भी गया-गुज़रा है। असल कुत्ता इतना खतरनाक नहीं होता और न ही घातक जितना कि यह

---

110 विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 46

।

आदमीनुमा कुत्ता! जिसे निबंध में 'मध्यवर्ग' कहा गया है। इसके साथ ही यह वर्ग उस कुत्ते से भी ज्यादा जहरीला होता है जिसे हम जहरीला समझ कर काटने पर इंजेक्शन लगवा लेते हैं। इस पर लेखक कहते हैं- " यूँ कुछ आदमी कुत्ते से अधिक जहरीले होते हैं। एक परिचित को कुत्ते ने काट लिया था। मैंने कहा, कुछ नहीं होगा। हालचाल उस कुत्ते के देखो और इंजेक्शन उसे लगाओ।" (पृ 10)[111]

विवेचन- परसाई ने सिद्ध किया है कि यही फर्क है कुत्ते और मध्यवर्ग में। आज कुत्ते पर भरोसा किया जा सकता है परन्तु मध्यवर्ग पर नहीं। वह उससे भी ज़्यादा ज़हरीला है। उसका व्यक्तित्व इस कदर हो गया है कि आज हम कुत्ते से सावधान न रहे तो भी चल सकता है परंतु मध्यवर्ग का ऐसा दोगला व्यक्तित्व समाज के लिए हानिकारक है। इस तरह मध्यवर्ग और कुत्ते में परसाई ने अंतर किया है।

लेखक ने निबंध में उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच एक विभाजक रेखा खींचते हुए ने एक बिंब गढ़ा है जिसमें मध्यवर्ग को कुत्ते से जोड़कर उसे हीन बताया है। जहाँ उच्च वर्ग उसका अपमान करता है, लतियाता है, दुत्कारता है, गाली देता है तो कभी मारता भी है। उसे बर्दाश्त ही नहीं कि कोई भी गन्दा, मैला, छोटी सोच वाला, छोटी क्लास का उसके आसपास भी फटके। इससे उच्च वर्ग के क्लास में एक धब्बा लग जाता है। इसलिए वो ऐसे वर्ग को फटकारता है। लेखक ने लिखा है- " कुत्ता जंजीर से बँधा था। उसने देख भी लिया था कि हमें उसके मालिक खुद भीतर ला रहे हैं पर वह भौंके जा रहा था। ….. मैं समझा, यह उच्चवर्गीय कुत्ता है। मैं उच्चवर्गीय का बड़ा अदब करता हूँ। चाहे वह कुत्ता ही क्यों न हो।…. इसी अहाते में एक उच्चवर्गीय कुत्ता और इसी में मैं। वह मुझे हिकारत की नजर से देखता। " (पृ 10) [112]

विवेचन- यहाँ पर उच्च वर्ग वर्सेस निम्नवर्ग का द्वंद्व है। सीधे शब्दों में कार्ल मार्क्स का वर्ग संघर्ष। उच्च वर्ग को अपने से नीच वर्ग से बू आती है, वह उससे बचता है। उसे अपने कुत्ते से भी गया-गुज़रा समझता है। उसके आने पर उसपर कुत्ता

[111] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 10

[112] वही, पृ 10

।

छोड़ देता है। वह अपने कुत्ते को पेडिग्री खिलायेगा, बढ़िया माँस देगा, बढ़िया दूध पिलायेगा। लेकिन किसी निम्न वर्ग के इंसान को देखते ही उसकी त्योरियाँ चढ़ जाएगी। समाज के इसी भेद को समाप्त करना चाहते हैं परसाई। उनकी निगाह ऐसे समाज के खिलाफ है जहाँ असमानता का इस कदर अनमेल रूप है।

मध्यवर्ग की झूठी और दिखावटी वृति को दिखाने के लिए परसाई ने एक मध्यवर्गीय कुत्ते और दो सड़किया कुत्ते के माध्यम से दृश्य खींचा है। दृश्य में यह सड़किया कुत्ते सर्वहारा हैं अर्थात सभी जगह से हारे हुए। मतलब कि निम्न या शोषित वर्ग। और उच्चवर्गीय कुत्ता जब कभी उन पर भौंकना और गुर्राना शुरू कर देता है।... यह उच्चवर्गीय कुत्ता सुविधाभोगी भी है, पट्टे और जंजीर से सजा है। और यह सड़किया कुत्ते भुखमरे और आवारा। तो इनका क्या मुकाबला। फिर यह इन पर क्यों भौंकता है ? इस तरह से परसाई ने वर्ग संघर्ष की एक सरल और सीधी रेखा खींच दी है। इसी प्रश्न का जवाब भी समाजवाद माँगता है। इसी भेद के कारण साम्यवाद खड़ा हुआ था।

लेकिन यह उच्चवर्गीय कुत्ता कुछ अलग ही है। लेखक को कुछ शक हुआ। वह कहते हैं, 'मुझे इसके वर्ग पर शक होने लगा है। यह उच्चवर्गीय कुत्ता नहीं है। यह कुत्ता उन सर्वहारा कुत्तों पर भौंकता भी है और उनको आवाज़ में आवाज़ भी मिलाता है। उच्चवर्गीय झूठा रोब भी और संकट के आभास पर सर्वहारा के साथ भी यह चरित्र है इस कुत्ते का। यह मध्यवर्गीय चरित्र है। यह मध्यवर्गीय कुत्ता है।" (पृ 11)[113]

विवेचन - मध्यवर्ग की इसी झूठी और अवसरवादी प्रवृत्ति पर परसाई ने बड़ी समझ-बूझ के साथ व्यंग्य किया है। और मध्यवर्ग के असली चरित्र को समाज के सामने लाने की कोशिश की है। इस अर्थ में मध्यवर्ग संदेह की दृष्टि में आ जाता है जोकि समाज के लिए बड़ा ख़तरा है।

---

[113] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 11

।

'अश्लील पुस्तकें' निबंध में परसाई ने समाज की उस गंदगी और उसके ठेकेदारों को उधेड़ता है जो सफ़ाई का जिम्मा लिए हुए हैं लेकिन करते एक ढ़ेले-भर का काम नहीं। जो खुद को बड़ा सफाईकर्मी समझते हैं। वह मानते हैं कि समाज से गंदगी हटनी चाहिए ,समाज को पवित्र रखना चाहिए और इसके लिए हम तैयार हैं। चाहे कुछ भी हो जाये हम समाज को गंदा नहीं रहने देंगे। लेकिन अपने भारत में बहुत कुछ उलटा चलता है। ऐसा करने से हम भारतीयों को कौन-सा सुख मिलता है यह तो पता नहीं लेकिन करते जरूर हैं। जहाँ लिखा होगा यहाँ कूड़ा डालना मना है वहाँ सबसे ज्यादा कूड़ा मिलेगा। ऊपर से डस्टबिन को भी तोड़ देते हैं या तो जला देते हैं। और नहीं तो भारत की गरीबी यहाँ तक पहुँच गई है कि डस्टबिन तक चुरा लेते हैं। इसे रेलगाड़ी टॉयलेट में जंजीर से बंधे डिब्बे से भी समझ सकते हैं। इसके अलावा जहाँ लिखा होगा जहाँ गुटखा थूकना मना होता है वहाँ ऐसी एब्सट्रैक्ट आर्ट आपको देखने को मिल जाएगी कि आप समझ नहीं पाएँगे की यह दौड़ता हुआ कुत्ता है , उड़ती हुई चिड़िया है या नाचता हुआ मोर। इसलिए समाज से गंदगी हटाने और उसके विपरीत काम दिखने पर परसाई ने व्यंग्य किया है।

इस निबंध में भी किसी शहर का वर्णन करते हुए बताया कि, 'शहर की सड़कों पर खुलेआम अश्लील साहित्य बिक रहा है। तब दस-बारह उत्साही समाज-सुधारक युवकों ने ऐसे साहित्य को छीनकर उसकी सार्वजनिक होली जलाने का फैसला किया है। परसाई कहते हैं मुखिया ने कहा- "आज तो देर हो गई। कल शाम को अखबार में सूचना देकर परसों किसी सार्वजनिक स्थान में इन्हें जलाएँगे। पुस्तकें मैं इकट्ठी अभी घर नहीं ले जा सकता। बीस-पच्चीस हैं। पिताजी और चाचाजी हैं। देख लेंगे तो आफत हो जाएगी। ये दो-तीन किताबें तुम लोग छिपाकर घर ले जाओ। कल शाम को ले आना। " .... तीसरे ने कहा , " भाभी उठाकर ले गई। बोली कि दो-तीन दिनों में पढ़कर वापस कर दूँगी।" चौथे ने कहा , "अरे, पड़ोस की चाची मेरी गैरहाजिरी में उठा ले गई! पढ़ लें तो दो-तीन दिन में जला देंगे।" अश्लील पुस्तकें कभी नहीं जलाई गईं। वे अब अधिक व्यवस्थित ढंग से पढ़ी रही हैं। " (पृ147) [114]

114 विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 147

।

विवेचन - इस कथन के माध्यम से परसाई बताना चाहते हैं कि समाज में जिन-जिन लोगों ने किसी बुरे काम को खत्म करने की ठानी है उसमें से ज्यादातर ने उसे वहीं छोड़ दिया या तो खुद ही उसमें लगे रहते हैं। जो जिस अश्लीलता से बचने का दिखावा करता है सही मायने में वह ढोंग कर रहा होता है और ऐसे साहित्य का रस ले रहा होता है। समाज को अश्लीलता से बचाने वाले स्वयं ही उसे गंदा के रहे होते हैं। अतः इस निबंध के माध्यम से परसाई ने समाज की अश्लीलता का नग्न दृश्य दिखाया है।

'लड़ाई' निबंध समाज में लोगों के अमानुषिक व्यवहार पर व्यंग्य करता है। आज समाज में लोग किस कदर जानवरों की तरह लड़ रहे हैं , तो कई बार उसकी भी हद पार करके आगे निकल जाते हैं। ऐसे व्यवहार को परसाई की दृष्टि ने ध्यान से देखा है और अपने व्यंग्यबाणों के निशाने पर लिया है। लोग बिना सोचे समझे कुछ भी बक दे रहे हैं। कोई भी किसी की इज्ज़त नहीं कर रहा। लोग ज़रा-सी बात बिगड़ने पर आवेग में आकर दूसरों की माँ-बहनों को सम्मान देने लग जाते हैं।

परसाई ने 'एक मध्यवर्गीय कुत्ता' में इंसान की जो तुलना कुत्ते से की थी उसका अन्य रूप यहाँ भी दिखाई देता है। जहाँ मानव व्यक्तित्व कुत्तों की तरह होता जा रहा है , जो बिना मतलब के दूसरे से लड़ने लग जाता है। निबंध में परसाई ने लिखा भी है- " यों चोपड़ा साहब और साहनी साहब का स्वभाव और व्यक्तित्व ऐसा था कि उन्हें अलग से कुत्ता रखने की जरूरत नहीं थी। वे ही काफी थे।" (पृ 132) [115]

विवेचन - इस वाक्य के आधार पर लेखक ने सिद्ध करने की कोशिश की है मानव व्यक्तित्व कुत्ते की तरह होता जा रहा है। तो कभी इंसान और कुत्ते में भेद करना भी मुश्किल हो जाता है। मानव व्यवहार में जो हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है वह उसके पाशविक वृत्ति को व्याख्यायित करती है। इस दृष्टि से निबंध देखा जा सकता है।

---

[115] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 132

।

इसके आगे कथा में दिखाया है कि किस तरह चोपड़ा साहब और साहनी साहब ने कुत्ता पाल रखा है जोकि देखने में बहुत भयानक और खतरनाक है और किसी दिन अचानक ही दोनों कुत्तों के बीच लड़ाई शुरू हो जाती है। बाद में दोनों कुत्तों के मालिक एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाते हैं कि , तुम्हारा कुत्ता मेरे आहते में घुसा। सिलसिला बढ़ता है और दोनों मालिक एक-दूसरे की तारीफ में कसीदे पढ़ने लगते हैं। लेखक ने लिखा है-

साहनी ने कहा- तुम अपने कुत्ते को सँभालो न। वही तो हमारे अहाते में घुस आया था। न जाने किस चोर नस्ल का कुत्ता है!

- चोर नस्ल का कुत्ता है तुम्हारा।

-चोर तुम हो जी। पी.डब्ल्यू.डी. के ठेकेदारों से पैसा खाकर बँगला बनवा लिया है।

-तुम चार सौ बीस हो। …… दोनों कुत्ते अपने-अपने मालिक की टाँगों से लिपटकर उन्हें प्रोत्साहित कर रहे थे।

-तू गोली मारेगा कुत्ते की औलाद !

-तू सूअर के। ……। वहाँ भीड़ लग गई थी। एक राहगीर ने एक आदमी से पूछा- क्यों जी, मामला क्या है? उस आदमी ने जवाब दिया- कुछ नहीं जी, कुत्तों की लड़ाई है! (पृ 133)[116]

विवेचन- प्रसंग को देखते हुए समाज का यथार्थ बोध हो जाता है। समाज में बात किसी और मुद्दे पर हो रही होती है लेकिन आवेश में आकर किसी और ही मुद्दे पर ट्रांसफर हो जाता है। ये क्रम यहीं नहीं थमता। लड़ाई करते वक्त इन लोगों की आँखों में ज्वाला की लालिमा आसानी से देखी जाने लगी। उनके अंदर का कुत्ता जग जाता है और एक-दूसरे पर भौंकना भी शुरू कर देता है। अंत में परसाई ने बड़े व्यंग्यात्मक और अन्योक्ति में कथा का अंत किया गया है। जिससे इंसान के भीतर छुपे कुत्ते का यथार्थ अंकन हुआ है

[116] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 133

।

'चौबे जी की कथा' में परसाई सामाजिक कलंक 'दहेज प्रथा' और उससे जुड़े कई पहलुओं को छुते हैं। इन पहलुओं में व्यक्ति की पद-प्रतिष्ठा , उसकी सरकारी नौकरी , सोसाइटी में प्रचलित दहेज की रेट लिस्ट आदि शामिल है। इसके अलावा आपके विवाह और दहेज जैसी कुप्रथा पर आपका काम-धंधा प्रभाव डालता है। आपने कितनी पढ़ाई की है समाज को उससे कोई लेना-देना नहीं। आपकी कमाई कितनी है यह देखते हैं लोग।

शिक्षा के जिस गिरते स्तर और उसके मूल्यहीन होने की तरफ परसाई ने इशारा किया है उसका मुख्य कारण शिक्षा की जागरूकता न होना और लोगों की मजबूरियाँ भी है। हम देखते हैं कि किसी परिवार के लिए शिक्षा का मूल्य क्या ही महत्व रखेगा जिसे दो जून की रोटी के लिए भी दर-दर भटकना पड़ रहा है। जो पानी पी-पीकर दिन गुजारने वाला वर्ग है उसे शिक्षा जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की सुध नहीं होती। इस समस्या का समाधान भी हमें निबंध को पढ़ने से मिल सकता है।

परसाई ने इस निबंध के माध्यम से दहेज जैसी कुप्रथा पर तो व्यंग्य किया ही गया है परन्तु निबंध की मूल समस्या अंत में खुलकर आयी है। आज कोई भी पदाधिकारी खासतौर पर सरकारी पद का मालिक अपने से छोटे पदाधिकारी को अपना जीवनसाथी बनाने से कतराने लगा है। उसके साथ रहने में उसे छोटापन महसूस होता है। उस अधिकारी की सालों की पढ़ाई एक झटके में पद के आगे हार जाती है और पद , मान-मर्यादा का झूठा लबादा उसके ऊपर हावी हो जाता है। लेखक ने कहलवाया है- "आपको भी यह जानकर हर्ष होगा कि बेटी शीला का भी आई.ए.एस. में चुनाव हो गया है। कल ही ऑर्डर आया है। आपको यह जानकर और भी प्रसन्नता होगी कि शीला का निर्णय है कि मैं किसी जूनियर सरकारी नौकर से शादी नहीं करूँगी। इस सम्बन्ध को तोड़ते हुए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है।" (पृ 145)[117]

विवेचन - समाज में जिस असमानता को खत्म करने के लिए सबसे प्रभावी हथियार 'शिक्षा' को माना जाता है , आज चलन यह है कि उस की बदौलत यह और तेज़ी से बढ़ती जा रही है। इससे छोटे वर्ग के प्रति जो हीनभावना पैदा हो रही

---

[117] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 145

।

है वह समाज के लिए घातक है। साथ ही हीनभावना का यह सिलसिला सिर्फ छोटे पद वालों के साथ ही नहीं घटता, अपने से बड़े पदाधिकारी के साथ रहना भी बहुत मुश्किल है।

निबंध को देखने से परसाई की तेज़ बुद्धि के दर्शन कई स्तरों पर होते हैं। उन्होंने समाज के ऐसे वर्ग की खोज की है जो विवाह जैसे बंधन को व्यापार मानकर चलता है। उसके लिए किसी की शादी कराना अपने व्यापार को आगे ले जाने के अलावा और कुछ नहीं। उसका ध्यान केवल इस बात पर रहता है किस प्रकार लड़कीवालों को लूटा जाए और अपनी अलमारी भरी जाए। लेकिन कई बार यह व्यापार लड़के वालों के साथ भी घटता है जब उनकी शिक्षा के आधार पर उन्हें बाजार में तौला जाता है। लेकिन इससे दहेज प्रथा को न्यायसंगत नहीं ठहराना चाहिए। वह वर-वधु दोनों के संदर्भ में अपराध है। तो वहीं उन पिताओं की मजबूरी की ओर भी इशारा किया है जो विवाह के सामाजिक आडम्बर जिसमें साज-सज्जा से लेकर बरातियों का भव्य स्वागत तक और परम्परा के नाम पर दहेज जैसी लूटपाट तक शामिल है , के साफ दृश्य हैं। क्योंकि लड़के के पास चाहे कुछ हो न हो , लड़की के बाप को लूटने के लिए उसकी कानी लड़की ही बहुत है। बस उन्हें मिल गया शिकार। इसके नाम पर तो वो उस लड़की के बाप की चड्ढी तक उतार सकते हैं ये लाख रुपए क्या बात है। समाज में जिस रेट लिस्ट की चर्चा चलन में है उसका एक नमूना परसाई दिया है :-

" कान्यकुब्जों में एम.ए. पास , मगर फिलहाल बेकार , वर का क्या रेट है , यह सयानों से पूछा गया। सयानों ने बताया कि वैसे तो लड़कीवाले की सामर्थ्य और श्रद्धा पर निर्भर है। हमने मैट्रिक फेल कान्यकुब्ज कुमार को कानी लड़की के पिता से लाख भी दिलाए हैं। पर सामान्यतः एम.ए. पास बेकार लड़के का रेट पन्द्रह-बीस हजार के बीच है।" (पृ 143)[118]

विवेचन - समाज का एक वर्ग ऐसा भी है जहाँ आपकी सुरुपता , आपकी सेलेरी , आपका काम-धंधा , आपकी जमीन-जायदाद तय करती है आपका मूल्य। नाकि आपकी पढ़ाई और कला। हमारे घर-परिवार में सामान्यतः देखा जाता

118 विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 143

।

है कि है इतनी पढ़ाई के बाद भी हम घर के लिए कुछ नहीं कर पा रहे या नौकरी नहीं लगती तब हमारा सम्मान घट जाता है। यही समाज के भीतर भी होता है। इससे समाज में बढ़ते 'पैसे का बोलबाला' जैसी वृत्ति की ओर भी इशारा किया है। साथ में 'कानी लड़की से लाख दिलाए थे' में उस पिता की मजबूरी साफ दिखती है जिसे विवाह जैसी संस्था में सामाजिक दबाव के कारण अत्यधिक आडम्बर रचना पड़ता है।

विवाह की आदर्श स्थिति इस बात पर टिकी है कि अव्वल तो सेटल हो जाओ। सेटल होने का अर्थ ऐसी नौकरी जिससे जीवन यापन हो सके तब कहीं शादी का सोचना चाहिए। लेकिन इस समाज में अच्छा भी है तो बुरा भी है। गुणी भी है तो अवगुणी भी है। पवित्र भी है तो अपवित्र भी है। सभ्य भी है तो असभ्य भी है। जैसे "मैला आँचल" का मेरीगंज जहाँ फूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुंदरता भी है, कुरूपता भी।" [119] विवाह से पूर्व इन सब बातों पर ध्यान देना इसलिए भी जरूरी है कि विवाहोपरांत नव-दम्पति का मन बहुत भाव-विभोर हो उठता है। चंचल हो जाता है। उसे नई जगह हनीमून के लिए जाना है तो घर का खाना छोड़कर रेस्टोरेंट में अमेरिकी संस्कृति कोका-कोला और मैकडोनालनीकरण का हिस्सा भी बनना है। नए-नए ट्रेंडिंग कपड़े भी चाहिए और फैशन में चूर चेहरे का ग्लो बढ़ाने के लिए तमाम सौंदर्य उत्पाद भी। इसके लिए खर्च तो होगा ही। और आगे चलकर बाल-बच्चों का पालन-पोषण। लिहाज़ा 'पहले नौकरी फिर छोकरी' वाली बात यहाँ सही बैठती है। नौकरी के न रहने और विवाह हो जाने के बाद क्या-क्या बुरे परिणाम होते हैं यह हमारी आँखों के सामने खूब आता है। मारपीट से लेकर दोनों पक्षों के घर वालों के बीच थू-थू करना-करवाना , पुलिस थाना , दहेज के आरोप , डोमेस्टिक वॉयलेंस और अंततः तक-हारकर और दमघोंटू जीवन जीते-जीते मृत्यु को प्राप्त हो जाना। बस यही जीवन बन जाता है। इससे अच्छा है सोच समझकर ही कदम उठाया जाए।

धर्म और नीति व मर्यादा का मायारूपी खेल दिखाकर आप समाज से जघन्य से जघन्य अपराध भी करा सकते हैं। दहेज के मामले में भी यही होता है। धर्म का डर दिखाकर आपसे पैसे ऐंठ लिए जाते हैं। मनुष्य इतना दोगला हो गया है कि उसी धर्म का सहारा लेकर वो खुद को डिफेंड कर लेता है , अपने को पवित्र और सभ्य बन लेता है और दूसरे ही पल उसी धर्म का लबादा ओढ़कर आपसे दहेज के रूप में मोटी रकम वसूल सकता है। परसाई ने लिखा है, "आप

[119] मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, भूमिका

।

स्वयं समझदार हैं। नीति और मर्यादा जानते हैं। धर्म पर ही पृथ्वी टिकी है। ….. पैसा हाथ का मैल है। मनुष्य को धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए। …. आशा है, आप मेरी बात समझ गए होंगे। मेरी प्रार्थना है कि अब आप दस हजार रुपए और देने की कृपा करें। हमें तो चाहिए नहीं। आप अपनी लड़की को ही देंगे।" (पृ 144) [120]

विवेचन - लेखक ने अंततः सिद्ध कर दिया कि यह समाज दहेज और उससे जुड़ी रूढ़ियों से आजतक नहीं उबर सका है। उलटे उसमें और संलिप्त होता जा रहा है। दहेज जैसी कुप्रथा को ऐसे लोगों ने समाज का ट्रेंड बना रखा है। जिसमें धर्म और परम्परा जैसे मायावी शब्दों का इस्तेमाल करके लूट-खसोट और काला व्यापार चलाया जा रहा है। अतः दहेज प्रथा एक गलत प्रथा है जिसे समाज से जल्द-से-जल्द नष्ट किया जाना चाहिए। उसके लिए युवाओं में जागरूकता लानी होगी।

'तिवारी जी की कला ' भी सामाजिक निबंध है। इसमें भी समाज की दहेज जैसी कुप्रथा पर व्यंग्य कसा है। इस निबंध के मुख्य पात्र तिवारी जी हैं जो अपने पुत्र 'अविनाश' के लिए लड़की की तलाश में कई लड़की वालों से रिश्ते की बात कर चुके हैं और उनसे उनका मेन्यू कार्ड 'दहेज के मूल्य' अपनी नोटबुक में अंकित कर चुके हैं। लड़के ने इंजीनियरिंग कर रखी है तो इन्हें कुछ ज्यादा की उम्मीद है। परन्तु इनकी माँग का लोगों ने यह कहकर विरोध किया की 'चालीस-पैंतालिस हज़ार तो आई. ए. एस के होते हैं। तब यह प्रतिवाद करते हैं और दहेज के नए रेट से अपने विरोधियों को परिचित कराते हैं। तिवारी जी कहते हैं "आपको नए रेट नहीं मालूम। आई. ए. एस. तो लाख का हो गया।" (पृ141)[121]

विवेचन - यहाँ पर नए रेट से अर्थ व्यंग्यात्मक रूप में 'दहेज की राशि' से है। जैसे किसी मेन्यू कार्ड में डिश का मोल बढ़ जाता है। जो दाल कढ़ाई पहले 50 की आती थी आज वही 100 की हो गयी है। पनीर की सब्जी तो 150 के पार। और तवा रोटी 10 रुपए प्रति। ठीक ऐसे ही दहेज के नए रेट लिस्ट समाज ने जारी किए हैं। अब आपको 'जितना बड़ा पद

---

[120] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 144

[121] वही, पृ 141

।

उतनी मोटी राशि' जैसी उक्ति को अर्थवान बनाना होगा। यह उक्ति समाज की विसंगति का बयान है परसाई ने इस ' नए रेट' शब्द का प्रयोग करके समाज की तुच्छ मानसिकता पर प्रहार किया है।

समाज की विसंगति के जितने रूप अकेले परसाई ने दिए हैं वह उनकी कूटबुद्धि का परिचायक है। समाज में अफसरों की बोली बढ़ती जा रही है और उनका नया रेट लिस्ट जारी हो गया है। चूँकि समाज में सभी वस्तुओं के दाम बड़ी तेजी से आसमान छू रहे हैं तो उससे भला आई.ए. एस. पीछे कैसे रह सकते हैं ! सो उन्होंने भी अपने नए रेट जारी करके समाज को कुछ संतोष दिया। उनके साथ धोखाधड़ी नहीं की।

लेकिन समाज में जहाँ आज भी दहेज प्रथा खूब जोरों-शोरों से बढ़ रही है तो कुछ ऐसे भी परिवार है जो इसके खिलाफ हैं। जो लड़की वालों की समस्याओं को समझते भी हैं और उसे नकारते भी हैं। इसमें सबसे बड़ी भूमिका यूथ की दिख रही है। जिसका सबसे बड़ा कारण साक्षरता-दर का बढ़ना है। पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच होते संघर्ष से भी इस कुप्रथा को खत्म करने की कोशिश चल रही हैं। निबंध का मूल , अंत में अविनाश के फैसले पर खुलता है जब वह रजनी नामक लड़की से कोर्ट में बिना कुछ लिए विवाह कर लेता है। क्योंकि वह लड़की वालों को परेशान नहीं करना चाहता था। वह कहता है- "पूज्य पिताजी , रजनी के पिता पांडेजी आपसे मिले थे। आपने उनसे तीस हजार माँगे थे। …. पर पांडेजी की आर्थिक हालत अच्छी नहीं है। वे लोग अपना मकान बेचकर बीस हजार का प्रबन्ध करने की कोशिश कर रहे हैं। ……. । वह आपको जीवन भर नीच और दुष्ट मानेगी , जिन्होंने उसके परिवार को नष्ट किया। ….. मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि मेरी पत्नी आपको नीच और कमीना समझे। आप भी ऐसी बहू नहीं चाहेंगे जो आपसे नफरत करे। इसलिए आपके भले को ध्यान में रखकर मैंने कल उससे कोर्ट में बिना कुछ लिये शादी कर ली। इससे आपको सन्तोष होगा। हमें आशीष दें। " (पृ 142)[122]

[122] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 142

।

विवेचन - इससे यह बात पुष्ट हो जाती है कि निबंध के मूल में दहेज प्रथा का विरोध ही शामिल है। परसाई की चिंता ऐसी कुप्रथाओं और रूढ़ियों का विरोध कर युवाओं में भरोसा जगाने और उसके खिलाफ खड़ा होने की है। यदि देश का युवा चाहे तो समाज से ऐसी गम्भीर बीमारियों का ईलाज जड़ से कर सकता है। परंतु जब देश के युवा विशेषकर पढ़े लिखे लोग भी ऐसा न करें तब यह चिंता का विषय बनकर समाज के सामने खड़ा हो जाता है। इस निबंध के माध्यम से परसाई ने कोर्ट मैरिज और लड़के-लड़कियों के खुद के डिसीज़न का सम्मान किया है।

'सुशीला' निबंध में परसाई ने इंटरकास्ट मैरिज का समर्थन किया है। हम समाज में देखते हैं कि एक तरफ तो माँ-बाप बच्चों का भला सोचते हैं और चाहते हैं कि उनके बच्चों की शादी किसी अच्छे घर -परिवार में हो जाए। विशेषतौर पर लड़कियों के लिए। क्योंकि यह समाज लड़कों की तुलना में लड़कियों के लिए ज्यादा अनसेफ है। अगर उसे घर में भी सेफ्टी न मिले तो यह उसके साथ बहुत-बड़ा अन्याय है। लेकिन कई बार उनकी भलाई के चक्कर में अपने बच्चों की पसंद-ना पसंद भी उनके पूछने के हक से बाहर चली जाती है। माँ-बाप का सामाजिक डर , सामाजिक दबाव और लोक-लाज की चिंता उनके बच्चों को कई बार अंधेरे में झोंक देती है। परिणामस्वरूप बच्चे भविष्य की चिंता में गलत कदम उठा लेते हैं या भागकर शादी कर लेते हैं। भागकर शादी करना कोई विकल्प तो नहीं लेकिन जब कोई विकल्प ही न मिले , तमाम पारिवारिक और सामाजिक दबाव सर के ऊपर तांडव करने लगे तब ऐसी परिस्थितियाँ कुछ अनहोनी या जल्दीबाजी का नतीजा ही क्रिएट कर देती है। बहुत कम ही ऐसा होता है कि भागकर शादी करने वालों के परिणाम अच्छे निकले हों। अन्यथा यह क्रिया लड़का-लड़की की परिपक्वता कम , डर और व्याकुलता ही लगती है।

निबंध अपनी गति में बढ़ता हुआ एक स्थान पा आ रुकता है। जहाँ पांडे जी कहते हैं - " शुद्ध सरयूपारी परिवार मिल जाए तो क्या बात है! "[123] यह समाज की विसंगति है। परसाई ने एक ही गोत्र में विवाह करने वाली मानसिकता पर भी व्यंग्य किया गया है। वह सेम कास्ट , रिलीजन में विवाह करने की जिद के खिलाफ हैं। इसलिए अपने लेखन में इंटरकास्ट जैसे विवाह को मंजूरी दी है।

---

[123] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 138

।

कथा में सुशीला किसी रमेश वर्मा नाम के कायस्थ इंजीनियर से भागकर शादी कर लेती है और अपने पिता की परेशानी व प्रोविडेंट फंड को बचा लेती है। हाँ सामाजिक ताने-बाने की उसे चिंता रहती है। लेकिन इसी सामाजिक दबाव पर परसाई की दृष्टि प्रहार कर सुशीला जैसे चरित्रों को समाज में स्थापित करते हैं। परसाई ने कहा है - " इधर सुशीला एक कायस्थ इंजीनियर के साथ भागकर बम्बई चली गई। पांडे जी लौटे तो कुहराम मचा। कहने लगे " लड़की ने मुँह काला करा दिया। …. कुछ दिन बाद पांडेजी को सुशीला की चिट्ठी मिली। लिखा था - 'आप बहुत दुखी और नाराज होंगे। मैंने रमेश वर्मा के साथ शादी कर ली है। …… मेरी शादी अगर आप करते तो सारा प्रॉविडेंट फंड चला जाता और कर्ज़ भी हो जाता। आपका दुख मैं समझती हूँ। लोग ताने भी देते होंगे। पर आप कह सकते हैं कि बेटी हो तो सुशीला जैसी, जो पिता का प्रॉविडेंट फंड बचा दे। ….. ऐसी लड़की भाग्य में कहाँ होती है। (पृ 138)[124]

विवेचन - इस प्रकार परसाई ने विवाह जैसी संस्था में नवीन दृष्टि को स्थापित करने की कोशिश की है। उनकी मान्यता लड़के-लड़की के फैसलों पर भी टिकी है। केवल परिवारजन ही किसी के संपूर्ण जीवन का फैसला ले यह प्रत्येक बार उचित नहीं। हमें आज की पीढ़ी से संवाद की स्थिति कायम करनी चाहिए , उन्हें खुलकर आगे आने के अवसर देने चाहिए। क्योंकि इसी भावी पीढ़ी पर हमारा भविष्य निर्भर करेगा। साथ ही विवाह को बंधनो से मुक्त करने में इंटरकास्ट मैरिज भी सफल तरीका है जिसे परसाई ने अंततः सिद्ध किया है।

परसाई का 'कबीर की बकरी' निबंध समाज में फैली जातिगत कुरुरता व जातिगत कुप्रथा पर तीख़ा व्यंग्य है। अपनी बहुत साधारण और छोटी-सी बात में परसाई ने पूरे जातिवाद की कमर तोड़ के रख दी है। इस निबंध में उन्होंने कबीर और उनकी बकरी का प्रयोग करके पूरे जातिवाद के साथ झूठे ब्राह्मणवाद को भी लताड़ा है। झूठे ब्राह्मणवादियों का दिमाग ठिकाने पर लाने के लिए परसाई का यह निबंध ही अकेला है। बात-बात पर जाति का डर दिखाकर इस वर्ग ने लंबे समय से भारतीय समाज के एक खासवर्ग को टारगेट किया है। तरह-तरह की यातनाएँ दी है। कभी उसके काम के

---

124 विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 138

।

आधार पर तो कभी उनके कहीं से गुजरने पर उन्हें पीटना। जहाँ आज भी जातिवाद के नाम पर इन लोगों के साथ क्या-क्या बदसुलूकी होती है यह किसी से छिपा नहीं। इस तरह के शोषण को अगर फिल्मों के माध्यम से समझना है तो 'मैडम चीफ मिनिस्टर', 'शुद्र- द राइज़िंग', 'सुपर थर्टी', 'आरक्षण' इत्यादि मूवीज़ देखनी चाहिए। इसलिए परसाई ने समाज की ऐसी घटिया और नीच संरचना पर प्रहार किया है। लिखते हैं- "कबीर-पन्थियों ने मुझे यह घटना सुनाई। कबीरदास बकरी पालते थे। पास में मन्दिर था। बकरी वहाँ घुस जाती और बगीचे के पत्ते खा जाती। एक दिन पुजारी ने शिकायत की , "कबीरदास, तुम्हारी बकरी मन्दिर में घुस आती है।" कबीर ने जवाब दिया, "पंडितजी, जानवर है। चली जाती होगी मन्दिर में मैं तो नहीं गया।" (पृ 116) [125]

विवेचन - जिस समाज में पशुओं को भी जातिगत आधार पर बाँट दिया हो उस समाज में किसी खासवर्ग की , जिन्हें हजारों सालों से जाति के नाम पर शोषित किया जा रहा हो उनकी क्या दुर्दशा होती होगी। जिस समाज में जानवरों से भी बदत्तर जीवन जीने के लिए लोगों को मजबूर कर दिया गया हो ऐसा समाज थूकने क्या उस पर मूतने के लायक ही होगा। निबंध का अंतिम वाक्य सूत्रवाक्य है। जहाँ पूरे दलितवर्ग की पीड़ा और उनके प्रति सहानुभूति दर्ज कर दी गयी है। साथ ही परसाई पर कबीर का प्रभाव दिखता है।

'पुलिस-मंत्री का पुतला' पुलिस के क्रुर रवैये और उनकी अमानवीयता को केंद्र में रखकर लिखा है। देखा जाए तो समाज की रक्षा और उसकी भलाई के लिए पुलिस-बल की संरचना हुई है लेकिन कई बार वो सरकार के दबाव में या दूसरों पर जुल्म करने के मकसद से अनुचित व्यवहार करने लग जाती है। ऐसे पुलिस वाले राक्षस प्रवृत्ति के होते हैं। लेकिन लेखक ने इसे नई उपाधि दी है - 'रावण' की।

रावण किसी को अच्छा लग सकता है किसी को बहुत बुरा लेकिन समाज में उसकी जो छवि बनी है और वह अपने जिस रूढ़ अर्थों में बसा है वह निर्मम, नकारात्मक और गलत के अर्थ में है। इसलिए परसाई ने भी पुलिस के

[125] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 116

।

ऐसे रवैये की रावण से तुलना करते हुए कहा है:- "एक राज्य में एक शहर के लोगों पर पुलिस जुल्म हुआ तो लोगों ने तय किया कि पुलिस मंत्री का पुतला जलाएँगे। ..... पर दफा 144 लग गई और पुतला पुलिस ने जब्त कर लिया। पुलिसवाले ने बड़े अफसरों से पूछा , "साहब , यह पुतला जगह रोके कब तक पड़ा रहेगा? इसे जला दें या नष्ट कर दें ?" अफसरों ने कहा, "गजब करते हो। मंत्री का पुतला है। उसे हम कैसे जलाएँगे ? इतने में रामलीला का मौसम आ गया। .... उसने रामलीलावालों को बुलाकर कहा , "तुम्हें दशहरे पर जलाने को रावण का पुतला चाहिए न ? इसे ले जाओ। इसमें सिर्फ नौ सिर कम हैं, सो लगा लेना। " (पृ 115) [126]

विवेचन - पुलिस के इस रावण-रूपी चरित्र की सुर्खियाँ समाज आये रोज कभी अपने सामने तो कभी अखबारों तो कभी समाचार चैनलों से बटोर लेता है। कोरोना के दौरान कई स्थानों पर पुलिस के अंदर का रावण बाहर आकर कोहराम मचा रहा था।। रेहड़ी-पटरी वालों का नुकसान करके , उन्हें मारकर उन्होंने अपने अंदर के रावण को जगाया ही नहीं बल्कि समाज के प्रति चिंतित और सरकार के प्रति प्रतिबद्ध होने का धन्यवाद भी दिया। जे.एन. यू और जामिया मिल्लिया इस्लामिया जैसे शैक्षणिक संस्थानों में पुलिस ने जो प्रेम बरसाया और दिल्ली दंगे के पहले कपिल मिश्रा के आपराधिक बोल पर पुलिस के आला-अफसर पीछे दाँत चियार रहे थे तब उनकी ऐसी हँसी और ऐसी चुप्पी उनके अंदर के रावण को बाहर निकालती है। अतः परसाई ने अपने इस निबंध में पुलिस-प्रशासन के क्रूर रवैये का यथार्थ चित्रण किया है।

'अफसर कवि' में परसाई यह दिखाना चाहते हैं कि किस तरह आज समाज में कलम की शक्ति क्षीण पड़ती जा रही है। किस तरह कलम की स्वतंत्रता को बाधित किया जा रहा है और उसे सच लिखने से रोकने के भरसक प्रयास हो रहे हैं। आपातकाल के दौरान कई बुद्धिजीवियों के साथ ही लेखकों पर भी जो प्रतिबंध और डर के माहौल का प्रभाव पड़ा था उसका सीधा असर यहाँ दिखाई दे रहा है। उस समय भी प्रेस पर रोक लगा दी गयी थी , सच को दबाया जा रहा था मारने की धमकियाँ मिल रही थी , यह सिलसिला आज भी बरकरार है। लेखक या पत्रकार अपने सिद्धांतों और नैतिकता के भरोसे ही इस पेशे में उतरता है लेकिन परिस्थितियों की डिमांड और सत्ता व प्रशासन का दबाव , ऊपर के

---

[126] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 115

।

लोगों का दबाव व मालिक का दबाव उन्हें बदल देता है। अब वह केवल गुरुभक्ति , सत्ता की दलाली के सिवाय वो कुछ नहीं कर पा रहा। केवल कलम घिस रहा है।

परिस्थितियों के अनुसार किस तरह कर्तव्य का गला घोंटते हैं उस दृष्टि से भी यह निबंध सफल हुआ है। निबंध में जिस अफसर के अंदर बसे कवि ने पुलिस की बर्बरता का यथार्थ वर्णन किया था बाद में उसे अफसोस होता है और जिसके लिए वह मुख्यमंत्री से क्षमा याचना करने को भी तैयार हो जाता है। लेकिन मुख्यमंत्री को उसके अंदर उस सच्चे कवि की झलक नहीं दिखती इसलिए मुख्यमंत्री ने कहा :- "यह वह कवि नहीं हो सकते, जिन्होंने वह कविता लिखी है।" (पृ 113)[127]

विवेचन - ऐसे कवि या ऐसे कलमगीर सत्ता के पालतू कुत्ते की तरह उनके आगे-पीछे घूमते रहते हैं। नेता प्यार से उन्हें गुल्लू पुकारा करते हैं। ऐसा कुत्ता कभी अपने मालिक पर भौंक नहीं सकता चाहे वह उसे कितनी ही यातनाएँ दे। ऐसा लगता है मानो फिर से जमाने में राजकवि पैदा होने लगे हैं और राजाश्रय में पलकर राजा का गुणगान करने लगे हैं। इस तरह लेखन की स्वतंत्रता पर जो अवरोध लगाए जा रहे हैं उस ओर भी परसाई ने ध्यानाकर्षण किया है।

परसाई का 'स्वर्ग में नरक' निबंध ऐसे चरित्रों को उद्घाटित करता है जो समाज को धोखा दे रहे हैं। चाहे अपनी बोली से या अपने काम से या अपने पेशे से। पूरा समाज आज अशुद्ध और मिलावटभरा हो चुका है। वस्तु तो क्या यहाँ तक कि इंसानों में मिलावट की मात्रा इतनी बढ़ती जा रही है कि उसका असल रूप ही धुँधला पड़ता जा रहा है। उसकी मिलावट से न जाने कितनों को कष्ट हुआ होगा। लेकिन दुनिया का दस्तूर ऐसा है कि उसे उसके कर्मों का फल जरूर मिलता है। यह निबंध भी इसी बात को अर्थवान बनाता है। 'जैसी करनी वैसी भरनी' या 'बोया पेड़ बबूल का तो फल कहाँ से होए' जैसी लोकोक्ति इस निबंध की शोभा बढ़ाती है।

---

[127] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 113

।

निबंध में सेठ महमूल की मिलावट ऐसी थी कि जैसे कोई उस्ताद भी उसे अलग-थलग न कर पाए। क्योंकि मिलावट भी एक कला ही तो है। परसाई लिखते हैं :- " सेठ मेहमूल मिलवानी के उस्ताद थे। वे घी में चर्बी , धनिया में लीद और बेशन में पिसा पत्थर इस तरह मिला देते थे कि किसी को मिलावट का पता ही नहीं लगता था। पर सेठ मेहूमल भगवद्-भक्त भी थे। लिहाजा जब वे मरे तो एक देवदूत आया। चित्रगुप्त ने रिकॉर्ड भगवान के सामने पेश की। …. मेहूमल ने कहा, "हाँ भगवन्, मैं आपका अटल भक्त हूँ।" विधाता ने कहा, "इसीलिए हम तुम्हें स्वर्ग में स्थान देते हैं। …… मेहूमल को स्वर्ग में एक सुन्दर मकान में रखा गया। बढ़िया भोजन परोसा "गया। उन्होंने एक कौर लेकर मुँह में डाला तो थू-थू करके उगल दिया। भोजन में नीम की पत्ती मिला दी गई थी।" (पृ 101)[128]

विवेचन - यहाँ लेखक ने बड़ी सावधानी से 'थू-थू' शब्द का इस्तेमाल किया है। क्योंकि वह जानता है कि जो खाना जानवरों के खाने लायक भी नहीं है ऐसा ही खाना कितने ही लोग लंबे समय से खा रहे हैं। और आज जब इस सेठ को खाना पड़ा तो इसकी नानी याद आ गई। एक तरफ इस समस्या को दिखाकर लेखक ने ऐसे लोगों के प्रति सहानुभूति दिखाई है तो वहीं सर्व-संपन्न , पेटभरे वर्ग को लतियाया है। देश में कितने हजारों-लाखों लोग बिना खाए-पीए सो जाते हैं व देश में भुखमरी का आलम किस प्रकार छाया हुआ है इसके लिए राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) का डाटा देखना चाहिए। जो भारत देश की इस दुर्दशा की पोल खोलता है।

आगे दिखाया है कि 'रात को जब वे मुलायम गद्दे पर सो रहे थे, तब दीवारों से लम्बी-लम्बी सलाखें निकलीं और उनके शरीर में चुभने लगीं। वे रात भर सो नहीं सके।' और अंततः महमूल कहता है :- "मुझे विधाता के पास ले चलो। यह तुम्हारा कैसा स्वर्ग है " अधिकारी ने जवाब दिया , "विधाता ने स्वर्ग में नरक की मिलावट करने का हुक्म दे दिया है।" (पृ 101)[129]

128 विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 101
129 विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 101

।

विवेचन - प्रंसग का मतलब सीधा साफ है। आजतक जो दुख हम वर्षों से भोगते आ रहे थे आज जब इस वर्ग (उच्च वर्ग) को एक दिन भोगना पड़ा तो इसकी हालत बिगड़ गई। ऐसी स्थिति में समाज इस वर्ग को ऐसे लताड़ता है - 'आज इसे बड़ा दुख लग रहा है। सालों से हमें जो दुख और मिलावट भरा जीवन जीने को मजबूर किया तूने आज खुद पर पड़ी तो नखरे दिखा रहा है। साला हरामी!' समाज से इस तरह के वाक्य परसाई के निबंध व उसके मर्म को जिंदा कर देते हैं।

राजनैतिक व्यंग्य

राजनैतिक व्यंग्य राजनैतिक वातावरण की सच्चाई होती है। इन निबंधों में राजनैतिक दलों की योजनाओं, उनके वादों और उनके काम के अलावा राजनैतिक गलियारों में पलने वाली गंदगी का यथार्थ चित्रण होता है। ऐसे निबंधों से राजनेताओं के झूठे और नकली चरित्र की सच्चाई बाहर लाई जाती है। देश-दुनिया में राजनीति का जो अनैतिक चलन रहता है ऐसे विषयवस्तु इस तरह के निबंध की सामग्री बनते हैं। इस दृष्टि से परसाई ने भी भरपूर मात्रा में राजनैतिक निबंध लिखें हैं। परसाई ने खुद भी स्वीकारा है:- "लिखा मैंने बहुत है, रोज की लिखता हूँ। मेरे पास राजनीतिक व्यंग्य रचनाओं का भंडार है यह बढ़ता जाता है।"[130]

'आजादी की घास' निबंध मूलतः किसी भी मंत्री, विधायक, सांसद या टटपुंजिया छोटे नेता, जो अपना काम निकालने के बाद किस तरह जनता के पिछवाड़े पर लात मारकर उसे भगा देते हैं, ऐसे नेताओं का चरित्र चित्रण है। इसका स्वरूप लंबे समय से भारतीय राजनीति में चलता आ रहा है। ऊपर से बड़ी बात यह है कि इतना कुछ झेलने के बाद भी भारतीय जनता अपने नेताओं को व देश की राजनीति को ठीक-ठाक समझ नहीं पाने में असफल होती जाती है। फिर से वही गलती कर बैठती है। इस गलती का ये नेतागण किस तरह से लाभ उठाते हैं इसका एक नमूना निबंध में दिखाया गया है।

---

130 प्रतिनिधि व्यंग्य, हरिशंकर परसाई, भूमिका

।

किस प्रकार काम निकलने के बाद उस नेता ने अपने सर्मथकों को, जिनमें अधिकांशतः युवा थे और उनपर अपने परिवार को चलाने की ज़िम्मेदारी थी। जो सन 42 की लड़ाई में असल नेता के कहने भर से आंदोलन में कूद पड़े थे और जेल तक जा चुके थे। लेकिन आजादी के इतने वर्षों बाद भी जब उन्हें काम, किसी प्रकार की नौकरी नहीं मिलती तब उसी नेता के पास जाते हैं और उन्हें 42 की लड़ाई की याद दिलाते हैं। बदले में वही नेता उनके साथ गधे और कुत्ते-सा सुलूक करता है। परसाई लिखते हैं:- "हम मित्र थे। जब सन् 42 का ' अंग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन चला। हमारे नेता ने हमें ललकारा। वे नारा देते थे गुलामी की घी से आजादी की घास अच्छी है। …. जेल गए। जेल से छूटे पढ़ाई पूरी की आजादी आ गई। हम डिग्रियाँ लिये शहर के चक्कर लगाने लगे। हमारे नेता अब मंत्री हो गए थे। …… देशी और विलायती बढ़िया घास हमारा जी ललचाने लगा।…… हमने उन्हें याद दिलाया कि हम उनके नेतृत्व में आजादी की लड़ाई लड़े थे।

परसाई ने कहा है:- मंत्रीजी ने कहा, "ठीक है, ठीक है। क्या चाहते हो ?" हमने कहा, "आपके अहाते में इतनी बढ़िया आजादी की घास लगी है। हम थोड़ी-सी खाना चाहते हैं। मंत्रीजी ने कहा, "तुम्हें वह घास नहीं मिलेगी। वह मेरे पालतू गधों के खाने के लिए है।" (पृ 131)[131]

विवेचन - आखिरकार एक बार फिर से भारतीय जनता बेवकूफ बनी और ऐसे फर्जी नेताओं के झाँसे में आकर उसने अपना कीमती समय और ऊर्जा दोनों नष्ट किया। परसाई ने अंत में यह सिद्ध कर दिया कि ऐसी भोली-भाली जनता को बदले में दुत्कार और अपमान के अलावा कुछ नहीं मिलता। साथ ही उनकी मंदबुद्धि पर हँसते हुए उस नेता ने बता दिया कि उनकी औकात उसके गधों के बराबर भी नहीं है। क्योंकि उस गधे को तो वह घास खाने को मिल सकती है लेकिन अब तुम लोगों से काम निकल गया है। तो अपना रास्ता नापो। यहाँ कोई मुफ्त की घास नहीं है जो तुम्हें खाने को मिलेगी। अंततः निबंध के माध्यम से राजनीति के दुष्चरित्र की अभिव्यक्ति और इससे बचने का संदेश भी मिलता है।

[131] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 131

।

'बाप बदल' निबंध राजनीति में बदलते और टूटते रिश्तों से जुड़ा है। जहाँ किसी भी रिश्ते पर भरोसा नहीं किया जा सकता। कोई भी किसी का सगा नहीं। यदि रिश्ते निभाने हैं तो राजनीति में मत आओ। आओ तो बेशर्म बनकर और रिश्तों को ताक पर रखकर। नहीं तो आपके रिश्ते भी गंदे होंगे और आपकी राजनीति का भी मटियामेट हो जाएगा। निबंध में काल्पनिक पिता 'रविनारायण' और पुत्र का नाम 'रामचरण' है जहाँ पिता के सौवें जन्मदिन पर बेटे को मुख्यमंत्री बनने का सौभाग्य मिल रहा है। लेकिन दुर्घटना यह हो जाती है कि बेटे को अल्पमत के कारण इस्तीफा देना पड़ता है। और जैसाकि तय है कि जनशताब्दी समारोह होकर रहेगा। इस दृष्टि से उनके स्थान पर मुख्यमंत्री बनने वाले व्यक्ति 'शारदाप्रसाद' अब उनके बेटे कहलाएँगे। इसलिए सही कहा गया है- ' राजनीति में झूठ-सच, रिश्ते-नाते, पवित्र-अपवित्र कुछ नहीं होता, होता है केवल राजनीति और यही राजनीति है।'

परसाई ने लिखा है कि :- "सारे प्रदेश में शोर था। शतवार्षिकी समारोह की तैयारियाँ बड़े जोर पर थीं। कमेटियाँ बन गई थीं जिनमें मुख्यमंत्री की पार्टी के लोग-चमचे, उपचमचे, असिस्टेंट चमचे, चापलूस, लाभ उठानेवाले, मंत्री बनने के इच्छुक दरबारी, सरकारी अफसर आदि थे। प्रादेशिक समिति से जिलों की इकाइयों को आदेश जा रहे थे कि महात्मा गांधी की जयन्ती से शानदार समारोह होना चाहिए। .... विचार के बाद रास्ता निकला। समारोह तो मनाया ही जाएगा। पर यह सूचना प्रकाशित कर दी गई पंडित रविनारायण का सौवाँ जन्मदिन यथावस्तु मनाया जाएगा। पर जनता की जानकारी के लिए निवेदन है कि पंडित रविनारायण 10 तारीख तक पंडित रामचरण के पिता थे। पर 11 तारीख से वे वर्तमान मुख्यमंत्री शारदाप्रसादजी के पिता हो गए हैं। (पृ 131)[132]

विवेचन - इस तरह से अंत में राजनेताओं ने अपने बाप तक बदल दिए और आयोजन धूमधाम से मनाया गया, सीट भी पक्की हो गई। इससे परसाई ने यह दिखाने की कोशिश की है कि राजनीति में आपका रिश्ता का होना न होना कुछ नहीं। सब परिस्थितियों के ऊपर डिपेंड है। यदि किसी नेता का कोई काम आपके बाप या आपको बाप बनाने से बन

[132] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 131

।

सकता है तो उसे अपनी माँ के लिए दूसरा पति ढूँढने में बिल्कुल शर्म नहीं आएगी। बल्कि उसे ख़ुशी ही मिलेगी। क्योंकि उसके बाप की वजह से उसका कोई काम होने जा रहा है। अतः हमें ऐसे नेताओं की चालाकियों और उनके चरित्र को समाज में नंगा करके उन्हें सबक सिखाने की जरूरत है। निबंध में 'गाँधी जयंती से शानदार समारोह होना चाहिए' यह दर्शाता है कि राजनीति में कोई काम, काम के लिए नहीं, केवल चमक-धमक, झूठे प्रचार और वाहवाही लूटने के लिए होता है।

'आफ्टर ऑल आदमी' में लेखक ने उन अवसरवादी सरकारी अफसरों का चित्रण किया है जो स्वतंत्र इकाई नहीं होते बल्कि सरकार के नुमाइंदे या उनके लिए काम करने वाले महज़ एक पुतले होते हैं। यहाँ तक की मतदान जैसी गंभीर और विचारणीय विषय पर भी वह अपना फायदा देखते हैं। किसकी सरकार आने से उन्हें लाभ मिल सकता है या उनका ट्रांसफर रुक सकता है। किस सरकार में रहकर वो ज्यादा-से-ज्यादा घूस ले सकते हैं, किसकी सरकार पलटने वाली है और विपक्षी सरकार से उन्हें क्या लाभ मिल सकते हैं ये सारी कैल्कुलेश करने वाले अवसरवादी अफसर देश की राजनीति किस तरह बिगाड़ते हैं इसका निबंध में बड़ा सजीव वर्णन हुआ। क्योंकि "आफ्टर ऑल वह सरकारी नौकर हैं " (पृ 129)[133]

विवेचन - ऐसे अधिकारियों को व अफसरों को अपनी नौकरी प्यारी होती है। ऐसे अफसर सरकार की हाँ में हाँ मिलाने का राग अलापते हैं। ऐसे अधिकारी अपना स्वतंत्र अस्तित्व ख़त्म करके सरकार के हस्तक्षेप को बढ़ावा देते हैं। अंततः वह केवल सरकारी पिट्ठू या सरकारी कठपुतली मात्र रह जाते हैं। उनके अंदर का मानव मर जाता है। शेष रह जाता है 'सरकारी कर्मचारी'।

परसाई ने 1977 के लोकसभा के चुनावी माहौल को इस रूप में खींचा है:- "तारीख उन्नीस मार्च को लोकसभा के लिए मतदान होना था। सरकार तब कांग्रेस की थी। …… एक ने कहा- कल मतदान हो जाएगा। दूसरे ने

[133] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 129

।

कहा- इस बार जनता पार्टी का बड़ा जोर है। वे बोले- हम तो जी, कांग्रेस को ही वोट देंगे। आफ्टर ऑल हम सरकारी नौकर हैं। बाईस तारीख को चुनाव परिणामों की घोषणा के बाद हम लोग फिर बैठे बातें कर रहे थे।

एक ने कहा- अब तो जनता पार्टी की सरकार बन ही गई।

दूसरे ने कहा- किसी को उम्मीद नहीं थी कि कांग्रेस इस बुरी तरह हारेगी।

वे बोले-ठीक है जी, हमारा वोट जनता पार्टी के काम आया। मुझे याद आया कि ये तो कह रहे थे कि मैं कांग्रेस को वोट दूँगा।

मैंने उनसे पूछा- तो क्या आपने जनता पार्टी को वोट दिया था ? वे बोले-हाँ जी, आफ्टर ऑल हम सरकारी नौकर हैं। (पृ 136)[134]

विवेचन - निबंध के माध्यम से परसाई ने ऐसे अफसरों का रूप दिखाया है जो बघ्घी में लगे उस घोड़े की तरह होते हैं जो कहीं नहीं देखता केवल वहीं देखता है जहाँ उसका मालिक दिखाना चाहता है। चूँकि उसकी आँखों के दोनों ओर काली पट्टी लगी होती है जिससे उसे दाएँ-बाएँ का बिल्कुल अंदाज़ा नहीं होता। बस मुँह उठाये दौड़ा चला जाता है। ऐसे अफसरों के कारण ही प्रशासन, समाज और देश की राजनीति तक प्रभावित होती है जिसका सारा दुख जनता को झेलना पड़ता है। क्योंकि वह उचित के साथ न होकर सरकार के साथ होते हैं।

'प्रथम स्मग्लर' में परसाई ने राजनीति में फैली भाई-भतीजावादी संस्कृति की धज्जियाँ उड़ाकर रख दी है। चाहे वह राजनीति हो, समाज हो या कोई भी संस्था अथवा प्रशासन। जहाँ भी भाई-भतीजावाद, परिवारवाद है परसाई उसके सख़्त खिलाफ हैं। उन्हें इससे चिढ़ होती है। वह उचित और योग्य के समर्थन में हैं। निबंध में आगे दिखाया है कि यदि गलत काम से अपने किसी का लाभ हो रहा हो तो वह गलत नहीं। दूसरों के लिए वह घोर अपराध है। उसके लिए दंडविधान भी तैयार रहता है।

[134] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 136

।

इस निबंध में स्मगलिंग और स्मगलरों पर प्रहार करने के लिए निबंधकार ने रामायण का कथानक उठाया है। रामायण में प्रसंग है कि लक्ष्मण को शक्ति लगने से वह मूर्छा हो गए हैं और उनके लिए हनुमान संजीवनी लेने गये हैं। इसी दृश्य को नए अर्थो में परसाई ने दिखाया है:- "लक्ष्मण मेघनाथ शक्ति से घायल पड़े हैं। हनुमान उनके लिए हिमाचल प्रदेश से संजीवनी नामक दवा लेकर लौट रहे थे कि अयोध्या के नाके पर पकड़ लिये गए। पकड़नेवाले को हनुमान ने पीटकर लिटा दिया। राजधानी में हल्ला मच गया कि बड़ा बलशाली 'स्मगलर' आया हुआ है। ……। शत्रुघ्न ने कहा- अच्छा दवाइयों की स्मगलिंग चल रही है। हनुमानजी ने संजीवनी निकालकर रख दी। कहा- मुझे आपके बड़े भाई रामचन्द्र ने इस दवा को लेने के लिए भेजा था।

शत्रुघ्न ने भरत की तरफ देखा, बोले- बड़े भैया यह क्या करने लगे हैं। स्मगलिंग में लग गए हैं। ….. इससे बड़ी बदनामी होती है।

हनुमान ने कहा - बात यह है कि आपके भाई लक्ष्मण घायल पड़े हैं। वे मरणासन्न हैं। इस दवा के बिना वे बच नहीं सकते।

भरत और शत्रुघ्न ने एक-दूसरे की तरफ देखा तब तक रजिस्टर में स्मगलिंग का मामला दर्ज हो चुका था।

शत्रुघ्न ने कहा- भरत भैया, आप ज्ञानी हैं। इस मामले में नीति क्या कहती है ? शासन का क्या कर्तव्य है ?

भरत ने कहा- स्मगलिंग तो अनैतिक है। पर स्मगलर किए हुए सामान से अपना या अपने भाई-भतीजे का फायदा होता है, तो यह काम नैतिक हो जाता है। मुंशी से कहा- रजिस्टर का पन्ना फाड़ दो। " (पृ 118)[135]

विवेचन - भरत का अंतिम कथन ही इस निबंध का मूल है। यही भाई-भतीजावाद की परिभाषा है। इस प्रकार से प्रत्येक कार्यप्रणाली, शासन-प्रशासन सब कुछ ठप्प पड़ते जा रहा है। जिसमें अनैतिकता के कई गुणतत्व शामिल है। इस कारण योग्य को अवसर नहीं मिल रहे हैं व इस परिवारवाद के कारण भ्रष्टाचार भी बढ़ता है। इस अनुचित साझी संस्कृति का विरोध निबंध में हुआ।

135 विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 118

।

'संसद और मंत्री की मूँछ' में संसद की समयखराबी, बेतुकी बातों के चलन, बिना काम के मुद्दों पर बहस जिसके कारण कई बार संसद सत्र को बर्खास्त करना पड़ता है, ऐसी बातों से भरा पड़ा है। इससे प्रत्येक सत्र में लगने वाला खर्चा बर्बाद होता है। इसमें लगने वाले खर्चे का सारा बोझ जनता की जेब पर पड़ता है। क्योंकि यह सब काम टैक्स से ही होते हैं। देश जनता के टैक्स से ही चलता है। इन नेताओं की जेब तो हमेशा टाइट रहती है। बेचारी जनता की जेब जो पहले से ही ढीली रहती है वो और भी खाली हो जाती है।

संसद देश की प्रमुख इकाइयों में गिनी जाने वाली व्यवस्था है जिसका काम देश की प्रगति और भावी भविष्य के लिए नए-नए कानूनों को पारित करना, अनुचित कानूनों या नियमों पर स्टे लगाना, उसे बर्खास्त करना आदि है। जनता को देश की जिस संस्था पर इतना भरोसा है देखते हैं कि वहाँ कुछ और ही तमाशा चल रहा है। और सच में तमाशा चल रहा होता है। सभी सांसद आपस में जंगलियों की तरह लड़-मरते हैं। एक-दूसरे को इस कदर सम्मान देते हैं कि किसी और सांसद को उसे लेने की हिम्मत ही नहीं होती। वह अपने अपमान में ही खुश रहता है। इसका सबसे बड़ा कारण संसद में प्रयोग में लाई जाने वाली 'प्रेममयी भाषा' और उसमें प्रयोग होने वाले मुहावरें और लोकोक्तियाँ, तकियाकलाम इत्यादि है। ऐसे में संसद की मर्यादा पूरी तरह भंग हो चुकी होती है, समय नष्ट हो जाता है।

संसद में तत्कालीन रेलमंत्री "गुलजारीलाल नंदा" की मूंछों पर ही बहस छिड़ गई। सभी दलों के नुमाइंदे आपस में उस बेमतलब के विषय पर झगड़ने लगे। जैसे मच्छीबाजार हो। कोई उनकी मूछों की तारीफ करता था तो कोई सोच में पड़ जाता कि मूँछें कहाँ जा सकती है। ऐसे करते-करते सारे सांसद आपस में ही बकलोली शुरू करने लगे। लेखक कहता है:- " सदन में कानाफूसी हुई और एक सदस्य ने कार्यवाही रोकते हुए कहा - अध्यक्ष महोदय, नन्दाजी की मूँछ आज नहीं है।.... क्या उन्होंने खुद मूड ली या कोई और मूड ले गया।

दूसरा जनसंघी - यह साधारण घटना नहीं है। इस मंत्रिमंडल में सिर्फ नन्दाजी की ही मूंछें हैं।

सत्ता कांग्रेसी - यह गलत है। जगजीवनराम की भी हैं।

।

जनसंघी - हम जगजीवनराम की मूंछ को मूंछ नहीं मानते।" (पृ 123)[136] और यह बहस आगे चलकर कई मोड़ लेती है। कोई इसे उत्तरभारत की साम्राज्यवादी कूटनीति बताता है तो कोई इसे भारतीय पौरुष का उत्तम प्रतीक।

विवेचन - मूँछ का मामला यहीं ख़त्म नहीं होता। जिस उत्तम पौरुष के प्रतीक की बात इन सांसदों ने की उसमें यह भी जानना जरूरी है कि भारतीय समाज में चलन या रूढ़ अर्थों का अपना अलग महत्व है। यहाँ मूँछों के होने से मर्दानगी, पौरुष्य और ताकतवर का प्रतीक है लेकिन ये केवल और केवल थोथी बातें हैं। ठीक ऐसे ही कि जिसके सीने पर बाल नहीं है वो मर्द नहीं है। चूँकि समाज में एक-से-एक व्यक्तित्व रहे हैं जिनकी न मूँछे रही न छाती पर बाल। या स्वेच्छा से उसे हटवा दिया। फिर भी समाज में उनका मान-सम्मान पूरा है। उनकी मर्दानगी पर किसी को कोई शक नहीं। उदाहरण के लिए सेना के सभी जवानों से लेकर अफसरों तक, नेता-अभिनेता से लेकर पहलवान तक न जाने कितने ही बिना मूँछ और छाती के बाल के देश का सम्मान बढ़ा चुके हैं । उनका लोहा सभी ने माना है। इसलिए इस तरह के घटिया तर्क देकर मर्दानगी की नई परिभाषा गढ़ना निहायत ही बेतुकी बात है। संसद में भी बेतुकी बातों पर बहस छेड़कर सदन का समय ख़राब करता है।

कई बार सदन की ऐसी बेतुकी बातें सभी दलों के आपसी रंजिश और छीछालेदरी पर आ जाती है। इसका उदाहरण देखिये:- " एक संसोपाई - धिक्कार है। यह 'राष्ट्रीय शर्म' की सरकार है। इन्दिरा गांधी के मंत्रिमंडल में शामिल होनेवालों की खैर नहीं है। इन्दिरा हटाओ, देश बचाओ।

दूसरा संसोपाई - नहीं, पूना में नारा बदल गया है। इन्दिरा हराओ, देश बचाओ।

पहला संसोपाई -चुप रह बे, राजनारायण के बच्चे !

दूसरा संसोपाई - चुप रह रे, जोशी की रखैल।

पहला संसोपाई - थू-थू !

दूसरा संसोपाई - थू-थू ! (पृ 124)[137]

---

[136] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 123

[137] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 124

।

विवेचन - इस तरह की 'थू-थू' के कारण सदन का सत्र रोकना पड़ता है और इसी सब बातों में सदन का एक घन्टा निकल जाता है। हम देख पाते हैं कि सदन की हालत उस बकरेबाड़े की तरह हो जाती है जहाँ से सिर्फ़ में-में आवाज़ें आती रहती है। या जैसे कोई चिड़ियाघर हो जहाँ तरह-तरह के जानवरों को रख दिया है जो आपस में लड़ रहे हैं। इस तरह निबंध का मूल उद्देश्य संसद की समय बर्बादी और ऐसे मूर्ख सांसदों की धूर्तता को दिखाना ही है। जो आपस में ही एक-दूसरे पर 'थू-थू'करते रहते हैं। ऐसे चरित्रों को जनता के सामने लाने में परसाई सफल हुए हैं। इसके अलावा संसद में असंसदीय भाषा का इस्तेमाल करके भी कई बार सांसद सत्र को भंग करना पड़ता है।

'चीनी डॉक्टर भागा' में नेताओं के फर्ज़ी बयान, उनके दिखावटी और अतिउत्साही भाषणों जैसी मानसिकता पर व्यंग्य किया गया है। अपना काम बनाने से लेकर दूसरों का काम बिगाड़ने तक, अपनी दाल गलाने से लेकर दूसरों की दाल नष्ट करने तक की षड्यंत्रकारी वृत्ति जिन नेताओं में छिपी रहती है ऐसे ही एक नेता की बयानबाज, दिखावटी देशभक्ति और घोखले राष्ट्रवाद की खिल्लियाँ इस निबंध में परसाई ने उड़ाई है।

हमारा समाज और राजनीति ऐसी हो गई है कि स्वयं को भीगने से बचाने के लिए दूसरों का छाता तक छीन लेंगे। ऐसा करते उन्हें ज़रा-सा हीनता बोध नहीं लगेगा और न ही शर्म। क्योंकि ऐसे लोग बेशर्मी का सालभर का कोर्स करके राजनीति में अपना पदार्पण करते हैं। शोध विवेच्य में 'फर्ज़ी राष्ट्रवाद' और 'फर्ज़ी देशभक्त' शब्द इसलिए इस्तेमाल किया है क्योंकि निबंध में 'देशभक्त' शब्द का इस्तेमाल जिस अर्थ में किया है वह उसके गूढ़ अर्थ में है जिसे पढ़कर आसानी से समझा जा सकता है।

किसी चीनी डॉक्टर की दाँत की दुकान को बंद कराकर वहाँ 'भैयासाब' अपने भतीजे की दुकान खुलवाने के संदर्भ से जुड़ा है। इसके लिए भैयासाब ने चीनी लोगों के खिलाफ भारतीयों में दुश्मनी, आक्रोश, कट्टरता और न जाने क्या-क्या नकारात्मक तत्व भरने के लिए भारत-चीन युद्ध को कारण बनाया है। उनका मानना है कि इस चीनी डॉक्टर के पास चाउ-एन-लाई की कोई गुप्त चिट्ठी आई है जिससे भारत को नुकसान हो सकता है। इसलिए इस डॉक्टर को यहाँ से

।

खदेड़ना होगा। लेकिन मूल बात भैयासाब के ज़रिए लेखक खुद कहलवा देते हैं:- 'आप जानते हैं, देश-भर में चीनी दाँत के डॉक्टर फैले हुए हैं। ये हमारे बीच में, हमारे बनकर कितने ही वर्षों से रह रहे हैं। ये इसी पवित्र भूमि का अन्न खाते हैं, इसी का जल पीते हैं। पर ये लोग इसी भूमि से गद्दारी करते हैं। हमारे शहर में भी एक चीनी डॉक्टर येन-चेन है। वह पचासों सालों से यहाँ है और सब उसका विश्वास करते हैं। दूसरा कोई अच्छा दाँत का डॉक्टर है नहीं, इसलिए उसकी आमदनी भी बहुत है। (पृ 69)[138]

विवेचन - इसी कारण 'भैयासाब' इस चीनी डॉक्टर को भारत से भगाना चाहते हैं। क्योंकि भारत-चीन युद्ध में चीन ने जो किया था उसे देश के स्वार्थी नेता जनता के सामने इस प्रकार दिखाते हैं कि सभी चीनी ऐसे ही होते हैं। ऐसा करके 'भैयासाब' के दो काम हो जाएँगे। पहला कि जनता की नजरों के यह हीरो बन जाएँगे, बड़े नेता बन जाएँगे और दूसरा की इनको इस दुकान पर कब्जा मिल जाएगा। इस निबंध का मूल इसी बात में छिपा है। जिसे राजनीति की भाषा में भाई-भतीजावाद कहते हैं। अर्थात किसी संस्था, कार्य, मंत्रालय आदि में अपने परिवारजनों को घुसेड़ना।

जिस रहस्य का पता भैयासाब ने लगाया था कि चीनी डॉक्टर के पास चाउ-एन-लाई की गुप्त चिट्ठी आई है और उसमें लिखा है कि भारत के सभी लोगों की अक्ल की दाढ़ उखाड़ लो। वही काम भैयासाब कर रहे थे जनता को उत्तेजित करके। चूँकि जोशीली भाषा और तेज-तर्रार शारिरिक हावभाव जनता को चेतना के स्तर पर निष्क्रिय बना देती है। उस समय जनता एक मशीन बन जाती है जिसमें भारी भरकम बैटरी फिट कर दी है। अब वो एकदम तेजी से काम करने के लिए तैयार है। उसे जो भी हुक्म मिले उसे करने को रेडी है। भैयासाब कहते हैं:- "इनके पास चाऊ-एन-लाई की एक गुप्त गश्ती चिट्ठी आई है, जिसमें इन्हें आदेश दिया गया है कि अपने अपने शहर के राष्ट्र भक्त नेताओं की अक्ल की दाढ़ उखाड़ लो। भाइयो, अगर हम लोगों की अक्ल को दाढ़ उखड़ गई तो देश नेतृत्व-विहीन हो जाएगा और चीनी हमें परास्त कर देंगे। " (पृ 70) [139]

---

[138] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 69

[139] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 70

।

विवेचन - वर्तमान में भी देश के हालत कुछ ऐसी ही है जहाँ जनता की अक्ल की दाढ़ उखाड़ी जा रही है। जिससे जनता निष्क्रिय हो जाए। देश को धर्म-जाति जैसे मुद्दों पर घसीट कर मूल समस्याओं से भटकाया जाता है और राजनैतिक रोटियाँ सेंकी जाती है। साथ ही कुछ लोगों के कारण समूचे देश या किसी सम्प्रदाय को गलत ठहरा भी उचित नहीं।

लेकिन जनता भी कई बार होशियारी भरा काम कर देती है। जैसे ही भैया साब ने चीनी डॉक्टर और चीन के खिलाफ जनता को बरगलाया तभी कुछ कानाफूसी हुई। और कुछ सवालात हुए। सम्बोधित हो रही जनता को कुछ शक हुआ, कुछ गलत का आभास हुआ तो उन्होंने सीधे 'भैयासाब' को सवालों के कटघरे में उतार दिया। परसाई लिखते हैं:- " सभा में कानाफूसी हुई। कुछ खुसफुस हुई। दो-चार आदमी कुछ पूछने को उठे। एक ने कहा, "भैया सा'ब, कल तो आप शहर में थे ही नहीं। आप बाहर से सुबह ही लौटे हैं। आपकी बात सही नहीं मालूम होती ।" भैया सा'ब गरज उठे, "देख लो, इन गद्दारों को ये चीनी का पक्ष लेते हैं। " (पृ 70) [140]

विवेचन - ऐसा ही हमेशा होता आया है और आगे भी शायद होता रहेगा। राजनैतिक पार्टियों के अपने मंतव्य स्पष्ट रहते हैं। उन्हें जनता को उल्लू बनाना है। वर्तमान में भी यही हो रहा है। जैसे ही नेताओं से तीखें सवाल किए जाते हैं वो आपको देशद्रोही या पाकिस्तानी, खालिस्तानी, टुकड़े-टुकड़े गैंग, नक्सली, अर्बन नक्सलाइट, माओवादी, गद्दार जैसी उपाधियों से सुसज्जित कर सर्टिफिकेट बाँट देते हैं। क्योंकि ऐसे सर्टिफिकेट उन्हें कभी-भी कहीं-भी बाँटने पड़ सकते हैं। इसलिए इन्हें वो अपने पीछे चिपकाए रहते हैं। जैसे ही कोई सवाल हुआ, 'लो तुम्हें ईनाम के बदले देशद्रोही का सर्टिफिकेट दिया जाता है। जाओ अपने घर की दीवार की शोभा बढ़ाओ।' यही काम भैया साब भी कर रहे हैं। लिहाज़ा यह निबंध आज भी जस का तस बना हुआ है।

जब भारतीय जनता अपनी संस्कृति व धर्म को लेकर जो संकुचित और अतिभावनात्मक हो जाती है तब वह चेतना के स्तर पर एकदम लाश हो जाती है। ऐसी कमजोरियों का नेता बहुत फायदा उठाते हैं। भारत की जनता को

[140] वही, पृ 70

।

मुर्ख बनाने और उससे कोई भी अनुचित कराने के लिए धर्म या जाति ही बहुत है। हाँ! अगर धर्म से काम न चले या धर्म की जरूरत नहीं रहती तब भारतमाता को आगे रखकर वो अपनी बंदूक चलाते हैं। तो कभी वंदे मातरम के नाम से।

" भैया सा'ब का जोश दुगुना हो गया। वे दहाड़े, "हम देश के लिए प्राणों की बलि चढ़ा देंगे। हम देश के दुश्मनों के दाँत तोड़ देंगे। .... हमारा धर्म है कि हम इसे शहर से बाहर निकालें। भाइयो, कमर कस लो देश आज पुनः बलिदान माँगता है । बोलो देश के दुश्मन मुर्दाबाद। भारतमाता की जय ।' [141]

विवेचन - इस पूरे प्रसंग को पढ़कर समझ सकते हैं कि धर्म का गाजर दिखाकर आपसे कोई भी अनैतिक और घृणित कार्य आसानी से करवाया जा सकता है। तो वहीं नारों में इतनी शक्ति होती है कि वह आपकी चेतना को भी वह मात दे सकता है। इसलिए परसाई ने कहा है " नारों में तर्क डूब जाता है "[142] जब हमारे मष्तिष्क पर आवेग सवार हो जाता है तब हमारा मस्तिष्क काम करना बंद कर देता है और तर्क नष्ट हो जाता है।

यह सारा खेल, सारी राजनीति, धर्म का दायित्व, राष्ट्रवाद की थोथी बातें भैयासाब के भतीजे के लिए हो रही है। चूँकि चीनी डॉक्टर का काम बहुत तेजी से अच्छा चल रहा था और भैयासाब से रहा नहीं गया तब उन्होंने भारत-चीन युद्ध के साथ धर्म और राष्ट्रवाद जैसे जोशीले, ऊर्जावान हथियारों को प्रयोग किया और अंततः वह सफल हुए। परसाई ने लिखा है:- डॉक्टर त्रिवेदी ने जवाब दिया, "बात यह है कि आपके यहाँ जो भैयासाब हैं, उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का ऐसा अच्छा ज्ञान है कि उन्होंने मुझसे हफ्ते भर पहले ही कह दिया था कि तुम तैयार रहो। मैं तो परसों से बोर्ड वगैरह तैयार किए बैठा हूँ।"

मरीज ने पूछा, "भैया सा'ब को आप कैसे जानते हैं?" डॉक्टर ने कहा, "जानते हैं? अरे साहब, वे मेरे सगे चाचा होते हैं। " मरीज ने कहा, "तभी।" डॉक्टर ने पूछा, "तभी क्या ?"

---

[141] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 70

[142] वही, पृ 71

।

मरीज ने कहा, "कुछ नहीं। तभी... देशभक्ति जागी थी।" [143]

विवेचन - यही अंतिम पंक्ति निबंध का मूल कथन है। जहाँ देशभक्ति देश के लिए नहीं अपने लिए या जिनसे मुनाफा मिल सकता है उनके लिए जागती है और काम होने के बाद तुरंत छू मंतर हो जाती है। तब वह दोबारा इंतेजार करती है कि कब पुनः राष्ट्रवाद की जरूरत है। समाज की इसी दिखावे और स्वार्थ की दुनिया को परसाई ने व्यंग्य का निशाना बनाया है। इस तर्क के आधार पर यहाँ भाई-भतीजावाद वाली प्रवृत्ति साफ देखी जा सकती है। जिसका उपयोग केवल राजनीति ही नहीं कहीं भी किया जा सकता है बल्कि सभी जगह होता है।

'देशवासियों के नाम सन्देश' में मोरारजी देसाई सरकार की पंचवर्षीय योजना पर व्यंग्य किया गया है। जहाँ एक निश्चित समय में सरकार को देशहित में जितनी योजनाएँ, जितने काम, जितने प्रोजेक्ट शुरू पूरे कर देने चाहिए वह अधूरे रह जाते हैं। जितने नीति-नियम लागू होने चाहिए वह नहीं हो पाते।। बस टाइम खिंचता चला जाता है और कहते रहते हैं 'वर्क इन प्रोग्रेस , कार्य प्रगति पर है।' इसका एक उदाहरण देखिए:- "देश के सामने बहुत समस्याएँ हैं। ….. तो देश की सबसे बड़ी समस्या गरीबी और बेकारी है। हम दस वर्षों में गरीबी और बेकारी खत्म कर देना चाहते हैं। मगर आप कहेंगे कि यह बहुत जल्दी है। बीस साल में खत्म होना चाहिए। खैर, हम समझौता कर लेते हैं- पन्द्रह सालों में गरीबी और बेकारी मिटाएँगे। …… आपको भला लगे, चाहे बुरा।" (पृ 14)[144]

विवेचन - प्रसंग से पता चलता है कि देश की समस्याओं व आवश्यकताओं को ऐसे नेता या ऐसी सरकार कल के नाम पर छोड़ देती है। यह ऐसा कल होता है जो कभी आता ही नहीं। बस सरकार अपना ख़जाना भरती रहती है और जनता खाली होती रहती है। देश की गम्भीर समस्याओं पर भी जब सरकार इस तरह का विचार व असंवेदनशीलता

---

[143] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 71
[144] वही, पृ 14

।

रखती है तब परसाई जैसे लेखकों को जनता का प्रतिनिधि बनना पड़ता है और ऐसी सरकार की पोल खोलनी पड़ती है। जहाँ केवल कार्यकाल खींचा जाता है, आराम फरमाया जाता है।

परसाई ने सरकार के इस असंवेदनशीलता रवैये को अपने व्यंग्य में स्थान दिया है। उन्होंने सरकार के विश्वास पर अविश्वास जताते हुए व्यंग्यात्मक रूप में कहा है:- " आप लोगों ने हम पर विश्वास करके हमें सत्ता सौंपी। ऐसा आपने पहली बार नहीं किया है। पहले भी आप विश्वास करके ही सत्ता सौंपते रहे हैं। तो, जैसे पिछली सरकार ने आपके विश्वास को फलीभूत किया, वैसे ही हम भी करेंगे। हम उनसे किसी कदर हेठे नहीं पड़ेंगे।" (पृ 14)[145]

विवेचन - जनता के साथ हमेशा धोखा होते आया है। सभी राजनीतिक दलों ने जनता को ठगने का ही काम किया है। कभी धर्म के नाम पर तो कभी जाति के नाम पर। कभी अपनी पॉलिसियों के नाम पर तो कभी विपक्षी पार्टियों या पूर्व की सरकार की करतूतें गिनाकर। वही काम आने वाली सरकार भी करती है। देश की महँगाई ख़त्म करने के लिए परसाई ने जो तरीका दिखाया है उससे इतना गहरा व्यंग्य पैदा होता है कि पाठक सीधे लक्ष्यार्थ तक आप ही पहुँच जाता है।

वर्तमान भारत भी बढ़ती महँगाई को झेलते-झेलते टूट चुका है। सरकार महँगाई के लिए पिछली सरकारों पर बिल फाड़ती रहती है। 'अरे जब उनकी गलती थी तभी तो उन्हें हटाकर तुम्हें लाया गया। तो तुम क्या कर रहे हो ? या तुम भी बस पंचायत करने आये हो ? आरोप-प्रत्यारोप करने आये हो ? ' निबंध में यह बात स्वयं ही सिद्ध होती देखी जा सकती है।

समाज में बढ़ती मुनाफाखोरी और महँगाई पर परसाई का ये लेखन एकदम रामबाण ईलाज है। देखिये:- "सरकार जानती है कि मुनाफाखोरी हो रही है। पर मुनाफाखोरी मिट सकती है यदि लोग महंगी चीजें खरीदने से इनकार कर दें। गेहूँ महँगा है तो मत खरीदिए। दाल महँगी है तो मत खरीदिए। जब लोग खरीदेंगे ही नहीं तो मुनाफाखोर किसे बेचेगा ?

[145] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 14

।

मुनाफाखोरी अपने आप खत्म हो जाएगी। मैं पूछता हूँ, क्या दाल रोटी से ही पेट भरता है? आप फल और दूध का सेवन कीजिए। " (पृ 14)[146]

विवेचन - सरकार के इस रवैये पर परसाई जैसे बुद्धिजीवी इस तरह सोचते हैं- 'सही कहा आपने पैट्रोल महँगा है अपनी गाड़ी को लाल कपड़े में बाँधकर विसर्जित कर दीजिए, राशन का सामान महँगा हो रहा है भूखे पेट सोना शुरू कर दीजिए, कपड़े महँगे हो रहे हैं नंगे रहना शुरू कर दीजिए। तब सभ्यता को दोबारा से जिओ। पत्ते बाँधकर घूमो। हाँ ध्यान रहे कि आसपास कोई बकरी या भेड़ न हो। नहीं तो आपकी इज़्ज़त तार-तार हो जाएगी। इस तरह से महँगाई खुद ही शर्म के मारे मर जाएगी। अतः इस तरह के व्यंग्य से परसाई ने वर्तमान में मौजूद सरकार, उसकी कार्यप्रणाली, उसके खोखले वादों, उसके डूबते तर्कों, समाज में बढ़ती बेरोजगारी व भुखमरी और महँगाई पर झकझोरने का काम किया है।

'एक अपील का जादू' में का कथानक देश की सभी समस्याएँ, सभी योजनाएँ, सारे काम, कायदे-कानून बस नारों और अपीलों तक सीमित करने से जुड़ा है। जिसका असल जीवन में क्या प्रभाव है यह बताने की आवश्यकता नहीं। सच से सभी वाकिफ़ हैं। परंतु एक बात यहाँ जोड़ने योग्य है। जो निबंध में मुख्य है।

यह पूरा निबंध ही उल्टी दिशा में लिखा गया है। जो बोला जा रहा है होता समाज में उसका उलटा ही होता है। तभी तो महँगाई के खिलाफ जुलूस निकाला जाता है, विरोध किया जाता है। लेकिन यहाँ तो व्यंग्य की ऐसी मार पड़ी है जिसका सन्देश लेखक समाज तक पहुँचाना चाहता है। लेखक कहता है :- " दो दिन बाद सरकारी कर्मचारियों का जुलूस निकला। वे बाँहों पर काला पट्टा लगाए थे। वे कीमतें बढ़ाने की माँग कर रहे थे। उनका कहना था- हमें अभी बोनस और महँगाई भत्ता मिला है, इसके हिसाब से कीमतें बढ़नी चाहिए। पर इधर कीमतें एकदम घटा दी गई हैं। ऐसा कभी नहीं

[146] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 14

।

हुआ। यह हमारा अपमान है। हम कोई भिखमंगे नहीं है। हमारी भी नैतिकता है। सस्ता सामान खरीदना बेईमानी है। व्यापारी दाम बढ़ाएँ, वरना हम धरना देंगे। "[147]

विवेचन - बोनस और भत्ता न मिलने का जो दुख बढ़ती महँगाई में होता है उसके लिए इस प्रसंग से अच्छा कुछ नहीं हो सकता। परसाई ने इसे 'सपने की दुनिया' कहा है। इतनी नैतिकता और सच्चाई, महँगाई को खत्म करने और मुनाफाखोरी बंद करने के लिए, यह तो काल्पनिक दुनिया में ही सम्भव है। किसी यूटोपिया में। जबकि असल में जनता महँगाई के विरोध में काले पट्टे बाँधकर जुलूस निकालती है तो कभी बीच रोड़ पर धरना देने बैठ जाती। कभी संसद की छाती पर महँगाई का विरोध करने लगती है। बदले में प्रशासन उनका लाठी और आँसू गैस के गोलों से सत्कार करता है। उनके कोमल कदमों पर वाटर कैनन के तेज़ प्रहार करके उनके चरण धोता है और कहता है- 'अभी आने का सही समय नहीं। अभी साब बिज़ी चल रहे हैं। हमें उनकी रक्षा हेतु यहाँ खड़े हैं। यह हमारी ड्यूटी है नहीं तो हम भी तुम्हारे साथ अपने चरण धुलवाते।' इस तरह के उदाहरण सदैव हर सरकार में भरे पड़े रहते हैं लेकिन बेचारी जनता मरती रहती है , अपने चरण धुलवाती रहती है।

'विकलांग श्रद्धा का दौर' परसाई का प्रतिनिधि निबंध है। इसमें तत्कालीन राजनीति का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। जहाँ देश की दुर्दशा अनिश्चित आपातकाल से हुई थी। परिणामस्वरूप राजनीति, विधानपालिका और न्यायपालिका सबकुछ गर्त में आ डूबा। इस निबंध में इन्दिरा सरकार की अमानुषिक यातनाओं का पिटारा खोला गया है। जिसका असर पूरी तरह समाज पर पड़ा है। जिससे लोगों का आपसी विश्वास टूट गया है। एक जगह लेखक कहते हैं "आत्म-पवित्रता के दंभ के इस राजनीतिक दौर में देश के सामयिक जीवन में सबकुछ टूट-सा गया। भ्रष्ट राजनीतिक संस्कृति ने अपना असर सब कहीं डाला। किसी का किसी पर विश्वास नहीं रह गया था-न व्यक्ति पर न संस्था पर। कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका का नंगापन प्रकट हो चुका है।"[148] और इसी नंगेपन का वर्णन परसाई ने इस निबंध में किया है।

---

[147] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 57

[148] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 6

।

परसाई ने जिस विकलांगता का वर्णन अपने निबंध में किया है उससे समाज के बुद्धिजीवी भी प्रभावित हुए हैं। जिनमें मुख्यतः लेखक हैं। समाज को सही-गलत का भेद सिखाकर जब लेखक अपना दायित्व पूरा करता है तब ही उसका महत्व समाज में गिना जाता है। लेकिन जब किसी को उसके पेशे से महत्व न देकर उसकी जाति या धर्म से महत्व दिया जाता है तब ऐसी स्थिति में समाज को भारी नुकसान होता है। लेखक निबंध में कहते हैं:- " वैसे चरण छूना अश्लील कृत्य की तरह अकेले में ही किया जाता है। पर वह सज्जन सार्वजनिक रूप से कर बैठे, तो मैंने आसपास खड़े लोगों की तरफ गर्व से देखा- तिलचट्टो, देखो मैं श्रद्धेय हो गया। तुम घिसते रहो कलम... पर तभी उस श्रद्धालु ने मेरा पानी उतार दिया। उसने कहा, "अपना तो नियम है कि गौ, ब्राह्मण, कन्या के चरण जरूर छूते हैं।" यानी उसने मुझे बड़ा लेखक नहीं माना था। बाह्मन माना था।" (पृ 31)[149]

विवेचन - समाज में दो ऐसे पेशे हैं जिनपर समाज को सबसे ज़्यादा जागरूक करने व भावी भविष्य की ओर अग्रसर करने का दारोमदार रहता है। एक शिक्षक और दूसरा लेखक। इन दोनों का काम कीच एक जैसा ही होता है या यूँ कहे कि वह एक-दूसरे से जुड़े हैं। लेखक समाज के लिए कुछ लिखता है और शिक्षक विद्यार्थियों को पढ़ाकर समाज को नई दिशा में ले जाने का प्रेरणास्रोत बनता है। लेकिन जब इन दोनों के ऊपर ही इनके श्रम को महत्व न देकर जाति धर्म का टैग लगाकर सोसाइटी के सामने अभिव्यक्त किया जाता है तब यह समाज हित में नहीं होता। परसाई ने इसे समाज में महसूस स्वयं किया है जिसके लिए वह चिंतित हैं।

भारत देश बीमार, असहाय, दयनीय के प्रति इतना चिंतामग्न और सहानुभूति व्यक्त करने वाला देश है कि पूछो मत। लेकिन यह सहानुभूति कब जगती है, जब उससे कोई काम निकलवाना हो। जब तक वो बीमार पड़ा रहा और उसे किसी की जरूरत रही तो कोई कुत्ता भी मूतने नहीं आया। अब जब वो मरने लगा तब सभी दौड़े आते हैं अपनी-अपनी चिंता की गठरी थामे। तब आप ही कहेंगे ' एक बार कम से कम बता तो दिया होता, तुम्हारे लिए अपनी जान तक

---

149 वही, पृ 31

।

छिड़क देते।' इस बीमारी के मौसम ने भी देश में कई लोगों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। लेखक भी इससे अछूता नहीं रहा। वे कहते हैं :- "जानता हूँ, देश में जो मौसम चल रहा है, उसमें श्रद्धा की टाँग टूट चुकी है तभी मुझे भी यह विकलांग श्रद्धा दी जा रही है। लोग सोचते होंगे- इसकी टाँग टूट गई है। यह असमर्थ हो गया। दयनीय है। आओ, इसे हम श्रद्धा दे दें। हाँ, बीमारी में से श्रद्धा कभी-कभी निकलती है।" (पृ 32)[150]

विवेचन - देश की वर्तमान दशा भी कुछ-कुछ ऐसी ही है। जहाँ दूसरों की मदद में भी अपना स्वार्थ देखा जाता है। चाहे किसी के घर आर्थिक तंगी हो या किसी के घर कोई बीमार। उसकी मदद करने से पहले लोग बदले में मदद लेने की आकांक्षा मन में बैठा चुके होते हैं। और नहीं तो कई लोगों की सहानुभूति भी हमें उसकी औपचारिकता का परिचय दे देती है। परसाई के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ है। इसलिए उन्हें समाज के इस रूप से घिन्न आती है। वह समाज को ऐसे लोगों की बचने के लिए कहते हैं।

परसाई ने जिस श्रध्देय व सहानुभूति पाने वालों को ख़तरे में देखा है उससे वह दूर रहना चाहते हैं साथ ही देश को भी इससे सचेत रहने की सलाह देते हैं। क्योंकि ऐसी श्रद्धा देश हित में नहीं। ऐसी संवेदना, ऐसी सहानुभूति या किसी के प्रति चिंता सचमुच की नहीं होती। उसमें धोख़ा होता है, झूठ होता है। यह देश की छवि को बिगड़ता जरूर है चाहे बनाता न हो। इस श्रद्धा का विरोध करते हुए परसाई ने क्रांतिकारी बनने की सलाह दी है:- " और फिर श्रद्धा का यह कोई दौर है देश में ? जैसा वातावरण है, उसमें किसी को भी श्रद्धा रखने में संकोच होगा। श्रद्धा पुराने अखबार की तरह रद्दी में बिक रही है। विश्वास की फसल को तुषार मार गया। इतिहास में शायद कभी किसी जाति को इस तरह श्रद्धा और विश्वास से हीन नहीं किया गया होगा जिस नेतृत्व पर श्रद्धा थी, उसे नंगा किया जा रहा है। …… आगे परसाई कहते हैं "अपने श्रद्धालुओं से कहना चाहता हूँ-"यह चरण छूने का मौसम नहीं, लात मारने का मौसम है। मारो एक लात और क्रान्तिकारी बन जाओ ।" (पृ 33)[151]

---

[150] विकलांग श्रद्धा का दौर ज़ हरिशंकर परसाई, पृ 32

[151] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 33

।

विवेचन - परसाई में जिस क्रांतिकारिता और ऊर्जा की ख़नक सुनाई पड़ती है प्रस्तुत निबंध के अंत में वह खुलकर सामने आई है। इसी क्रांतिकारिता, भयमुक्त और स्वतंत्र व्यवहार से परसाई की प्रासंगिकता है। परसाई युग में राजनीति का जो रूप था आज भी बहुत-कुछ ऐसा ही है। जिसमें बदलाव की बहुत आवश्यकता है। परसाई अपने निबंधों में दिखावे व झूठ के प्रति काफ़ी कठोर दिखते हैं। इसलिए उन्होंने ऐसी श्रद्धा और ऐसे श्रद्धावानों को लतियाया है। वह बार-बार मौसम की तरह रंग बदलने वालों के खिलाफ हैं। उनका ऐसे वातावरण में दम घुटता है इसलिए वह इसे जड़ से उखाड़ फेंककर नए वातावरण के पक्ष में हैं। उनका यही क्रांतिकारी कदम मुक्तिबोध और कबीर की याद दिलाता है जिससे वह काफी प्रभावित थे।

अतः कहा जा सकता है कि देश की इस विकलांग श्रद्धा पर परसाई ने बड़े कठोर रूप से आघात किया है। और देश को ऐसे लोगों से, ऐसे रिश्तों से तथा ऐसी राजनीति से सचेत रहने का संदेश दिया है। इस प्रकार परसाई की चिंता केवल सामाजिक धार्मिक न होकर राजनीति के मेल में सम्पूर्णता को लिए है। अंततः इस प्रकार शोध विषय का संवेदना पक्ष पूरी तरह विश्लेषित और व्याख्यायित है। जहाँ शोध विषय को मौलिकता व नवीनता प्रदान करने की भरपूर सफलता रही है।

धार्मिक व्यंग्य

धार्मिक व्यंग्य वह होते हैं जिनमें धर्म और उससे जुड़ी मान्यताओं , रुढियों , परम्पराओं , विशेषताओं , प्रथाओं से लेकर कुप्रथाओं तक का विश्लेषण कर व्यंग्य स्थापित किया जाता है। यह व्यंग्य किसी की भावना को ठेस पहुँचाने के मकसद से न लिखकर बल्कि अमूक धर्म के सही-गलत के भेद को विश्लेषित कर जनता तक पहुँचाया जाता है। इस प्रकार के व्यंग्य समाज को धार्मिक जागरूकता के मंतव्य से लिखे जाते हैं। जैसे- 'सत्य साधक मंडल'।

।

विवेच्य निबंध में हरिशंकर परसाई ने किसी भी धर्म के ज्ञान , दर्शन , ईश्वर , मूल्य , सत्य आदि विषयों की झूठी और छली क्रिया पर प्रहार किया है। निबंध में , धर्म के ठेकेदारों और कथावाचकों ने किस तरह पाखंड के नाम पर अपनी दुकान चला रखी है , समाज की इसी विसंरचना पर व्यंग्य कसा है। मानव समाज की बुनावट ऐसी है कि जो व्यक्ति ज्ञान और सत्य जैसे विषयों पर नैतिकता और आदर्श झाड़ रहा होता है पता चलता है , कि वो खुद ही झूठा और अज्ञानी है। मक्कारी वृत्ति उसके व्यक्तित्व का हिस्सा बनी हुई है। उसे खुद ज्ञान का अता-पता नहीं लेकिन दूसरों को सिखाने में वह बिल्कुल पीछे नहीं रहता। कई बार यह क्रिया मंडली द्वारा होती है जो समाज में सत्य का प्रमाण पत्र बाँटती है। उनका उद्देश्य सत्य की खोज कर समाज को उससे परिचित कराना रहता है जिसके लिए वह तमाम तरह के टीमटाम तैयार करती है। वह ऐसी चकाचौंध का पुख्ता बंदोबस्त करते हैं कि दर्शक या श्रोता उसकी तरफ खिंचा चला आता है। लेकिन यह किस प्रकार का सत्य होता है इसी की पड़ताल निबंध में की गई है।

परसाई ने उक्त निबंध में केवल 'सत्य की खोज' की तरफ ही इशारा नहीं किया उसके अतिरिक्त भी बहुत-सी बातें हैं निबंध में छू ली गयी हैं। चाहे वह धर्म के प्रचार का मसला हो या प्रसाद के रूप में दिए जा रहे प्रलोभन का। चाहे वह 'अहम' को त्यागने की बात हो या फिर उसके द्वारा अपना प्रभुत्व जमाने की अथवा खाली बैठे लोगों का धर्म की तरह झुकना इत्यादि। समाज में जब भी कोई कथावाचक या बाबा , कोई साधु-महात्मा सत्य पर अपना ज्ञान झाड़ने आता है तो वह अपना प्रभाव जमाना चाहता है। और सिर्फ़ अपना प्रभाव जमाने पर ही नहीं रुकता बल्कि उसका प्रचार भी बखूबी करना जानता है। इस प्रचार पर राजनीतिक दल गिद्ध की तरह नज़र गड़ाए रखते हैं जिससे कि उन्हें राजनीतिक लाभ मिल सके , इस ओर भी परसाई ने इशारा किया है। परसाई ने कहा है- "प्रचार हो जाता तो हमारे सत्य को कोई पार्टी झपट लेती।" (पृ 59) [152]

विवेचन - परसाई ने इस वाक्य का प्रयोग जिस राजनैतिक स्वार्थ के संदर्भ में किया है वह आज भी कायम है। आज भी कई राजनैतिक दल अपनी वोट बैंक की नीति के लिए इस तरह के प्रचार के लिए दर-बदर भटकते रहते हैं। कहीं से उन्हें किसी भी तरह का प्रचार मिल जाए बस उनका काम हो गया। इस तरह यह वाक्य आज भी प्रासंगिक है।

[152] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 59

।

भारतीय समाज ऐसा हो गया है कि किसी भी सत्य को मानने के लिए उसे प्रचार की आवश्यकता पड़ती है। जब तक यह प्रचार मास में फैल नहीं जाता तब तक उसे मानने को ही तैयार नहीं। चाहे वह बात कितनी ही सत्य क्यों न हो या कितनी ही झूठ। अब भारतीय समाज में किसी बात की पुष्टि प्रचाराधारित ही है। चाहे वह टीवी से मिल जाये , पोस्टर से मिल जाए या बड़े-बड़े होर्डिंग बोर्ड से। परन्तु प्रचार होना चाहिए , वो भी एकदम खरा। इसलिए परसाई ने एक जगह लिखा भी है "सत्य को भी प्रचार की आवश्यकता होती है अन्यथा वह झूठ मान लिया जाता है।" इस कथन के आलोक में परसाई ने समाज के उस वर्ग पर व्यंग्य कसा है जो सत्य की खोज में किसी भी तरह की मेहनत नहीं करना चाहता। यदि किसी बात की पुष्टि करनी है तो हमें विभिन्न पुस्तकों, पुस्तकालयों में अध्ययन करना चाहिए। बड़े-छोटे अभिलेखागारों , पर्यटन स्थलों का भ्रमण करना चाहिए। अनुभवी व बुजुर्ग व्यक्ति से बातचीत की जानी चाहिए। लेकिन समाज में उल्टा ही खेल चलता है। सोसाइटी किसी भी प्रकार के सत्य की खोज में या किसी जानकारी की पुष्टि के लिए भी जोखिम नहीं उठाना चाहती। इस पर लोग कहते हैं 'हमें किसी भी तरह की भागदौड़ नहीं करनी , आराम फरमाना है। अगर कोई जानकारी की जरुरत है तो वो खुद-ब-खुद हमारे पैरों में गिरकर बोलने आ जाये। हम उसके बाप के नौकर नहीं जो उसे ढूँढने ऐ.सी से बाहर निकलेंगे।' ऐसा ही उल्लेख परसाई करते हैं- "सत्य पास ही मिलता है तो मैं उसे ग्रहण कर लेता हूँ। दूर नहीं जाता सत्य के लिए। उसमें रिक्शा-किराया लग जाता है।" (पृ 60) [153]

विवेचन - सत्य यदि पास मिले तो उसे ग्रहण करने में सुविधा होती है दुविधा नहीं और न ही किसी प्रकार का आलस आता है। परसाई ने इस कथन के माध्यम से भक्तों के ऐसे वर्ग पर व्यंग्य किया है जो सत्य , धर्म , ज्ञान आदि विषय को मनोरंजन और टाइम पास की नज़र से देखते हैं। उसमें भी बाबत नजदीक जाने की हिम्मत जुटा पाते हैं। दूर चलना उनके लिए दूभर हो जाता है। लेकिन नहीं ! उन्हें धर्म और ज्ञान की बातों से कोई मतलब नहीं। उनके पल्ले ही नहीं पड़ेगी। फिर वैसे भी भारत में मुफ्त में मिलने वाली कीमती वस्तुओं या बातों की कोई जगह नहीं।

[153] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 60

।

परसाई ने इस निबंध में एक अन्य दिशा भी दिखाई है। आमतौर पर कथावाचक और सत्संग इत्यादि में वही लोह जाते हैं जिन्हें उसमें रुचि होती है और जो अन्य लोगों की तुलना में अत्यधिक आस्थावान होते हैं परन्तु इसी समाज में कुछ असामाजिक तत्व भी हैं। ऐसे ही असामाजिक तत्वों का चित्रांकन परसाई ने किया है उन्होंने बिना मतलब के या बग़ैर रुचि के सत्संग सुनने वाले दल को भी अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है। जिनमें कुछ रिटायर्ड लोग हैं तो कुछ महिलाओं को ताड़ने वाले। इनका भी अपना एक दल है ।

इस प्रकार के एक दल का वर्णन प्रस्तुत निबंध में भी हुआ है। यह ऐसे बदमाश और छिछोरे होते हैं जो महिलाओं से हँसी ठिठोली करने लिए आते हैं। ऐसे सत्पुरुषों के भीतर की सत्यता और पवित्रता कहीं भटक जाती है। उन महिलाओं के आते ही वह भूल कर बैठते हैं कि जिसकी साधना करने यहाँ आये थे अब उसकी जगह वो उस महिला की साधना में जुट गए हैं। वह अपने अंदर के छिपे सत्य को जगाने के लिए वो पूरी तल्लीनता और पूरी ईमानदारी के साथ उस महिला से जुड़ने की कोशिश करते हैं। लेकिन जैसे ही उस महिला का आना बंद हो जाता है उनके भीतर के सत्य की खोज-खबर भी पूरी हो जाती है या तो उन्हें सत्य ढूँढने में कोई इंट्रस्ट नहीं आता। उनका सत्य भी उसी महिला के पीछे-पीछे सिर नीचे किए चल देता है। बेचारे रह जाते हैं मुँह बाये। इसलिए परसाई ने कहा है - "कॉलेज की एक युवा सुंदरी अध्यापिका मिस सक्सेना आती थीं। पर उनका तबादला हो गया और वे अपने सामान के साथ हमारे चार साधकों के सत्य भी बाँधकर ले गईं। चारों ने आना छोड़ दिया। " (पृ 60) [154]

विवेचन - प्रस्तुत वाक्य के माध्यम से परसाई ने समाज के उस वर्ग पर व्यंग्य कसा है जो समाज में महिलाओं के प्रति असंवेदनशील के साथ-साथ धर्म , ईश्वर , सत्य जैसे गम्भीर विषय पर भी अगम्भीर व्यवहार रखते हैं। उन्हें हमेशा मस्ती और चुहलबाजी सूझी रहती है। इनके अंदर की सत्ययता किसी ईश्वर या गुरु के प्रति न होकर उन महिलाओं के लिए रहती है जिनसे उन्हें किसी प्रकार का आनंद मिल सके। ऐसे पुरुष परसाई के व्यंग्य का शिकार होते हैं

[154] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 60

।

परसाई ने समाज का बड़ी ध्यान से अवलोकन किया है। उन्होंने देखा है कि समाज किस प्रकार सामने वाले को लालच में फँसा सकता है। इस समाज की सबसे बड़ी त्रासदी उसके मोह व लालच में बंधने से जुड़ी है। जब तक वह इस लालच में फँसा रहता है प्रतिक्रिया नहीं देता अन्यथा उसको मिलने वाला लालच समाप्त हो सकता है। निबंध में दिखाया है कि इस सत्य-साधक-मंडली के प्रतिनिधि 'चोपड़ा साहब' के पास ऐसी वस्तु है कि कोई उनका विरोध करता ही नहीं। बस उनकी बकवास सुनते रहते हैं बाकी लोग। यह वह वस्तु मंडली में मिलने वाला 'प्रसाद' है। इसी 'प्रसाद के प्रलोभन' पर परसाई ने कहा है- "प्रसाद वितरण और प्रवचन एक-दूसरे से इस कदर जुड़े थे कि दोनों के बीच मे विसर्जन की गुंजाइश नहीं थी।" (पृ 61) [155]

विवेचन - प्रस्तुत वाक्य समाज की लालची प्रवृत्ति का उदाहरण है। इस वाक्य के आधार पर परसाई ने सिद्ध करने की कोशिश की है कि सत्संग में अधिकांश लोग प्रसाद के प्रलोभन से ही में जाते हैं। और यह प्रलोभन ऐसा है कि कुछ प्रसाद के चक्कर में रात भर वहीं पड़े रहते हैं तो कुछ इतने चालाक होते हैं कि प्रसाद वितरण के समय ही स्थान पर मिलते हैं। कोई भोर में आँख मलता हुआ आता है तो कोई कड़ी धूप में प्रसाद के लिए भागा जा रहा है। कोई शाम के बाजार को उसी समय निकलता है जब शनि मंदिर या बजरंग बली के मंदिर पर प्रसाद बटने का टाइम फिक्स है। सब्जी लेने के अलावा लगे हाथ दो लड्डू भी हाथ लग जाएँ तो मजा आ जाए। समाज का यही लालच उक्त वाक्य का भाव है।

जिस प्रसाद वितरण व प्रसाद प्रलोभन की चर्चा परसाई ने ऊपर की है उसमें एक बात यह भी देखी गई है कि इस बहाने कई कथावाचक जनता को अपनी ओर खींचना चाहते हैं। इसमें कुछेक तो निश्छल भाव से कथावाचन करते हैं लेकिन ज्यादातर अपना एजेंडा सेट करना चाहते हैं। इनके एजेंडों के पीछे सरकार के मंतव्य स्पष्ट होते हैं। सरकार जानती है कि भारत की भोली भाली जनता पर धर्म और ईश्वर का क्या प्रभाव है इसलिए वो ऐसे मंचो से कभी कथावाचक का गुणगान करती है तो कभी कथावाचक सरकार के एजेंडों को घुमा-फिराकर जनता के दिमाग में भरना चाहते हैं। और

155 विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 61

।

यह किसी एक पार्टी के साथ नहीं। यह प्रत्येक रूलिंग पार्टी , विपक्षी पार्टी के साथ है। सबके अपने-अपने बाबा, साधु-महात्मा, आचार्य, कथावाचक तय हैं। तो जो प्रसाद देगा वह प्रवचन तो करेगा ही। जैसे सरकार मुफ्त के बदले जनता से वसूल करने का निर्णय कर चुकी होती है। मिश्रजी के माध्यम से परसाई कहते- 'मिश्रजी कहते, "चोपड़ा साहब अच्छे आदमी हैं। पर परेशान करते हैं। आधा पौन घंटा वही वही प्रवचन हर बार करते हैं।" शुक्लजी ने कहा, "हाँ भई, बैठना मुश्किल हो जाता है। ….. मिश्रजी ने कहा, "वे प्रसाद लाते हैं।…..जो प्रसाद लाएगा, वह प्रवचन करेगा ही। और आपको सुनना होगा क्योंकि आप प्रसाद खाते हैं।" (पृ 62) [156]

विवेचन- इस वाक्य से समझा जा सकता है कि समाज ऐसी लीक पर चल रहा है जहाँ आपका किसी के काम से कोई लाभ सध रहा है तब आप उसके खिलाफ नहीं जा सकते हैं। यदि वह काम आपको पसंद भी न हो फिर भी आपको उनकी बातें माननी होंगी क्योंकि आपने उनका नमक खाया है। चाहे आपका कितना ही प्रिय , सगा-सम्बन्धी ही क्यों न हो उसके एहसान तले आप दबे हैं , आप उसे पार नहीं कर सकते। ऐसा करने से आपका कद उसकी नज़रों में गिर जाएगा और आप अमूल्य हो जाएँगे।

इस तरह प्रसाद देना और प्रवचन देना कई बार सीधे अर्थ में नहीं होता। प्रवचन देने वाला अपनी विचारधारा को आप पर थोपना चाहता है। आपका माइंड वॉश करना चाहता है। दूसरे अर्थ में कहें तो अपनी जादुई रौशनी में आपको अंधा करना चाहता है। जिससे कि आप उसकी बनाई स्टिक का प्रयोग करें और उसके बताए रास्ते पर चलने लगे। परसाई ने अपनी एक कहानी में ऐसा ही कहा है - " मैंने उसे बताया कि जो बातें मैं कहता हूँ ; वही तू कह रहा था। मैं सीधे ढंग से कहता हूँ , तू उन्हीं बातों को रहस्यमय ढंग से कहता है। अँधेरे का डर दिखाकर लोगों को टॉर्च मैं भी बेचता हूँ। तू भी अभी लोगों को अँधेरे का डर दिखा रहा था, तू भी जरूर टॉर्च बेचता है ।….उसने सहज ढंग से कहा - "तेरी बात ठीक ही है। मेरी कंपनी नयी नहीं है , सनातन है। " मैंने पूछा - "कहाँ है तेरी दुकान? नमूने के लिए एकाध टॉर्च तो दिखा। ' ……तीसरे दिन ' सूरज छाप ' टॉर्च की पेटी को नदी में फेंककर नया काम शुरू कर दिया । " वह अपनी दाढी पर हाथ

---

[156] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 62

।

फेरने लगा। बोला - "बस, एक महीने की देर और है। "मैंने पूछा -' तो अब कौन-सा धंधा करोगे? " उसने कहा - "धंधा वही करूँगा, यानी टॉर्च बेचूँगा। बस कंपनी बदल रहा हूँ। " [157]

यही काम आजकल साधु-संत , कथावाचक कर रहे हैं। धर्म और ईश्वर का झूठा डर दिखाकर एक-दूसरे को लड़वा रहे हैं , अपनी दुकान का टॉर्च बेच रहे हैं। भारत जैसे विशालकाय बहू-संस्कृतिवादी और अनेक आस्थाओं की मान्यता वाले देश को अब क्या ये चंद टुच्चे महात्मा बचाएँगे ? जहाँ इतनी जाति-बिरादरी , धर्म , पंथ आदि को मानने वाले करोड़ो लोग हैं। जहाँ लोगों के बीच इतना माधुर्य भाव है कि सभी धर्मों के उत्सव साथ मिलकर मनाते हैं। जहाँ की मजबूती ही उसकी अखंडता में है उसे बचाने के लिए क्या अब इन गधों का सहारा लेना होगा ? हमें इससे बचने की जरूरत है और समझने की जरूरत है कि सामने वाला कहीं अपनी कम्पनी का टॉर्च तो नहीं बेच रहा। अन्यथा यह देश और गहरे गर्त में जा गिरेगा। तब कहीं सम्भलने में हमें बहुत देर न हो चुकी हो और पछताने के सिवा कुछ नहीं कर सकें। अतः यह निबंध धर्म के पाखंडरूपी चरित्र का उद्घाटन करने के साथ सन्देश शैली की दृष्टि से भी विश्लेषित किया जा सकता है।

प्रशासनिक व्यंग्य

प्रशासनिक निबंध किसी सरकारी-ग़ैर सरकारी कार्यालय , उनके कर्मचारियों से लेकर उनके अफसरों तक जहाँ भ्रष्टाचार , घूसखोरी , लापरवाही इत्यादि की झलक दिखती है वहाँ इस तरह के व्यंग्य लिखें जाते हैं। इन निबंधों के माध्यम से लेखक इन संस्थाओं की पोल खोलकर जनता के आगे रख देता है। और इनके काम करने के झूठे अंदाज़ की धज्जियाँ उड़ा देता है। यहाँ पर परसाई का मुख्य निबंध ' यस सर' और ' सर्वे और सुंदरी' को देखा जा सकता है जिसमें सरकारी कर्मचारियों की, अफसरों की सारी लापरवाही का यथार्थ चित्रण परसाई ने खुलकर किया है।

---

[157] WWW.HINDIKAHANI.COM-HARISHANKARPARSAI

।

'यस सर' निबंध सरकारी तंत्र की लापरवाही , उसकी कमजोरी , उसकी आलस्य वृति और न जाने क्या-क्या और किस-किस तरह की जड़े खोद कर रख देता है। इसमें दूसरों पर काम थोपने से लेकर कामचोरी तक साथ ही घूसखोरी तक और न जाने क्या-क्या भरा पड़ा है। एक सरकारी काम कराने के लिए जनता को किस हदतक एड़ी-चोटी का पसीना चुआना पड़ता है यह हम-तुम अच्छे से जानते हैं। कितनी दौड़-धूप और कितनी ही बार एक काउन्टर से दूसरे काउंटर पर ये अधिकारी लोगों को भगाते हैं अथवा अपने पद का गलत फायदा उठाते हैं यह हमसे छिपा नहीं। किस तरह सरकारी मुलाज़िम कामचोरी करते हैं और जनता को परेशान करते हैं यह हम रोज़ देखते हैं। और यदि गलती से कोई आवाज़ भी उठाए तो उसी को टारगेट करते हैं। उसका काम डीले कर देंगे। सारा बदला उससे निकालेंगे। 'अब फँस गया वो बेचारा। एक तो सभी के लिए अकेले ही लड़ा , अकेले ही बोला अब वो खुद ही फँस गया क्योंकि बाकी लोग चुप होकर तमाशा देखने लगे गए।'

प्रस्तुत निबंध में एक शब्द बार -बार इस्तेमाल हुआ है ' यस सर'। यही इस निबंध का आधार है जिसके इर्दगिर्द सारी घटना चलती है। घटना में मुख्य पात्र एक लेखक है जिसे एक मकान अलॉट होना है लेकिन वो केवल 'यस सर' के बीच में झूलता रहता है और कभी उसकी फाइल अंत तक पहुँचती ही नहीं। केवल एक अफसर से दूसरे अफसर तक 'यस सर' करती घूमती रहती है। मुख्यमंत्री से यह 'यस सर' शुरू होता है और अंततः मुख्यमंत्री पर ही खत्म होता है। मुख्यमंत्री चीफ सेक्रेटरी को कहता है, चीफ सेक्रेटरी कमिश्नर को और कमिश्नर से होते हुए कलेक्टर फिर रेंट कंट्रोलर तक। बस यही 'यस सर' चलता रहता है।

लेखक कहता है :- "सब बाजाब्ता हुआ। पूरा प्रशासन मकान देने के काम में लग गया। साल-डेढ़ साल बाद फिर मुख्यमंत्री से लेखक की भेंट हो गई। मुख्यमंत्री को याद आया कि इनका कोई काम होना था। उन्होंने पूछा- कहिए, अब तो अच्छा मकान मिल गया होगा? लेखक ने कहा- नहीं मिला। मुख्यमंत्री ने कहा- अरे, मैंने तो दूसरे ही दिन कह दिया था। लेखक ने कहा—जी हाँ, ऊपर से नीचे तक 'यस सर' हो गया। " (पृ 99)[158]

[158] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 99

।

विवेचन - सरकारी तंत्र की यही कामचोरी , ढीलापन और उसमें छुपी घूसखोरी की प्रतिध्वनि परसाई के प्रतिनिधि निबंध ' भोलाराम का जीव' और कृष्ण चन्दर के ' जामुन के पेड़' में भी दिखाई देती है। दोनों ही निबंध सरकारी तंत्र की ढिलाई का उम्दा उदाहरण है। ऐसे काम तुरन्त हो जाते हैं वजन रखते ही। एक बार आप सरकारी काम आसानी से या जल्दी कराने के लिए वज़न रख दीजिए तब देखिये 'यस सर' की जगह उन अधिकारियों के मुँह से 'थैंक्स सर' निकलेगा। अतः इसी अनैतिक 'थैंक्स सर' के विरुद्ध परसाई ने 'यस सर' लिखकर अपनी तेज़ बुद्धि और कलम की शक्ति से सारे प्रशासनिक तंत्र की खोखली कमर तोड़ कर रख दी है।

'सर्वे और सुंदरी' ,निबंध में भी प्रशासन की लापरवाही और उसकी अगम्भीरता का जीवंत उदाहरण दिया है। इसमें ऐसे आला अधिकारियों की ग़ैर-जिम्मेदारी की वजह से कई मर्तबा बहुत से रहस्य दुश्मनों के हाथों लग जाते हैं। ऐसा ही इस निबंध में हुआ है। पाकिस्तान से आई दो सुंदरियों के लालच में पड़कर अधिकारी इलाके के नक्शे उन्हें दे देता है जिससे आने वाले संकटकालीन समय में वह इसका दुरुपयोग कर सकते हैं।

लड़की के चक्कर में न जाने कितने ही लुट गए, तबाह हो गए। खुद तो हुए ही दूसरों को भी ले डूबे। इस बार भारत देश की बारी थी। लेखक ने लिखा है :- "साहब ने कहा , "इस इलाके के नक्शे हैं। लड़ाई के वक्त काम आते हैं।" सुन्दरियों ने नक्शे उठा लिये। कहा, "साहब , ये नक्शे हम ले लें ?" साहब ने कहा, "नक्शे ? मैं तो सोचता था, आप मेरी जान माँगेंगी। ...... सुन्दरी ने कहा, "मगर हिन्द-पाक लड़ाई के वक्त ये नक्शे पाकिस्तान के काम आए तो ?"

साहब ने कहा, "वह लड़ाई होगी ही नहीं। जो पाकिस्तान हमारे पास हूरें भेजता है, वह लड़ाई भला क्यों करेगा? और नक्शों का क्या! दूसरे बनवा लेंगे।" (पृ 109)[159]

---

159 विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 109

।

विवेचन - इस तरह से हम देख सकते हैं कि देश की बड़ी-बड़ी एजेंसियाँ जिनका काम देश की सुरक्षा का है , खुफिया एजेंटों द्वारा दुश्मनों पर नजर लगाए रखना है अब वो ही देश को बेचने में लगे हैं। इसे ही असल में देशद्रोह कहते हैं। और इस तरह से देश की आंतरिक सुरक्षा खतरे में आती है।

सांस्कृतिक व्यंग्य

परवरिश , वातावरण , संस्कार व व्यवहार इत्यादि के अनुचित रूप पर किए गए व्यंग्य सांस्कृतिक व्यंग्य कहलाते हैं। जिनमें इस बात का संदेश होता है कि हमारी संस्कृति और हमारे संस्कारों ने हमें जो भी शिक्षा दी है उस पर हम कितने खरे उतरे हैं। क्या हमारे भीतर आज भी वही सब मौजूद है जो बालपन से हम सीखते आए थे ? क्या आज भी हमारे व्यवहार से वही सबकुछ झलकता है जिसे हमारे परिवार ने और शिक्षकों ने सिखाया था ? हमारे व्यक्तित्व पर जब इस तरह के प्रश्नचिन्ह खड़े हो जाते हैं तब व्यंग्यकार को सांस्कृतिक व्यंग्य लिखने की आवश्यकता पड़ती है। इस दृष्टि से परसाई का ' खून' निबंध के इस श्रेणी का उत्तम निबंध है।

यह निबंध संस्कृति अर्थात हमारी जीवनशैली , हमारे संस्कार व परिवेश के आलोक में वर्तमान समाज के भीतर से खत्म होती हुई मानवता , टूटते मूल्य और रिश्तों की कमज़ोर होती डोर को दिखाने में सफल हुआ है। निबंध में परसाई ने सांस्कृतिक मूल्य के उस रूप की क्षति को उजागर किया है जो हजारों सालों से भारत देश ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। हमें बचपन से ही अपने घर परिवार के सदस्यों का सम्मान करना सिखाया जाता है। कभी गली-मोहल्ले में बुजुर्ग लोगों का किसी तरह का काम कर देते हैं तो कभी छोटे बच्चों के साथ खेल-कूद कर उनकी खुशियों में वृद्धि करते हैं। कभी घर में किसी रिश्तेदार के पाँव छूने से लेकर उनका आतिथ्य करने तक तो कभी शादी-ब्याह में परिवारजनों का हाथ बटाना हमारी संस्कृति का ही परिचय होता है। देते हैं। इससे हमारे संस्कार तो झलकते ही है साथ ही उस प्रदेश या देश की संस्कृति का भी पता चलता है जहाँ हमने इन्हें ग्रहण किया है और उनका चलन है। जैसे बिहार आदि जगहों

।

पर नीचे पात में बैठकर खाना खिलाने के रिवाज़ है तो कहीं दक्षिण भारत में केले के पत्तों पर भोजन खिलाने का चलन है। पंजाब प्रांत अपनी ढाबा संस्कृति के लिए जाना जाता है तो दिल्ली जैसे महानगर अपनी फास्ट फूड आइटम के लिए सुविधारूपी है। ऐसी ही भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का मेल इस देश में है। कहीं विवाह के समय नाक से लेकर माँग तक सिंदूर भरने का रिवाज है तो कहीं वधु को गोद में लेन से लेकर पान के पत्ते से उसका मुँह ढाँक कर लाया जाता है। इस तरह से ही किसी संस्कृति का निर्माण होता है और उसे विकास मिलता है। वह आगे बढ़ती है।

जब इतनी अच्छी संस्कृति से लैस अपना जीवन जीते हैं और उससे अपने समाज का भला करते हैं तब कहीं कुछ ऐसे असामाजिक तत्व रह जाते हैं जो इस संस्कृति में धब्बा लगाने का काम करते रहते हैं। कभी किसी किसी के रंग-रूप पर कमेंट पास करके तो कभी किसी के कपड़े-लत्तो पर। हमें इससे बचना चाहिए। लेकिन समाज आज ऐसा होता जा रहा है जिसमें से मानवीय मूल्यों को नष्ट होते देखा जा रहा है।

हमारी मीडिया और सरकार ने आज हमें इस हाल में खड़ा कर दिया है कि अब हम बोलेंगे और आप कपड़ो से पहचान करोगे। इतनी हल्की बात वही कर सकता है जिसके दिमाग में हर वक्त हिन्दू-मुस्लिम चल रहा होता है। इस देश में सैकड़ों संस्कृतियाँ रहती हैं। इस देश में हिन्दू-मुस्लिम का रिश्ता कपड़े का रिश्ता नहीं , खून का रिश्ता है। आप किस-किस को कपड़े से पहचानेंगे ? हमारे समाज में सिखाया जाता है कि शादी-विवाह में किसी रिश्तेदार का कपड़ा महंगा हो सकता है तो किसी का थोड़ा सस्ता हो सकता है। लेकिन हम उससे दूर नहीं होते क्योंकि उससे खून का रिश्ता होता है। वो तो भला हो झारखंड के आदिवासियों का जो कपड़ों से नहीं पहचानते। जिन्हें अपने देश का भूगोल तक नहीं पता फिर भी वो इस देश से प्यार करते हैं। क्योंकि यह खून का रिश्ता है।

समाज में ऐसी ही बढ़ती नफरती संस्कृति के विरुद्ध परसाई जैसे बुद्धिजीवियों का ध्यान गया है और इसके खिलाफ बड़े ठोस रूप से उन्होंने सर्वधर्म सम्मान जैसे भाव को खड़ा करने की कोशिश की। इस दृष्टि से निबंध के निम्न प्रसंगों को देखा जा सकता है।

।

जिन सांस्कृतिक मूल्यों की बात की जा रही है उसे बनाये रखने में सबसे बड़ी भूमिका हमारे माता-पिता की रहती है। वह हमें बचपन से सिखाते रहते हैं। किस तरह हमें अपने दादा-दादी , नाना-नानी का आदर करना चाहिए , उनके पास बैठकर अच्छी बातें सीखनी चाहिए। किस तरह अपने कज़न्स के साथ मिल-जुलकर खेलना चाहिए , यह सारी अच्छी बातें हमें अपने परिवेश से ही प्राप्त होती है। आज के बढ़ते व्यावसायिक , आर्थिक आधारित समाज में रिश्तों की डोर कमजोर होती जा रही है। जहाँ केवल पैसे पर ही रिश्ते-नाते कायम है। ऐसे समाज में 'खून के रिश्ते' के लिए भी लोगों के पास समय नहीं। यहाँ तक कि जिस औरत ने हमें-आपको जन्म दिया , पाल-पोस कर बड़ा किया उसके प्रति भी समाज का ऐसा रवैया चिंता का विषय है।

हम उन माँओं की चिंता नहीं करते जिनकी वजह से आज यहाँ तक पहुँचे हैं , उन्हें छोड़ देते हैं। अब कितनी ही माएँ ऐसे ही हालत में भटक रही हैं। उनके द्वारा दिये गए वात्सल्य के बदले जो स्नेह और सम्मान मिलना चाहिए था उसके बदले उनका आँचल रिक्त पड़ा हुआ है। आज उनके आँचल में उनके बच्चों के प्रेम की मृदुल पुष्पों की जगह तानों और धिक्कार , यहाँ तक की लात मारकर बाहर धक्का दे देने की जहरीली जड़ो ने ले ली है। अखबार की सुर्खियों में ऐसी कई माएँ हैं जो वृद्धाश्रम में अपने अंतिम दिन काट रही हैं।

चलो वो माएँ तो खुशनसीब हैं जिनके बच्चे उन्हें आश्रम में पटक आ रहे हैं लेकिन उन माँओं की हालत भी तो समझो जो घर-परिवार से छोड दी गई और तब से राह में भटक रही हैं। कोई सड़क पर भीख माँग रही है तो कोई कुछ सामान बेच रही है। कोई ऑटो चला कर अपना गुजर कर रही है तो कोई ट्रैफिक सिग्नल पर पेन बेच कर अपने कर्मों का मीठा फल खा रही है। कितनी ही बुजुर्ग माएँ रेलगाड़ियों में पोछा लगाती हुई दिख जायेंगी। यदि इतनी ही तल्लीनता से वो अपने घर में पोछा लगाती तो क्या उसका बेटा उसे घर से बाहर निकालता ? बेचारे को नौकरानी रखनी पड़ी। अगर उसकी माँ कुछ ठीक-ठाक रेट लगा लेती तो उसकी नौकरी उसी घर में पक्की हो जाती जिसकी वो अभी तक मालकिन या गार्जियन थी। लेकिन उसकी किस्मत में पदोन्नति लिखी थी। जिसे घर की चार दिवारी से बाहर खुले गगन में भीख माँगने और घर से कई गुनी बड़ी संपत्ति रेलगाड़ी में पोछा लगाने का सुनहरा अवसर मिला।

।

इस निबंध में भी ऐसे ही दो बेटों का उदाहरण है जो अपनी माँ के प्रति सेवाभावना या कर्तव्य से दूर होते दिख रहे हैं। दोनों बेटों का व्यवहार अपनी माँ के प्रति सम्वेदनहीन होने के साफ संकेत देता है।

उक्त निबंध एक गाँव में दो बेटों द्वारा अपनी माँ के ईलाज कराने के लिए अस्पताल में लाने से शुरू होती है। जहाँ डॉक्टर द्वारा जाँच करने पर पता चलता है कि बुढ़िया को खून की जरूरत है और उनके बेटों को खून देना पड़ेगा। जिस पर परसाई बुढ़िया का व्यवहार व्यंग्य मुद्रा में दिखाते हैं। बुढ़िया कर्री आवाज में डॉक्टर से बोली, ‘‘ए डॉक्टर साहब, मेरे लड़के खून नहीं देंगे।" डॉक्टर ने कहा, "मगर बिना खून दिए ऑपरेशन नहीं हो सकता, मांजी।" बुढ़िया ने कहा, "तो मत होने दे ऑपरेशन।.... जितना चाहिए मेरा खून ले ले।"....। बुढ़िया ने कहा, "अरे डॉक्टर तुम तो पढ़े-लिखे हो लड़कों का खून काम करने के लिए है कि मरती हुई बुढ़िया के बदन में डालने के लिए.... ?" ..... लड़के ने कहा, "सर, बुढ़िया ठीक कहती है कि जिनके पास खून है पर जो काम नहीं करते, उनसे खून लेना चाहिए। काम करनेवाले का खून नहीं लेना चाहिए, सर, आप ऑपरेशन का दिन फिक्स कर दीजिए। खून का इन्तजाम हम कर देंगे।" (पृ 136) [160]

विवेचन - प्रस्तुत वाक्य से जिस संवेदनहीनता और व्यंग्य की तरफ़ परसाई इशारा करना चाहते थे कथा के अंत में यह बात सिद्ध हो गई। लड़के ने खून देने से मना कर दिया और अपने कर्तव्य का पालन किया। भले ही इससे पहले तक इनकी माँ ने अपना खून का एक-एक कतरा देकर इन्हें पाला-पोसा। तब वह अपने खून से जुड़े बेटे से खून कैसे ले सकती थी ? ऐसा करके तो वो अपने बेटे का खून कर रही थी। आज भी समाज में ऐसी असंवेदनशीलता व अमानवीयता बरकरार है। जहाँ अपने संस्कारों और कर्तव्यों को भूलकर समाज आज अति-व्यस्त जीवन जीने का ढोंग रच रहा है।

अंततः परसाई के निबंधों में प्रस्तुत संवेदनाओं का उक्त विश्लेषण नवीन रूप में अभिव्यक्त है। यह परसाई के भीतर छुपे अनछुए चरित्र की परिभाषा है जिसे उनके निबंधों के माध्यम से ही देखा जा सकता है। यह परसाई साहित्य की बड़ी उपलब्धि भी है। यह उनकी विविध विषयों पर समझ को विस्तार देता है। साथ में हमें यह भी पता चलता है कि

---

[160] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 136

।

परसाई कितनी मेधा शक्ति के व्यक्तित्व थे। उन्होंने समाज के किसी भी स्वरूप को छेड़ा और छोड़ा नहीं। सभी पर प्रचुर मात्रा में मार की। उनमें माँग के अनुसार बदलाव की कोशिश की और सचेत करने की हिदायत भी दी। परसाई के उपरोक्त सभी निबंध छोटे-से-छोटे विषय में भी व्यंग्य पैदा करने में सफल हुए हैं। उनका प्रत्येक निबंध इस सोसाइटी की कमी को दिखाता है, उसमें छुपी विसंगतियाँ भी पाठकों के मस्तिष्क में फिट करने की चेष्टा करता है। उन्होंने अपने प्रत्येक निबंध में उक्त संवेदना के स्तर पर समस्या को यथार्थ रूप में दिखाने की कोशिश भी की है और तो और उन समस्या का हल भी उसी में निहित किया गया है। अतः परसाई के निबंध हमें समकालीन युग को समझने में सबसे कारगर सिद्ध दिखते हैं। इस दृष्टि से परसाई हिंदी साहित्य के महानतम लेखकों में शुमार होते हैं।

भाषिक विश्लेषण

प्रत्येक रचनाकार अपने समय का प्रतिबिंब होता है दर्पण होता है। जिसमें तत्कालीन युग की समस्त अच्छाइयाँ-बुराइयाँ दिखाई देती है। यह सभी समाज के भीतर किसी न किसी रूप में शामिल रहती है जिसे लेखकगण अपने-अपने अनुसार और अपनी रुचि के अनुसार विषयवस्तु तय करके अभिव्यक्ति देते हैं। इन सभी रचनाओं को जो सबसे ज़्यादा जीवित करता है वह उसकी भाषा होती है। यदि रचनाकार की भाषा ही नीरस है तब वह किसी भी सूरत में पाठकों में अपना स्थान बना नहीं सकती। चाहे उसका विषयवस्तु कितना ही प्रासंगिक और रुचिकर क्यों न हो।

किसी भी रचनाकार की पहचान ही उसकी भाषा से है। इस अर्थ में परसाई साहित्य अपनी सरल-सहज व ग़ैर-तत्समयुक्त भाषा में अलग महत्व रखती है। चूँकि उनका रचनाकर्म व्यंग्य विधा पर है तो इस दृष्टि से भी परसाई ने अपनी रचनाओं को पाठकों तक पहुँचाने के लिए ज़्यादा सजी-धजी भाषा को छोड़कर बिना अलंकारिक भाषा का चयन किया है। उनकी भाषा में तत्सम-तद्भव , विदेशी शब्दों का बोलबाला तो है ही परंतु सबसे ज़्यादा हास्य-व्यंग्य के शब्द मिलेंगे। इस प्रकार के शब्द परसाई के लेखन की विसंगतियों को जान देते हैं। इससे उन विसंगतियों में व्याप्त भाव और

।

भी खुलकर सामने आता है। और वैसे भी व्यंग्य की भाषा पकाऊ और ऊब की दृष्टि से नहीं विसंगतियों की दृष्टि से बनानी चाहिए। इस दृष्टि से परसाई भाषा का विश्लेषण किया जाना चाहिए।

भाषिक विश्लेषण में किसी रचना, ग्रथं, रचनाकार इत्यादि की भाषा का वर्गीकरण किया जाता है। यह वर्गीकरण कई स्तरों पर किया जाता है। मसलन क्षेत्र के आधार पर, संस्कृति के आधार पर, भूगोल के आधार पर, बोली के आधार पर। और यही नहीं रचनाकार ने कहाँ-कहाँ और किन-किन रचनाओं में किस तरह के शब्द, मुहावरें, लोकोक्तियाँ, सूक्तियाँ, व्याकरणिक विशेषताओं का इस्तेमाल किया है। इसमें भाषा के गुण-दोष की चर्चा करते हुए उसको वैज्ञानिक विस्तार दिया जाता है। शोध विवेच्य में 'विकलांग श्रद्धा का दौर' का भाषिक विश्लेषण रचना की भाषागत विशेषताओं को समझने के लिए किया गया है। इन अर्थ में परसाई द्वारा प्रयोग व्यंग्यात्मक शब्द, वाक्य, मुहावरों ह लोकोक्तियों का प्रयोग भी जिन संदर्भों में हुआ है उसे जानने की कोशिश की गई है। कुछेक सूक्तियाँ भी इस विश्लेषण में शामिल है जिसका अन्योक्ति में प्रयोग हुआ है।

व्यंग्यात्मक शब्द

व्यंग्यात्मक शब्द का मतलब होता है - ' किसी पर कटाक्ष करना, व्यंग्यपूर्ण टिप्पणी अथवा दोष देना। किसी के सामने दूसरे व्यक्ति की बुराई करना, किसी की शिकायत करना। यहाँ तक की किसी को बदनाम करने से लेकर उसकी अपकीर्ति तक इत्यादि यह सभी व्यंग्यात्मक शब्दों के अर्थ देते हैं।[161] कुछ ऐसे ही व्यंग्यात्मक शब्द शोध विवेच्य में प्रयोग हुए हैं जिनका इस्तेमाल हरिशंकर परसाई ने अपने निबंध संग्रह 'विकलांग श्रद्धा का दौर' के विभिन्न निबंधों में प्रयोग किया है। जैसे-

[161] Meaningsworld.com/sarcastic-meaning-in-hindi

।

- 'कुत्ते से सावधान'। (पृ 10)
- 'रतजगा'। (पृ 84)
- ' भाव बढ़ाओ'। (पृ 57)
- 'जादू'। (पृ 58)
- ' सत्य-साधक मंडल'। (पृ 59)
- ' विदेह'। (पृ 60)
- ' रावण का पुतला'। (पृ 115)
- 'प्रसाद'। (पृ 60)
- ' सत्याग्रह'। (पृ 71)
- 'बुर्जुआ बौड़म'। (पृ 97)
- 'जानवर'। (पृ 116)
- 'भक्त '। (पृ 121)
- ' थ्रू प्रॉपर चैनल'। (पृ 127)
- ' ऑफ्टर ऑल '। (पृ 128)
- 'असिस्टेंट'। (पृ 130)
- ' ब्लैक लिस्ट'। (पृ 131)
- 'कुत्ते की औलाद '। (पृ 133)
- 'बाजार भाव'। (पृ 137)
- 'पालतू गधे'। (पृ 140)
- 'नए रेट '। (पृ 141)
- ' नोट कर लेता हूँ'। (पृ 141)

।

● ' परम्परा' । (पृ 142)

● ' यस सर' ।

● ' भूखे-प्यासे ' । (पृ 101)

व्यंग्यात्मक वाक्य

'विकलांग श्रद्धा का दौर' पूरा संग्रह ही व्यंग्यात्मक वाक्यों से भरापूरा है। बावजूद उसके संग्रह में कुछ ऐसे वाक्य हैं जो अन्य वाक्यों की तुलना में कुछ विशेष अर्थ प्रदान किए हुए हैं। उनका सम्बन्ध किसी खास सन्दर्भ को परिभाषित करता है। इस दृष्टि से यह वाक्य सामान्य वाक्य की तुलना में अलग हैं। अतः इस दृष्टि से प्रयुक्त व्यंग्यात्मक वाक्य हैं -

● 'क्यों यहाँ आया बे ? तेरे बाप का घर है ? भाग यहाँ से!' (पृ 09)

विवेचन - वाक्य में मेज़बान और मेहमान के बीच रिश्ते को नवीन अर्थ में प्रयोग किया है। कई बार इस तरह की मेहमाननवाज़ी मेज़बान की आर्थिक स्थिति पर चोट कर देती है। परंतु निबंध में इसका प्रयोग मेहमान को घर न बुलाकर उनसे पल्ला छुटाने के अर्थ में हुआ है।

● 'हाँ जी, सभी सरकारें एक-सी होती हैं।' (पृ 20)

।

विवेचन - इस वाक्य में सरकार की राजनीति और उसके तौर तरीकों पर व्यंग्य कसा गया है। चाहे कोई भी सरकार हो उसका चरित्र एक-सा ही रहता है। सभी सरकारों का काम जनता को ठगना और बेवकूफ बनाना है। कभी एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाकर मूलभूत मुद्दों से भटकाना भी इन्हीं सरकारों का काम है। इसलिए कहा जा सकता है कि 'राजनीति में कुछ भी सही-गलत नहीं होता। केवल राजनीति होती है। और यही राजनीति की राजनीति है।' इसलिए सभी सरकारें एक-सी होती है।

● "दूसरे दिन बाजार पहले जैसा हो गया और लोगों ने राहत की साँस ली।" (पृ 58)

विवेचन - निबंध में व्यंग्यात्मक रूप में दिखाया है कि किस तरह जनता बढ़ती महँगाई की मार खा रही है। वो सभी ओर से त्रस्त है। जब जनता के लिए सरकारों ने कुछ सस्ता करने की बात सोची तो जनता उसका विरोध करने लगी। क्योंकि शायद यह राजनीति के दाँवपेंच थे। और होता भी यही है। इसलिए जनता को सस्ता समान या राशन नहीं चाहिए। वो सस्ता राशन खाकर मरना नहीं चाहते। जनता की बगावत देखकर सरकार ने फिर से महँगाई बढ़ाई और सरकार ने चैन की साँस ली।

● "जिसे छह-छह महीने वेतन न मिले, वह वैसे ही आध्यात्मिक हो जाता है। " (पृ 60)

विवेचन - जिस बढ़ती महँगाई में खर्चा चलाना भारी पड़ रहा हो ऊपर से वह असमय मिले तो और टेंशन होती है। इससे निजात पाने के लिए कई लोग इस सांसारिक मोहमाया को छोड़कर योगी-बाबा बन जाते हैं। क्योंकि अब सहन करना उनके बस की बात नहीं होती। अतः वाक्य में वेतन समय पर न मिलने की चिंता बड़े अनोखे अंदाज़ में परसाई ने अभिव्यक्त की है।

।

● "मुझे विधाता के पास ले चलो। यह तुम्हारा कैसा स्वर्ग है ? " (पृ 104)

विवेचन - इस वाक्य में ' जैसा कर्म करोगे वैसा ही स्वर्ग मिलेगा' , 'बोया पेड़ बबूल का तो फल कहाँ से होए' , 'जैसी करनी वैसी भरनी' जैसी मुहावरों और लोकोक्ति की भी अभिव्यक्ति होती है। इस दृष्टि से हमें समाज के उस रूप का पता चलता है जिनके लिए हम बुरा सोचते हैं या करते हैं एक दिन हमें उसका अंजाम भुगतना पड़ता है।

● ' कुत्तों की लड़ाई ' (पृ 133)

विवेचन - समाज में आज इंसान का जो वर्तमान रूप चलन में है उस पर परसाई की नज़र पहले ही जा चुकी थी। उनकी फितरत को पहले ही भांप गए थे। इस अर्थ में भी यह वाक्य प्रासंगिक है। आज इंसान कुत्तों की तरह या उससे भी खतरनाक रूप में लड़ते जा रहे हैं। इंसान ही इंसान का दुश्मन होते जा रहा है। ऐसी प्रवृत्ति पर परसाई ने कड़ी आलोचना की है। उदाहरण के रूप में कादरखान के इस डायलॉग को भी देख सकते हैं :- ' आज इंसान कुत्तों की तरह हो गए हैं। '

● "प्रचार हो जाता तो हमारे सत्य को कोई पार्टी झपट लेती।' (पृ 59)

विवेचन - आज चलन यह है कि किसी भी सत्य की मान्यता उसके प्रचार पर आधारित है। प्रचार के बिना कैसा भी सत्य , सत्य नहीं कहला सकता। इस तरह का प्रचार अखबारों , टी.वी चैनलों , रेडियों व बड़े-बड़े होर्डिंग्स से भी होता है। जहाँ धड़ल्ले से विज्ञापन व खबर बिकती है। ऐसे सत्य का इस्तेमाल राजनैतिक दल अपने वोट बैंक के लिए भी करते हैं।

● ' जो प्रसाद लाएगा वो प्रवचन करेगा ही। ' (पृ 62)

।

विवेचन - जिसके पास किसी भी प्रकार की शक्ति या महत्वपूर्ण वस्तु होगी और सामने वाले व्यक्ति को उससे लाभ मिल रहा होगा तब वह सामने वाले व्यक्ति पर हावी होने की कोशिश करता है , उसे दबाने की चेष्टा करता है। क्योंकि वह बदले में कुछ दे रहा है। आज के समय में कोई किसी का काम करे और बदले में आशा न रखे यह असंभव-सा प्रतीत होता है। यही काम चोपड़ा साहब करते हैं।

- ' हम देश के लिए प्राणों की बलि चढ़ा देंगे। ' (पृ 70)

विवेचन - यह ऐसे चरित्र होते हैं जो अपनी आक्रोशात्मक भाषा व आवाज़ से जनता को सम्मोहित कर अपना उल्लू सीधा करते हैं। ऐसे चरित्र हमारे समाज में बहुतेरे हैं जो दूसरों के कंधों पर बंदूक रख के गोली चलाते हैं। इनका यह राष्ट्रवाद फर्ज़ी और झूठा होता है। सबसे बड़ी बात कि सही अर्थों में सबसे बड़े डरपोक यही होते हैं।

- 'हमें तो चाहिए नहीं। आप अपनी लड़की को ही देंगे। ' (पृ 144)

विवेचन - प्रस्तुत वाक्य सामाजिक कलंक दहेज प्रथा पर व्यंग्य करता है। जहाँ लड़की-लड़के को विवाह और लेन-देन के नाम पर बेचा जाता है। वाक्य में दहेज प्रथा को लड़की के पिता पर मढ़कर स्वयं उस कलंक से बचने की भी कोशिश की गई है। यह इस समाज की सबसे बड़ी विडंबना है जिससे आज तक हम निकल नहीं पाए हैं।

सूक्ति

।

हिंदवी शब्दकोश के अनुसार ' अच्छी उक्ति या सुंदर उक्ति' को ही सूक्ति कहा जाता है।[162] अथवा किसी सुंदर पद या वाक्य को भी , जिसमें किसी आदर्श सन्देश की दिशा झलक रही हो उसे भी सूक्ति कहा जा सकता है। यह लोगों के लिए प्रेरणा का कार्य करती है। इसका प्रयोग भाषा में चमत्कार और नैतिक सन्देश देने के लिए किया जाता है। एक अन्य अर्थ में यह ऐसा वचन या उक्ति होती है जो अच्छी लगे। जो सुवचन हो और उसे हम अपना बना सकें। इसके कुछ पर्याय भी हैं जैसे- : सुवचन, सुकथन, सूक्त, सुभाषित, सूक्त वाक्य, अच्छी बात इत्यादि।[163]

विवेच्य निबंध संग्रह में सूक्ति का प्रयोग हुआ है। जैसे-

● मार्क ट्वेन ने कहा था - ' यदि आप मरते कुत्ते को रोटी खिला दें, तो वह आपको काटेगा नहीं । कुत्ते में और आदमी में यही मूल अंतर है।' (पृ 10)[164]

विवेचन - मार्क ट्वेन के माध्यम से परसाई ने वर्तमान में इंसानों की फितरत और कुत्ते की वफादारी का दृश्य पेश किया है। परसाई का मत है कि आज इंसान कुत्तों से भी तुच्छ अविश्वास का पात्र बनकर रह गया है। इसपर विश्वास करना इतना आसान और संभव नहीं है जितना कुत्ते पर। यह हमारे समाज की भारी विडम्बना है कि मनुष्य ने आज इतनी प्रगति कर ली है बावजूद उसके वह विश्वास के योग्य न होकर संदेह की दृष्टि से देखा जाता है।

मुहावरें

[162] WWW.HINDIWI.ORG/HINDI-DICTIONARY/MEANING-OF-SUKTI
[163] HTTPS:/M.HINDIISH./HINDI
[164] विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, पृ 10

।

मुहावरा मूलतः: अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है - 'बातचीत करना या उत्तर देना' । मोटे तौर पर जिस सुगठित शब्द-समूह से लक्षणाजन्य और कभी-कभी व्यंजनाजन्य कुछ विशिष्ट अर्थ निकलता है उसे मुहावरा कहते हैं। मुहावरें भाषा को सुदृढ़ , गतिशील और रुचिकर बनाते हैं। मुहावरों के प्रयोग से भाषा में अद्भुत चित्रमयता आती है। डॉ. हरिश्चंद्र पाठक ने इसकी व्याख्या अपने शब्दों में ऐसे की है :- "मुहावरें किसी भी भाषा को सुन्दर और सशक्त बनाने के साथ प्रयोग की दृष्टि से उस भाषा को पर्याप्त सम्पन्न बनाते हैं। हिन्दी साहित्य तथा बोलचाल में गागर में सागर भर देने के लिए सम्यक रूप से मुहावरों का प्रचलन है। हिन्दी ने अपनी लाक्षणिक क्षमता बढ़ाने के लिए अपने सम्पर्क में आने वाली सभी प्रमुख भाषाओं के मुहावरों को अपना बनाने में संकोच नहीं किया। [165]

डॉ. उदय नारायण तिवारी ने हिन्दी-उर्दू में लक्षणा अथवा व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही ‘मुहावरा’ कहा है।

इस तरह 'विकलांग श्रद्धा का दौर' में मुहावरों का पूरा-पूरा प्रयोग है। जैसे -

- ' आस्तीन में साँप' - जो मित्र होकर धोखा दे। (पृ 70)

हरिशंकर परसाई ने इस मुहावरें का प्रयोग अपने निबंध ' चीनी डॉक्टर भागा' में अपने बगल के दुश्मन से सचेत रहने के अर्थ में किया है। यह ऐसा दोस्त होता है जो लगता और रहता तो दोस्त की तरह ही है लेकिन अंदर उसके दूसरा ही रूप बसा होता है। तब हमें इसी रहस्यमयी या छुपे हुए षड्यंत्रकारी रूप से बचने की आवश्यकता है। परसाई ने निबंध में दिखाया है कि किस तरह से 'भैया साब' सब लोगों को चीनियों के खिलाफ भड़का रहे हैं और अपना काम निकालना चाह रहे हैं। क्योंकि उन्हें अपने भतीजे के लिए उस डॉक्टर की दुकान को हड़पना है और वहाँ पर अपने भतीजे की डॉक्टरी की दुकान खुलवानी है। इसलिए वह देशभक्ति का ढोंग रचते हैं जिसमें नारों की इतनी ऊर्जा और बुलन्दी थी कि वहाँ तर्कों का हत्या हो गई थी। लोगों के सोचने-समझने की शक्ति क्षीण पड़ गयी थी। और उन्हें अपने बगल के 'भैया साब'

[165] हिंदी भाषा इतिहास और संरचना, डॉ. हरिशचंद्र पाठक, पृ 101

।

की यह चालाकी और धोखाधड़ी समझ नहीं आ रही थी। अतः कहा जा सकता है कि परसाई ने इस मुहावरें का प्रयोग करके वाक्य में जान फूँकने का कार्य किया है।

● 'नाक में दम करना' - अत्यधिक परेशान करना। (पृ 117)

यह मुहावरा परसाई के निबंध ' प्रथम स्मग्लर' से लिया गया है। जहाँ रामयुग का दृश्य खींचकर वर्तमान युग के स्मगलिंग जैसे संगीन अपराध पर व्यंग्य कसने हेतु प्रयोग हुआ है।

● 'चार सौ बीस' - छल कपट या धोखेबाज़ी करने वाला व्यक्ति अथवा ठगने वाला व्यक्ति। (पृ 133)

यह मुहावरा परसाई ने अपने निबंध ' लड़ाई' में इस्तेमाल करते हुए इंसानों की दोहरी फितरत को दिखाया है। जिसे प्रत्येक इंसान छुपाने की कोशिश में लगा रहता है। लेकिन जब उसका आपा खुद से ही भटक जाता है तब वो खुद ही अपनी और सामने वाले की पोल खोलने लगता है। इस काम के लिए उसे दूसरे किसी सहारे की जरूरत नहीं पड़ती। इसके लिए केवल चाहिए कि उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाए फिर देखिए दिमाग का खेल। कैसे वो सामने वाले की बहुत निजी या गोपनीय खबर तक जनता दरबार में रख देता है। चूँकि तुमने साँप की पूँछ पर पैर रख दिया है अब वो अपना धर्म तो निभाएगा ही। इसलिए अब तुम्हारी ख़ैर नहीं। सारी पोल-पट्टी खोल कर रख दूँगा। अर्थात किसी भी ऐसे व्यक्ति की सावधान रहना चाहिए जिस पर भरोसा करना आसान न हो और जिसका गुस्सा हमेशा सर चढ़े रहता हो। उससे अपनी गोपनीय बातें नहीं बतानी चाहिए। और कोशिश होनी चाहिए कि उसे हर-हाल में पता ही न चले। तब ऐसी स्थिति में वह कभी भी आपको शिकार बना सकता है। अपना आपा खोकर गुस्से में आपकी इज़्जत का छीछालेदर कर सकता है।

लोकोक्तियाँ

।

'लोकोक्ति' शब्द का सामान्य अर्थ 'लोगों द्वारा कही गयी उक्ति' अथवा लोगों द्वारा कहा गया के अर्थ में प्रयोग है। परन्तु समाज में यह अन्य रूप से प्रयोग होता है। सामान्य धारण के आधार पर 'लोकोक्तियाँ जनमानस द्वारा स्थानीय बोलियों में हर दिन की परिस्थितियों एवं संदर्भों से उपजे वैसे पद एवं वाक्य होते हैं जो किसी खास समूह , उम्र , वर्ग या क्षेत्रीय दायरे में प्रयोग किए जाते हैं। इसमें स्थान विशेष के भूगोल , संस्कृति , भाषाओं के मिश्रण इत्यादि की झलक मिलती है। लोकोक्ति वाक्यांश न होकर स्वतंत्र वाक्य होते हैं। जैसे- भागते भूत की लंगोटी भली , आम के आम गुठलियों के दाम, सौ सुनार की एक लोहार की, धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार:- “विभिन्न प्रकार के अनुभवों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं कथाओं, प्राकृतिक नियमों एवं लोक विश्वास आदि पर आधारित चुटीला, सारगर्भित, सजीव, संक्षिप्त लोक प्रचलित ऐसी उक्तियों को लोकोक्ति कहते हैं जिनका प्रयोग बात की पुष्टि या विरोध, सीख तथा भविष्य कथन आदि के लिए किया जाता है।”[166]

धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार, “लोकोक्तियां ग्रामीण जनता की नीति शास्त्र है। यह मानवीय ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं।”[167] जैसे -

- 'न रहेगी झाड़ न बजेगी बाँसुरी' - झाड़ से मतलब बाँस। मूल समस्या या कारण को ही जड़ से खत्म कर देना। (पृ 14)

- 'भिखमंगे को धमकी देना कि तेरा धन लूट लूँगा, एक बेवकूफी ही है।' अथवा निर्धन व्यक्ति को लूटने की धमकी देना महामूर्खता ही समझी जाती है। (पृ 41)

---

[166] HTTPS:/HI.M.WIKIPEDIA.ORG

[167] वही

।

निष्कर्षतः निम्नांकित बिंदुओं के आधार पर देख सकते हैं कि प्रस्तुत शोध विषय को भाषा के विभिन्न स्तरों पर विश्लेषित किया गया है। परसाई ने अपने निबंधों में सरल-सहज भाषा का तो इस्तेमाल किया ही है परंतु यह भाषा सरलता में भी अपनी विशिष्टता कायम किए हुए हैं। यही परसाई और व्यंग्य की ताकत होती है। हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में व्यंग्य ही इकलौती ऐसी विधा है जिसकी संरचना सामान्य शब्दों में गूढ़ मर्म अथवा भाव को दिखाने में योग्यता हासिल कर सकी है। इस विधा के माध्यम से परसाई ने हिंदी साहित्य जगत में सामान्य या बोलचाल की भाषा के प्रति दयनीय भाव या उपेक्षित भाव की धारणा को तोड़ा है। यही सामान्यतः अथवा भाषा का आमपन उनके लेखन की मजबूती बनता है। उनके किसी भी निबंध को पढ़कर बोझिलता का अनुभव नहीं हो सकता, उलटे पाठक उसकी अनूठी भाषा में और भी गहराता चला जाता है और निबंध के भाव में सराबोर हो जाता है। इस तरह परसाई के निबंध भाषा के स्तर पर अपने लक्ष्य पर पहुँच जाते हैं।

परसाई की इस आमभाषा में केवल शब्दों का ही योगदान नहीं है बल्कि व्यंग्य के मर्म तक पहुँचने के लिए उन्होंने उचित मात्रा में लोकोक्तियों, मुहावरों आदि का भी प्रयोग किया है। लोकोक्तियाँ व मुहावरें समाज के यथार्थ को पेश करने में सफल मानी जाती है साथ ही व्यंग्य के लिए इनका प्रयोग अच्छा माना जाता है। कई बार मुहावरें का प्रयोग व्यंग्य के उस टेढ़े अंदाज़ को पेश करने में आगे बढ़ाने का कार्य करता। अतः परसाई साहित्य अपने मुहावरें के प्रयोग के लिए भी विशिष्ट है।

परसाई साहित्य में विभिन्न शब्दों, अर्थों, संवेदनाओं व लोकोक्तियों के प्रयोग के पीछे उनका व्यक्तिगत न सामाजिक अनुभव भी खूब है। वह जहाँ रहे, जहाँ गए उसी संस्कृति में ढल गए और वहाँ के कल्चर को उन्होंने अपनी लेखनी में स्थान दिया। इसके अलावा उन पर जिन भी लोगों का प्रभाव पड़ा तो उसके साथ ही उनकी भाषा भी परसाई लेखन से आ जुड़ी। इसलिए उनके लेखन में कई जगह बहुत कोमल शब्द मिलेंगे तो कहीं क्रांतिकारी शब्द भी। यह इनके व्यक्तित्व के अनोखे मिश्रण की कथा कहते हैं। इन सभी प्रयोगों से परसाई निबंधों को एक नए दृष्टिकोण से देखने का

।

अवसर प्राप्त हुआ है। अतः प्रस्तुत शोध हरिशंकर परसाई पर किए गए शोध विषयों में भाषा की दृष्टि से नवीनता प्रदान करेगा।

।

उपसंहार

प्रस्तुत शोध विवेच्य का अध्ययन जिन-जिन संदर्भों में किया गया है उनसे प्राप्त निष्कर्ष इस प्रकार दिया गया है-

मनुष्य जीवन निरन्तर खोज की परंपरा से जुड़ा रहता है। खोज में सर्वथा नूतन सृष्टि का नहीं, अज्ञात को ज्ञात करने का भाव भी शामिल रहता है । मनुष्य बुद्धिसम्पन्न प्राणी होने के कारण अपनी सचेतावस्था से ही जिज्ञासु रहा है। वह 'अहम्' (आत्मा) , 'इदम्' (सृष्टि या जगत्) और 'सः' (ब्रह्म , परमात्मा) को जानने के लिए पर्युत्सुक रहता है। संसार में यह क्यों है ? यह संसार कैसे बना है ? मुझे और संसार को यहाँ लाने वाला कौन है ? मेरा और संसार का परस्पर क्या सम्बन्ध है, आदि प्रश्न उसे झकझोरते रहते हैं। इस कारण मनुष्य की ज्ञान पिपासा कभी तृप्त नहीं होती। उसकी इसी अतृप्ति ने अनेक भौतिक तथा आध्यात्मिक, साहित्यिक और न जाने किन-किन क्षेत्रों में कैसे-कैसे नवीन रहस्यों के तथ्य प्रदान कर मानव ज्ञान-संपदा में लगातार अभिवृद्धि की। और इस खोज की प्रवाहमान धारा कभी रुकने का नाम नहीं लेती। बल्कि बिना किसी अवरोध के आगे बढ़ती रहती है। ज्ञान की इसी खोजी प्रवृत्ति को 'शोध' कहा जाता है। इस खोज के अंतिम लक्ष्य पर पहुँचाना प्रत्येक शोधकर्ता का ध्येय रहता है। इस दृष्टि से खोज में शोधकर्ता जिन भी रचनाकारों पर शोधकार्य करते हैं उनमें व्यक्तिगत अनुभव भी साझा हुए रहते हैं। या किसी न किसी बहाने वह शोध में सहज ही आ मिलते हैं। जिससे अनुभवों के परिष्कार, गहन चिंतन व भाषा की कलात्मकता के अभिन्न मिश्रण के साथ रचना आगे बढ़ती है। अतः रचनाकार का अनुभव जितना समृद्ध व सच्चा प्रतीत होगा कला भी उतनी उत्कृष्ट लगेगी। इस अर्थ में हरिशंकर परसाई का लेखन अनुभवजन्य, परिपक्व व यथार्थ के बहुत निकट है।

सामान्यतः प्रत्येक युग अपने अतीत की तुलना में आधुनिक ही रहता है। जैसे-जैसे समय अपनी गति के साथ आगे बढ़ता है, बीता हुआ समय अतीत का रूप लेकर आने वाले समय को आधुनिक बनाता जाता है। यही प्रक्रिया जीवनकाल तक प्रवाहित होती है। जैसे- 'वैदिककाल' , 'उत्तर वैदिककाल' , 'मध्यकाल' और वहाँ से यह यात्रा चलती हुई 'रेनेसॉ' या 'नवजागरण' , 'आधुनिककाल' , 'मशीनीकरण' , 'डिजिटलीकरण' तथा आने वाले समय में यह प्रक्रिया

।

और भी तेज़ी से बढ़ती जाएगी। इसी प्रकार वर्तमान जैसे-जैसे बीतता जाएगा वह अतीत का रूप ले लेगा और आने वाला समय नवीन रूप में आधुनिक कहलायेगा।

यद्धपि हिंदी साहित्य के अंतर्गत आधुनिक युग की शुरुआत उन्नीसवीं शती से मानी जाती है, परन्तु यह बात इतनी सीमित नहीं। जब किसी कालखण्ड की चर्चा की जाती है, विशेष रूप से उसके उद्गम प्रक्रिया की, तब बड़े ध्यान से उन पहलुओं पर ग़ौर किया जाता है जहाँ से उसके पूर्ववर्ती और वर्तमान में एक विभाजक रेखा देखनी होती है। समय को विभाजित करना कोई आसान कार्य नहीं और न ही एक दिन में नक्की करने वाला काम। इसके लिए हमें इतिहास के उन घटनाक्रमों, उन परिस्थितियों, उन सामाजिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक कारणों को पुनः अध्ययन का विषय बनाना होता है जिससे वह एक-दूसरे से भिन्न दिखती है। इस अर्थ में व्यंग्य विधा आधुनिक युग की विशिष्ट विधा है जिससे समाज के यथार्थ का अंकन किया जाता है।

व्यंग्य एक समाजोन्मुखी साहित्यिक अभिव्यक्ति है जिसके माध्यम से हम समाज में व्याप्त दुर्बलताओं, कुरूपताओं, विसंगतियों आदि को चित्रित करते हैं। इस विधा का मुख्य लक्ष्य समाज में व्याप्त गंदगी को ख़त्म करना है। यह समाज के लिए एक रामबाण ईलाज है, एक अचूक शस्त्र है जिसका कोई तोड़ नहीं। यह उस औषधि की तरह है जिसके लेप से तीखे-से-तीखा जहर भी उतर जाता है। जिस प्रकार नीम का रस स्वाद में कडवा भले ही लगता है परंतु उसका असर स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से बहुत ही उत्तम होता है। जैसे किसी टैबलेट अथवा लिक्विड आदि देने से पेट की सभी गन्दगियाँ बाहर निकाली जा सकती है, ठीक ऐसे ही समाज की गंदगी बाहर निकालकर अथवा दूर करने के लिए व्यंग्य को भी इसी अर्थ में इस्तेमाल किया जाता है। यह अरस्तू के विरेचन सिद्धान्त से जोड़कर भी देखा जा सकता है।

इस दृष्टि से व्यंग्य का लक्ष्य समाज की सड़ांध को ख़त्म करके समाज में नवीन शुद्ध वातावरण की निर्मिति करना है। इसी बात की पुष्टि गजानन माधव 'मुक्तिबोध' ने भी की है:- "इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए, दुनिया को साफ़ करने के लिए एक मेहतर चाहिए।"

।

साथ ही व्यंग्य समाज का वह स्वर है जिसे आम-आदमी खुले तौर पर नहीं कह पाता परन्तु व्यंग्यकार बड़े स्पष्ट तरीके से कह लेता है। व्यंग्यकार समाज की उन भूलों को आकृष्ट करता है जिससे समाज को लज्जा आती है।

व्यंग्य असल में एक दृष्टि है, एक मनः स्थिति है। तथा अच्छा व्यंग्य असल में वह है जो किसी आंतरिक करुणा से पैदा होता है। इसीलिए बड़े से बड़े पाखंड को धज्जी-धज्जी कर डालने की शक्ति उसमें शामिल होती है। यह चीज़ परसाई में सबसे अधिक है और उनके व्यंग्य में तुर्शी और तीखापन ही नहीं, एक तरह का ठेठपन भी है।

हरिशंकर परसाई स्वातंत्रोयत्तर भारत में हिंदी साहित्य संसार के युगधर्मी और मजबूत व्यंग्यकार माने जाते हैं। इनके लेखन से प्रत्येक समय का सच्चा रूप पाठकों के सामने आ सका। जिसके लिए इन्होंने व्यंग्य को माध्यम बनाया। अपने लेखन के लिए व्यंग्य को माध्यम बनाना इनके लिए आवश्यक था चूँकि व्यंग्य ही एक ऐसी विधा है जिसके द्वारा समाज का सत्य सबसे निकटता के साथ पेश किया जा सकता है। परसाई ने हिंदी व्यंग्यधारा को जो आमूल परिवर्तन और आधार दिया वह आजतक कोई नहीं दे पाया है। इस तर्क से भी परसाई इस विधा के सबसे बड़े रचनाकार माने जाते हैं। इनका व्यंग्य समाज के सभी कोनों को छूता है और परिवर्तन की आशा रखता है। अतः इस दृष्टि से आज व्यंग्य विधा अपने पैरों पर खड़ी है।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय में 'व्यंग्य लेखन का सैद्धांतिक परिपेक्ष्य' वर्णित है। जिसके अंतर्गत व्यंग्य के अर्थ में उसे 'चुटकी लेना' , 'ताना मारना' , 'किसी का उपहास उड़ाना' अथवा 'शब्द शक्ति की व्यंजना' से जोड़कर देखा गया है। यह अर्थ मुख्यतः गलत के खिलाफ उसको तार-तार कर देने से भी जुड़ा है। साथ ही इसी अध्याय में व्यंग्य की प्रमुख परिभाषाओं का भी विस्तारपूर्वक विवेचन है। इस विस्तार में व्यंग्य आक्रामक शैली, गलत होने पर खरी-खोटी सुना देने जैसे स्वरूप में स्थापित है। आगे, व्यंग्य पैदा होने में जिस तत्व की सबसे ज़्यादा जरूरत होती है वह होती है- 'विसंगति' , उसका भी पूरे विस्तार और तर्क के साथ वर्णन किया गया है। इसी अध्याय में आगे चलकर व्यंग्य की प्रमुख विशेषताओं का भी विविध नजरिये से वर्णन पेश है जहाँ व्यंग्य को तर्काधारित, ग़ैर समझौतावादी, एक गम्भीर और संवेदनशील कला व न्यायप्रियता के रूप में परिभाषित किया है। व्यंग्य का अर्थ ही अनुचित के खिलाफ उचित की

।

कारवाई करने और न्याय के लिए लड़ने के हित में है। अन्यथा व्यंग्य की नैतिकता ख़तरे में आ सकती है। अतः निष्कर्ष रूप में व्यंग्य एक ऐसी रचनात्मकता है जो समाज के दयनीय व शोषितों की आवाज़ बनकर खड़ी होती है।

इस अध्याय के अंत में व्यंग्य लेखन की परंपरा का विवेचन हुआ है। यह मुख्यतः दो भागों में बाँटा गया है- स्वतंत्रता पूर्व व्यंग्य व स्वातन्त्र्योत्तर व्यंग्य। स्वतंत्रतापूर्व व्यंग्य भारतेंदु व बाद के व्यंग्यकारों का युग है तो स्वातन्त्र्योत्तर युग में मुख्यतः परसाई और उनके समकालीन व्यंग्यकारों की परंपरा है। यदि गौर से देखा जाए तो इस विधा के छोटे-छोटे तत्व आदिकाल के सिद्ध-नाथ योगियों के पास भी दिखाई देते हैं परन्तु वह तब अपने शैशवावस्था में था। इसका बालपन भारतेंदु युग में समाप्त हुआ और इसकी किशोरावस्था शुरू हुई। लेकिन व्यंग्य की यौवनावस्था स्वातंत्रोयत्तर भारत में ही उभर कर आई। जब उसका पालन पोषण हरिशंकर परसाई ने किया। और आज जब यह बड़ा हो चुका है तब इसकी जिम्मेदारी वर्तमान के व्यंग्यकारों जिनमें गोपाल चतुर्वेदी, ज्ञान चतुर्वेदी, के. पी. सक्सेना, प्रेम जनमेजय, हरीश नवल आदि पर आ गई है।

निष्कर्ष रूप में देखा जा सकता है कि स्वातन्त्र्योत्तर भारत में व्यंग्य लेखन का हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्वतंत्रतापूर्व भारत में व्यंग्य की जो यात्रा अपनी धीमी गति से शुरू हुई थी उसे इस नवीन भारत में खूब तेज़ी से दौड़ने का अवसर प्राप्त हुआ। नए-नए विषयवस्तु उसके लेखन के आधार बने जिससे व्यंग्य की व्यापकता व विविधता बढ़ी। रोज़मर्रा और छोटे-से-छोटे विषयों पर लिखना जिन लेखकों को न-गवारा मालूम होता था उन सभी विषयों पर घातक व्यंग्य लिखकर परसाई ने इन्हें साहित्य की मेन स्ट्रीम में लाने का उद्योग किया है। इससे व्यंग्य की प्रगति भी हुई और व्यंग्यकारों की बाढ़-सी आ गई।

इसके आगे शोध प्रबंध के द्वितीय अध्याय में हरिशंकर परसाई और आधुनिक हिंदी निबंध साहित्य की चर्चा की गई है। इस क्रम में सर्वप्रथम परसाई के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने की कोशिश हुई है जहाँ उन्हें एक क्रांतिकारी लेखक के रूप में, एक जागरूक नागरिक के रूप में, एक संवेदनशील व्यक्ति के रूप में, एक दयनीय व निर्धन और अभावों से मारे इंसान के रूप में दिखाया है। कुछ भीतर तक एक सच्चे पिता के रूप में भी परसाई का यह व्यक्तित्व निखर

।

कर आया है। परंतु इतना कुछ झेलने पर भी परसाई, परसाई बनकर हिंदी साहित्य जगत में इस पद पर खड़े हैं तो उसके पीछे उन्हें प्रेरित व प्रभावित करने वाले न जाने कितने लोगों का योगदान रहा है। यदि परसाई के परिवार जनों की बात की जाए तो उन्हें उनकी बुआ ने सबसे पहले प्रभावित किया और उनमें निर्भीकता के तत्व बोए। तब आगे की श्रेणी में साहित्य व राजनीति के अन्य लोगों ने भी उन्हें प्रेरित किया। हरिशंकर परसाई हिंदी साहित्य जगत में आज जिस मुकाम पर स्थापित हैं उसके लिए उनका लेखन संसार महत्वपूर्ण है। इस आधार में मुख्यतः उनके निबंध साहित्य की लोकप्रियता शामिल है जहाँ व्यंग्य के सैकड़ों आयाम मौजूद है। इस दृष्टि से उनके कई निबंध संग्रह हमारे समक्ष प्रस्तुत हैं। इसके अतिरिक्त परसाई के लेखन क्रम में यह भी पता चला कि वह 'कबीर' , 'आदम' और 'अघोर भैरव' से लिखा करते थे। इस तरह परसाई लेखन अपनी विषयवस्तु की विविधता के साथ अपने नाम की विविधताओं के लिए भी प्रसिद्ध है। इसी अध्याय में व्यंग्य विधा पर परसाई की विशेष दृष्टिकोण के भी उदाहरण देखने को मिलेंगे। जहाँ पूरा भारतीय तत्व मौजूद है। उनका व्यंग्य मानवतावादी व सच-झूठ के चिरंतन संघर्ष की गाथा है। इस व्यंग्य में वह दुखियारों की बुलंद आवाज़ बनकर समाज के सामने खड़े होते हैं और उनका प्रतिनिधित्व करते हैं। 'कांतिकुमार जैन' ने भी परसाई की इसी विचारधारा का समर्थन देते हुए कहा है:- " हरिशंकर परसाई सामाजिक सरोकार के प्रति दृढ़ता के साथ समर्पित हैं।" परसाई की व्यंग्याधारित मुख्य विचारधारा कई क्षेत्रों से घुलमिल कर बनी है। इसमें समाज, राजनीति, धर्म, साहित्य व देश-दुनिया जैसे सभी विषयों की असंगति की पड़ताल है। यही इनके भारी भरकम व्यंग्य की पहचान है जिससे पाठक वर्ग सीधे जुड़ जाता है।

अध्याय का अंत शोध विषय के आधार ग्रँथ पर आधारित है जहाँ 'विकलांग श्रद्धा का दौर' रचना का व्यापकता व विविध नजरियों से तर्कपूर्ण विवेचन किया गया है। इस क्रम में तत्कालीन देश-दशा का जैसा वर्णन परसाई ने किया है वह यथार्थ की ठोस भूमि से जुड़ा प्रतीत होता है। अतः कहा जा सकता है कि देश की इस विकलांग श्रद्धा पर परसाई ने बड़ी मार्मिकता से जो आघात उस समय किया था उसका असर आज भी महसूस किया जा सकता है। चूँकि देश के हालातों में कोई विशेष सुधार नहीं आया है। आज भी लोग एक-दूसरे को धोखा दे रहे हैं , झूठा सम्मान दे रहे हैं। इस अर्थ में परसाई आज भी प्रासंगिक बने हैं। उनका लेखन आज भी समाज की विकलांगता पर दवा लगाने का काम कर रहा है। अतः परसाई ने समाज की विकलांगता पर अपनी विरेचन दृष्टि से ईलाज करने की चेष्टा की है।

।

लघु शोध प्रबंध का सबसे अंतिम व सबसे मुख्य तृतीय अध्याय है जोकि शोध विषय है। यहाँ शोध विषय पर गूढ़ता के साथ विस्तार से चर्चा की गई है। यह अध्याय शोध विषय की नींव है। इसमें अध्याय को मुख्यतः उसके संवेदना पक्ष व भाषिक पक्ष के आधार पर बाँटा गया है। प्रस्तुत अध्याय में आधार ग्रँथ के निबंधों में छुपे मर्म को जानने की कोशिश की गई है। परसाई इन निबंधों में अनेकानेक दिशाओं से संवेदना को प्रकट करने में सफल हुए हैं। परसाई ने प्रत्येक निबंध में कुछ नवीन दिखाने की चेष्टा की है जिसे शोध विवेच्य में बड़ी गम्भीरता व अध्ययन के पश्चात सामने लाने का सफल प्रयास किया है। इन निबंधों में संवेदना के स्तर पर समाज की विभिन्न कुरीतियों, रूढ़ियों व जातिगत भेदभाव की कुवृत्ति दिखाने की चेष्टा हुई ही है तो साथ ही उन समस्याओं के हल भी निबंध के भीतर छुपे हुए मिलेंगे। जिसे गहन अध्ययन व धैर्य के साथ ढूँढा जा सकेगा। तो कहीं राजनैतिक दलदल में फँसी भारतीय जनता की टीस छुपी है। कहीं देश की संस्थाओं के दुष्प्रयोग व लापरवाही के उदाहरण भरे पड़े हैं तो कहीं राष्ट्रवाद की खोखली परतें। कोई निबंध भारतीय संस्कृति का ह्रास होने की तस्वीर पेश करता है तो कोई धर्म के पाखंडियों द्वारा जनता को लूटा जाना व गोरखधंधा चलाए जाने के दर्शन दिखाता है। इसके अतिरिक्त कुछेक ऐसे निबंध भी हैं जिनमें विषयवस्तु की समानता देखी जा सकती है जैसे 'पवित्रता का दौर' व 'अश्लील पुस्तकें' निबंध समाज की अपवित्रता के उदाहरण हैं तो वहीं 'चौबेजी की कथा' तथा 'तिवारीजी की कला' में समाज के भीतर किस तरह धर्म, नीति, मर्यादा व परम्परा का डर दिखाकर आपसे अनुचित कार्य करवाया जा सकता है ऐसे दृश्य सामने आए हैं। इसी क्रम में, समाज को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने में कलम की ताकत क्या महत्व रखती है यह सभी जानते हैं। शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम से जिसके द्वारा कोई भी किसी भी बाधा को पार कर सकता है। डॉ. अम्बेडकर ने भी कहा है कि 'शिक्षा उस शेरनी का दूध है जिसे पीकर कोई भी दहाड़ सकता है। परंतु जब उसी कलम पर कोई अवरोध लगा दे तो इससे समाज की क्षति हो सकती है। 'पवित्रता का दौर' व 'अफसर कवि' ठीक ऐसे ही निबंध हैं। तो वहीं भाषा के स्तर पर परसाई ने अपने निबंधों में सरल-सहज भाषा का तो इस्तेमाल किया ही है परंतु यह भाषा सरलता में भी अपनी विशिष्टता कायम किए हुए हैं। यही परसाई और व्यंग्य की ताकत होती है। हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में व्यंग्य ही इकलौती ऐसी विधा है जिसकी संरचना सामान्य शब्दों में गूढ़ मर्म अथवा भाव को दिखाने में योग्यता हासिल कर सकी है। इस विधा के माध्यम से परसाई ने हिंदी साहित्य जगत में सामान्य या बोलचाल की भाषा के प्रति दयनीय भाव या उपेक्षित भाव की धारणा को तोड़ा है। यही सामान्यतः अथवा भाषा का

।

आमपन उनके लेखन की मजबूती बनता है। उनके किसी भी निबंध को पढ़कर बोझिलता का अनुभव नहीं हो सकता, उलटे पाठक उसकी अनूठी भाषा में और भी गहराता चला जाता है और निबंध के भाव में सराबोर हो जाता है। इस तरह परसाई के निबंध भाषा के स्तर पर अपने लक्ष्य पर पहुँच जाते हैं।

परसाई की इस आमभाषा में केवल शब्दों का ही योगदान नहीं है बल्कि व्यंग्य के मर्म तक पहुँचने के लिए उन्होंने उचित मात्रा में लोकोक्तियों, मुहावरों आदि का भी प्रयोग किया है। लोकोक्तियाँ व मुहावरें समाज के यथार्थ को पेश करने में सफल मानी जाती है साथ ही व्यंग्य के लिए इनका प्रयोग अच्छा माना जाता है। कई बार मुहावरें का प्रयोग व्यंग्य के उस टेढ़े अंदाज़ को पेश करने में आगे बढ़ाने का कार्य करता। अतः परसाई साहित्य अपने मुहावरें के प्रयोग के लिए भी विशिष्ट है।

परसाई साहित्य में विभिन्न शब्दों, अर्थों, संवेदनाओं व लोकोक्तियों के प्रयोग के पीछे उनका व्यक्तिगत न सामाजिक अनुभव भी खूब है। वह जहाँ रहे, जहाँ गए उसी संस्कृति में ढल गए और वहाँ के कल्चर को उन्होंने अपनी लेखनी में स्थान दिया। इसके अलावा उन पर जिन भी लोगों का प्रभाव पड़ा तो उसके साथ ही उनकी भाषा भी परसाई लेखन से आ जुड़ी। इसलिए उनके लेखन में कई जगह बहुत कोमल शब्द मिलेंगे तो कहीं क्रांतिकारी शब्द भी। यह इनके व्यक्तित्व के अनोखे मिश्रण की कथा कहते हैं। इन सभी प्रयोगों से परसाई निबंधों को एक नए दृष्टिकोण से देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। अतः प्रस्तुत शोध हरिशंकर परसाई की भाषा को नवीनता की दृष्टि प्रदान करता है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि हरिशंकर परसाई के प्रस्तुत निबंध संग्रह में संवेदना व भाषा के स्तर पर इस संग्रह में व्यंग्य या विसंगति की जितनी शाखाएँ देखने को मिलती है वह एक चेतनासम्पन्न व एक जिम्मेदार नागरिक का रूप प्रस्तुत करती है। परसाई ने इस संग्रह के माध्यम से आपातकाल के आसपास के समय को जिस विसंगति में जिया, देखा व अनुभव किया उसी का यथार्थ अंकन उन्होंने अपनी भाषा के माध्यम से भावनाओं को व्यक्त किया है। इस संवेदना में उन्होंने समाज के हर उस व्यक्ति को शिकार बनाया है जिसने तत्कालीन वातावरण को दूषित किया है। चाहे वह आमजन हो, राजनेता हो या बुद्धिजीवी। कोई भी उनकी कलम से बचकर निकल नहीं पाया। यही परसाई की तीव्र दृष्टि का नमूना

।

है। जहाँ से कोई भी चोर कील निकल कर पार नहीं जा सकती। साथ में व्यंग्य विधा का पोस्टमार्टम करके उसे जितना भी शुद्ध किया उसका श्रेय परसाई को ही जाता है। वर्तमान में व्यंग्य को अकेले ही एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित करने में साहित्य जगत को परसाई के प्रति कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए। हमें सदैव स्मरण रहना चाहिए कि आज व्यंग्य विधा जिस स्थान पर आसन्न है उसके पीछे यदि किसी शख़्स का सबसे बड़ा हाथ है तो वह व्यंग्य विधा के गुरु हरिशंकर परसाई ही हैं। आधुनिक युग में व्यंग्य और परसाई एक दूसरे के पर्याय हो गए हैं। लिहाज़ा आज व्यंग्य एक सुरक्षित विधा के रूप में स्थापित है, परंतु साहित्य की अन्य विधाओं में कथासाहित्य और काव्य जितनी मात्रा में सृजित हो रहा है उस दृष्टि से व्यंग्यकारों को अभी बहुत-सा कार्य करना शेष है। जिससे कि व्यंग्य की प्रगति में तेज़ी आ सके। इस दृष्टि से परसाई की भाषा पर अभी बहुत से कार्य शेष है जिसे आगे चलकर विस्तार दिया जाना है। यही भाषा और संवेदना परसाई साहित्य की ताकत है उनकी मजबूती है। इसी आधार पर वह आज भी प्रासंगिक हैं और उन पर निरंतर शोध किए जा रहे हैं।

।

सन्दर्भ ग्रँथ सूची

आधार ग्रँथ :-

1. हरिशंकर परसाई, 'विकलांग श्रद्धा का दौर', राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, सं दसवाँ, 2017

सहायक ग्रँथ :-

1. श्यासमसुन्दर घोष, व्यंग्य क्या व्यंग्य क्यों, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 1983

2. डॉ. सूर्यप्रकाश जायसवाल, हास्य - विश्लेषण विवेचन नागार्जुन पब्लिकेशन, हैदराबाद, प्रथम आवृत्ति 1991

3. डॉ. मलय, व्यंग्य का सौंदर्यशास्त्र, साहित्यवाणी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं 1983

4. डॉ. मदालसा व्यास, हिंदी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम सं 1999

5. डॉ. के . एम द्विवेदी, हरिशंकर परसाई और विनोद भट्ट, श्रीनिवास पब्लिकेशन, जयपुर, प्रथम सं 2010

6. इंद्रनाथ मदान, हिंदी की हास्य व्यंग्य विधा का स्वरूप और विकास, साहित्य सम्मेलन प्रकाशन, प्रयाग, 1978

7. राजेश जैन, हिंदी का समकालीन व्यंग्य साहित्य, संघी प्रकाशन, जयपुर, प्रथम सं 1991

8. बालेंदुशेखर तिवारी (संपा.), व्यंग्य ही व्यंग्य, सत्साहित्य प्रकाशन, प्रथम सं 1987

9. केशवचंद्र वर्मा (संपा.), आधुनिक हिंदी हास्य व्यंग्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय सं 1975

10. शेरजंग गर्ग, व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न, सामयिक प्रकाशन, प्रथम सं 1976

11. गर्ग, स्वातंत्रोयत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य, साहित्य भारती प्रकाशन, दिल्ली, सं 1973

12. प्रेम जनमेजय (संपा.), व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य, ग्रंथालोक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं 2009

13. प्रेम जनमेजय, हिंदी व्यंग्य की धार्मिक पुस्तक, किताबघर प्रकाशन

।

14. माचवे, तेल की पकौड़ियाँ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा सं 1965

15. रामवृक्ष बेनीपुरी (संपा.) बालेंदुशेखर तिवारी, रागदरबारी-व्यंग्य संदर्भ की परख,ज्योति प्रकाशन, राँची, 1983

16. श्रीलाल शुक्ल, रागदरबारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पैंतीसवाँ सं 2016

17. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, बारहवाँ सं 2018

18. संजयसिंह बघेल, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं 2020

19. डॉ. नगेन्द्र (संपा.), भारतीय साहित्य का संकेतित इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यालय निदेशालय प्रकाशन

20. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति 2018

21. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, पच्चीसवाँ सं 2018

22. डॉ. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दसवाँ सं 2018

23. डॉ. नगेन्द्र (प्र.संपा.) डॉ हरदेव बाहरी (संपा.), हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, छियासठवाँ सं 2018

24. तलवार, सामना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं 2005

25. ओमप्रकाश सिंह (संपा.), भारतेंदु ग्रंथावली , भाग 6, प्रकाशन संस्थान प्रकाशक, नई दिल्ली, सं 2010

26. रामविलास शर्मा, परम्परा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ सं 2016

27. रामविलास शर्मा, रागविराग, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, सं 2014

28. रामविलास शर्मा, भारतेंदुयुग,विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

29. गजानन मा. मुक्तिबोध, प्रतिनिधि कविताएँ, अशोक वाजपेयी (संपा.), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छब्बीसवाँ सं 2017

30. प्रेमचंद, पचास कहानियाँ, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, सं प्रथम 1977

31. डॉ. हरिशचंद्र पाठक, हिंदी भाषा - इतिहास और संरचना, तकक्षिला प्रकाशन, नई दिल्ली, सं 2004

।

32. डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा, डॉ. जयंतीप्रसाद नौटियाल (संपा.), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली , सं 2010

33. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव और भोलानाथ तिवारी (संपा.), हिंदी भाषा - संरचना और प्रयोग, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम सं 1980

34. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव (संपा.) सैद्धांतिक एवं अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, साहित्य सहकार प्रकाशन, प्रथम सं 1992

35. हरिशंकर परसाई, काग भगोड़ा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं 1983, पुनर्मुद्रण 1985

36. हरिशंकर परसाई, पगडंडियों का जमाना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा सं 1976

37. हरिशंकर परसाई, सदाचार का तावीज़, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं 1967

38. हरिशंकर परसाई, ठिठुरता हुआ गणतंत्र,नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, तृतीय सं 1978

39. हरिशंकर परसाई, अपनी अपनी बीमारी, राजपाल एंड संस , दिल्ली, तृतीय सं 1976

40. हरिशंकर परसाई, प्रतिनिधि व्यंग्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली , चौबीसवाँ सं 2021

41. हरिशंकर परसाई, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ , ज्ञानभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं 1967

42. हरिशंकर परसाई, आवारा भीड़ के ख़तरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं 1998

43. हरिशंकर परसाई, रानी नागफनी की कहानी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं 2005

44. कमलाप्रसाद और 4 (संपा.), परसाई रचनावली भाग 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ सं 2019

45. कमलाप्रसाद और 4 (संपा.), परसाई रचनावली भाग 2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ सं 2019

46. कमलाप्रसाद और 4 (संपा.), परसाई रचनावली भाग 3, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ सं 2019

47. कमलाप्रसाद और 4 (संपा.), परसाई रचनावली भाग 4, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ सं 2019

48. कमलाप्रसाद और 4 (संपा.), परसाई रचनावली भाग 5, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ सं 2019

49. कमलाप्रसाद और 4 (संपा.), परसाई रचनावली भाग 6, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ सं 2019

50. श्याम कश्यप (संपा.) हरिशंकर परसाई संकलित रचनाएँ , नेशनल बुक ट्रस्ट प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं 2007, दूसरी आवृत्ति 2012

।

51. कमला प्रसाद व प्रकाश दूबे (संपा.) चुनी हुई रचनाएँ:हरिशंकर परसाई, वाणी प्रकाशन, भाग 1, दूसरा सं 2008, आवृत्ति 2013

52. विश्वनाथ त्रिपाठी, हरिशंकर परसाई मोनोग्राफ, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं 2007, पुनर्मुद्रण 2019

53. विश्वनाथ त्रिपाठी,देश के इस दौर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं 2016

पत्रिकाएँ

1. ज्ञानोदय, उनहत्तरवां अंक, मार्च, 2015

2. प्रगतिशील वसुधा, पिचासिवां अंक, अप्रैल-जून, 2010

3. आजकल, सम्पादकीय, फरवरी 1993

4. आलोचना, व्यंग्य की सामाजिकता, डॉ. प्रेमशंकर, जनवरी-मार्च, 1989

5. व्यंग्य विविधा, इकतीसवां अंक

शब्दकोश

1. राजपाल हिंदी शब्दकोश, डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल एंड संस प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2016

2. उर्दू हिंदी शब्दकोश, मुहम्मद मुस्तफ़ा खाँ 'मददाह' (संक) ,उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान प्रकाशन, लखनऊ, सोलहवाँ सं 2017

वेबलिंक

1. WWW.HINDISARANG.COM, हिंदी साहित्य, हिंदी निबन्ध

2. WWW.SCOTBUJ.COM, व्यंग्य का अर्थ, परिभाषा व स्वरूप

3. WWW.PUSTAK.ORG, लेख, हिंदी गद्य लेखन में व्यंग्य और विचार, सुरेशकान्त

।

4. WWW.RASHTRIYAABHIYAN.COM, लेख, इक्कीसवीं सदी में व्यंग्य की दुनिया, सुरेशकान्त

5. WWW.DIVYAHIMANCHAL.COM, लेख, व्यंग्य साहित्य:सन्दर्भ एवं चुनौतियाँ, अमरदेव आंगिरस

6. WWW.DIVYAHIMANCHAL.COM, लेख, जीवन शास्त्र में व्यंग्य की बड़ी सार्थकता, डॉ. शंकर वशिष्ठ

7. WWW.RACHNAKAR.ORG, लेख, हिंदी व्यंग्य परम्परा और विवेकरंजन के व्यंग्य, डॉ. स्मृति शुक्ल

8. WWW.HINDISARANG.COM, लेख, हिंदी व्यंग्य की अवसान बेला, ओमप्रकाश कश्यप

9. WWW.THELEKHHINDI.COM, लेख, हम बिहार में चुनाव लड़ रहे हैं

10. WWW.HINDIKAHANIHINDIKAVITA.COM, कहानी, टॉर्च बेचनेवाला

11. WWW.EGYANKOSH.AC.IN,हरिशंकर परसाई

12. WWW.HINDIONLINEJANKARI.COM, कोट्स, हरिशंकर परसाई

13. WWW.RACHNAKAR.ORG, लेख, हरिशंकर परसाई के व्यंग्य : विविध आयाम, दीपक पांडे

14. WWW.THEWIREHINDI.COM, लेख, समाज की रग-रग से वाकिफ़ व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई, अदिति भारद्वाज

15. WWW.CHALTAPURZA.COM, लेख, जबलपुर की सड़कों पर बेचा करते थे अपनी पत्रिका

16. WWW.UDANTI.COM, लेख, व्यंग्य के माध्यम से समाज के शत्रुओं से जूझता हूँ , गिरीश पंकज

17. WWW.KATHACHAKARA.BLOGSPOT.COM, व्यंग्य यात्रा, हिंदी व्यंग्य की एकमात्र पत्रिका

18. WWW.APNIMAATI.COM , लेख, जीवन बड़ा डिप्लोमेटिक किस्म का है, डॉ. राजेश चौधरी

19. WWW.APNIMAATI.COM , लेख, 'जैसे उनके दिन फिरे' ,में अभिव्यक्त समकालीन जीवन की विसंगतियाँ, डॉ. महावीर सिंह वत्स और डॉ. राजबीर वत्स

20. WWW.APNIMAATI.COM, लेख, हिंदी कहानियों में चित्रित वैश्या नारी का जीवन, सालिम मियाँ

21. WWW.HINDISAMAY.COM , कविता, मैं तुम लोगों से दूर हूँ , मुक्तिबोध

22. WWW.HINDISAMAY.COM, लेख, शिवशंभु के चिट्ठे, बालमुकुंद गुप्त

23. WWW.HINDWI.ORG, बिहारी सतसई, डॉ.हरिचरण शर्मा

।

24. WWW.AMARUJALA.COM, काव्य, जब बिहारी ने अपने दोहे से राजा को समझाया

25. WWW.HINDINEWS18.COM , पुस्तक समीक्षा, स्वांग, ज्ञान चतुर्वेदी

26. WWW.TPSGNEWS.COM, लेख, अप्प दीपो भवः, नीलेश वैध

27. WWW.PREMCHANDWIKIPEDIA.COM

28.WWW.PREMCHAND.KAHANI.ORG.COM, कहानी, प्रेमचंद की रचनाएँ, पंच परमेश्वर

29. WWW.GLOSBE.COM, सूक्ति, हिंदी परिभाषा, व्याकरण उच्चारण व उदाहरण

30. WWW.IGNITED.IN

31. WWW.HINDIKALA.COM

32. WWW.GADHYAKOSH.ORG.COM

33.WWW.ABHIVYAKTI-HINDI.ORG

34.WWW.HINDIGURUJEE.COM

35.WWW.SAHITYAKUNJ.NET.COM

36.WWW.SAMVEDNASPARSH.BLOGSPOT.COM

37.WWW.SCROLLDROLL.COM

38. HTTPS:M.WIKIPEDIA.ORG/WIKI

39.WWW.MOVIEDAILOUGESINHINDI.BLOGSPOT.COM

परिशिष्ट

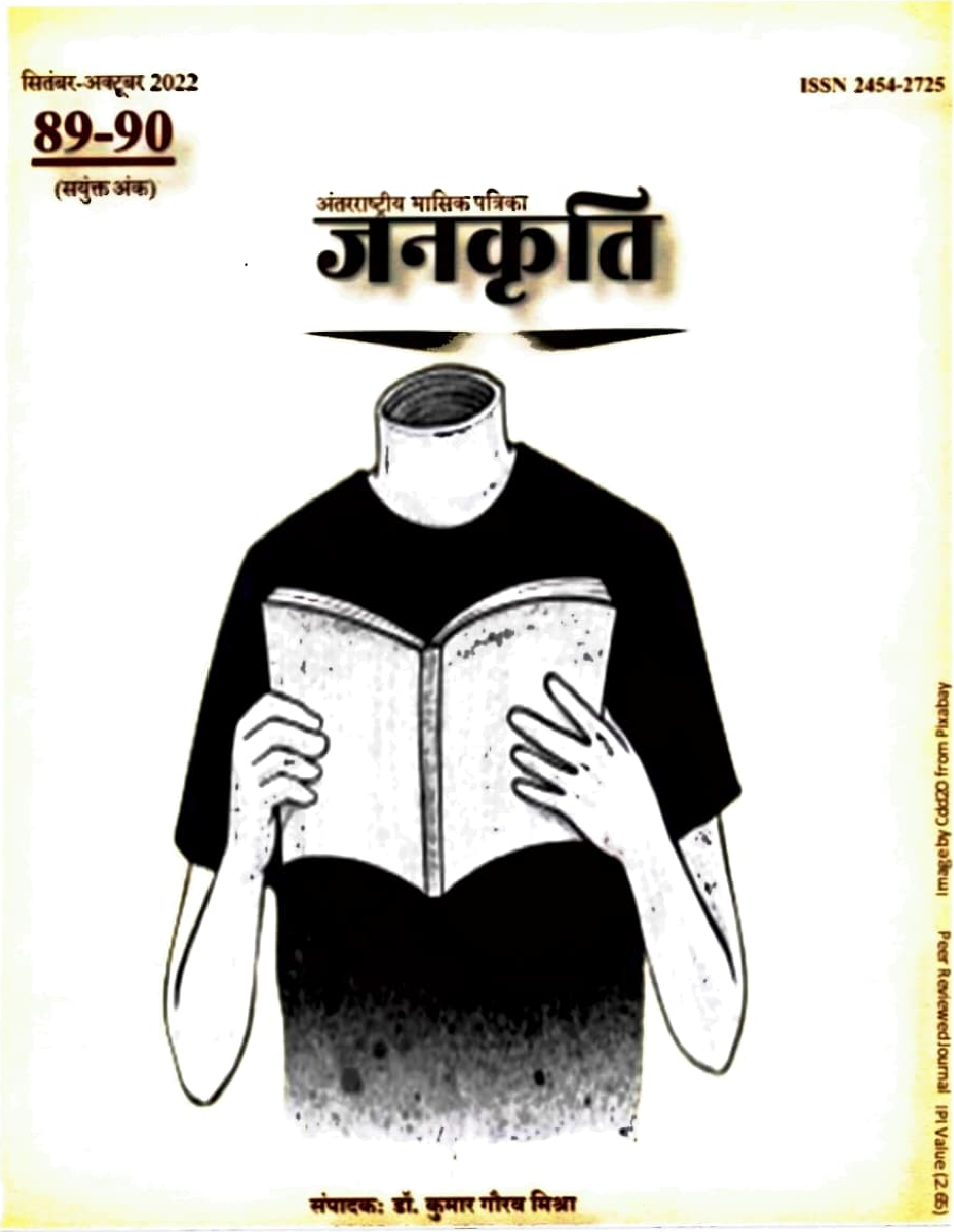

सितंबर-अक्टूबर 2022
89-90
(सयुंक्त अंक)
ISSN 2454-2725
अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका
जनकृति
Image by Cdd20 from Pixabay
Peer Reviewed Journal
IPI Value (2.65)
संपादक: डॉ. कुमार गौरव मिश्रा

जनकृति

अंतरानुशासनिक पूर्व- समीक्षित द्विभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका

वर्ष 8, अंक 89-90 **सितंबर-अक्टूबर 2022 (सयुंक्त अंक)**

परामर्श मंडल

डॉ. सुधा ओम ढींगरा, प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय, प्रो. रमा, डॉ. हरीश नवल, डॉ. हरीश अरोड़ा, डॉ. प्रेम जन्मेजय, डॉ. कैलाश कुमार मिश्रा, प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, प्रो. कपिल कुमार, प्रो. जितेंद्र श्रीवास्तव प्रो. रत्नेश विश्वक्सेन

संपादक

डॉ. कुमार गौरव मिश्रा

(सहायक प्रोफ़ेसर, झारखंड केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

सहायक संपादक

डॉ. पुनीत बिसारिया

(एसोसिएट प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश)

संपादन मण्डल/विशेषज्ञ समिति

डॉ. सदानन्द काशीनाथ भोसले (प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विद्यापीठ , महाराष्ट्र)

डॉ. दीपेन्द्र सिंह जाड़ेजा (प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, महाराजा सयाजीराव बड़ौदा विश्वविद्यालय, वड़ोदरा)

डॉ. नाम देव (प्रोफ़ेसर, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ. प्रज्ञा (प्रोफ़ेसर, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ. रचना सिंह (एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ. रूपा सिंह (एसोसिएट प्रोफ़ेसर, बाबु शोभा राम गोवेरमेंट आर्ट कॉलेज, राजस्थान)

डॉ. पल्लवी (सहायक प्रोफ़ेसर, तेजपूर विश्वविद्यालय, असम)

डॉ. मोहसिन खान (प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, जेएसएम कॉलेज, रायगढ़, महाराष्ट्र)

डॉ. अखिलेश कुमार शर्मा (सहायक प्रोफ़ेसर, मिजोरम विश्वविद्यालय, मिजोरम)

डॉ. प्रवीण कुमार (सहायक प्रोफ़ेसर, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश)

डॉ. मुन्ना कुमार पाण्डेय (एसोसिएट प्रोफ़ेसर, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी (सहायक प्रोफ़ेसर, जेआरएन राजस्थान विद्यापीठ, राजस्थान)

डॉ. अंबिकेश त्रिपाठी (सहायक प्रोफ़ेसर, गांधी एवं शांति विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

डॉ. ज्ञान प्रकाश (सहायक प्रोफ़ेसर, बिहार)

संपादन सहयोग

श्री चन्दन कुमार (शोधार्थी, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा)

राकेश कुमार (शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)

संस्थापक सदस्य

कविता सिंह चौहान (मुंबई)

डॉ. जैनेन्द्र कुमार (बिहार)

अंतरराष्ट्रीय सदस्य

प्रो. अरुण प्रकाश मिश्रा (स्लोवेनिया), डॉ. इंदु चंद्रा (फ़िजी), डॉ. सोनिया तनेजा (स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी), डॉ. अनिता कपूर (अमेरिका), राकेश माथुर (लंदन), रिद्मा (श्री लंका), मीना चोपड़ा (कैनेडा), पूजा अनिल (स्पेन)

जनकृति अव्यवसायिक
सितंबर-अक्टूबर 2022 (सयुंक्त अंक) अंक 89-90, वर्ष 8

सहयोग राशि : 60 रुपये (वर्तमान अंक)
150 रुपये (संस्थागत)

व्यक्तिगत सदस्यता : 800 रुपये (वार्षिक)
3000 रुपये (पंचवर्षीय)
5000 रुपये (आजीवन)

संस्थागत सदस्यता : 1200 रुपये (वार्षिक)
6000 रुपये (पंचवर्षीय)
10000 रुपये (आजीवन)

(डिजिटल प्रति सदस्यता)

बैंक खाता विवरण : Account holder's name- Kumar Gaurav Mishra
Bank name - Punjab National Bank
Account type – saving account
Account no. 7277000400001574
IFSC code- PUNB0727700

पत्र व्यवहार : फ्लैट- जी 2, बागेश्वरी अपार्टमेंट
आर्यापुरी, रातू रोड़, रांची, झारखंड
पिन कोड: 834001, संपर्क- +918805408656

नोट : प्रकाशित रचनाओं से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।
सम्पादन पूर्णतः अवैतनिक है।

ध्यानार्थ : अकादमिक क्षेत्र में शोध की गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप जनकृति में शोध आलेख प्रकाशित किए जाते हैं। शोध आलेखों का चयन विभिन्न क्षेत्रों के विषय विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है, जो विषय की नवीनता, मौलिकता, तथ्य इत्यादि के आधार पर चयन करते हैं। इसके अतिरिक्त पत्रिका में साहित्यिक रचनाएँ, वैचारिक लेख, साक्षात्कार एवं पुस्तक समीक्षा भी प्रकाशित होती है। जनकृति के माध्यम से हम सृजनात्मक, वैचारिक वातावरण के निर्माण हेतु प्रतिबद्ध है।

JANKRITI
Interdisciplinary Peer-Reviewed Bilingual International Monthly Magazine
Editor: Dr. Kumar Gaurav Mishra
Language: Bilingual (Hindi & English)
Publisher: JANKRITI
ISSN: 2454-2725
Website: www.jankriti.com
Email: jankritipatrika@gmail.com

हरिशंकर परसाई का व्यंग्य और 'विकलांग श्रद्धा का दौर' की विविध दिशाएँ

रोहित कुमार
एम. फिल शोधार्थी
हैदराबाद विश्वविद्यालय, तेलंगाना
मेल आई डी- Scholarrohit1404@gmail.com
मो. 9582452338

शोध सारांश

व्यंग्य समाज की वह अनिवार्यता है जो समाज से विसंगतिबोध को संगति में, अनमेल को उचित मेल में बिठाकर और अनुचित को उचित करने के लिए प्रतिबद्ध है। व्यंग्यकार व्यंग्य के माध्यम से असहाय के पक्ष में खड़ा होकर उसे न्याय दिलाने के लिए चुना गया है। जैसे राजनीति और कानून के क्षेत्र में नेताओं व पुलिसकर्मियों की यह जिम्मेदारी है कि समाज के नागरिकों को न्याय दिलाने में उनकी भूमिका है ठीक ऐसे ही साहित्यिक दृष्टि से सामाजिक न्याय दिलाने की सबसे ज्यादा जिम्मेदारी व्यंग्यकार की है। क्योंकि साहित्य की तमाम विधाओं की तुलना में 'व्यंग्य' विधा ज्यादा जिम्मेदार और गम्भीर है। इस विधा का प्रयोग कभी सीधे-साधे रूप में तो कमोबेश वक्र रूप में ही किया जाता है। इसलिए इसे वक्रोक्ति सिद्धान्त के तहत भी जोड़कर देखा जाता है या व्यंजना शब्दशक्ति के साथ भी। परसाई साहित्य इस विधा का आधार स्तम्भ है, मील का पत्थर है, जहाँ से इस विधा को एक नई ऊर्जा और नई शक्ति मिलती है। उसके खोए हुए अस्तित्व की रक्षा परसाई ने की है। जिस साहित्य को उपेक्षित विधा समझा जाता था आज वह मुख्यधारा में स्थापित है। अपने 'विकलांग श्रद्धा का दौर' संग्रह में परसाई उस राजनैतिक विसंगतिबोध की चर्चा की है जिसने भारत देश को बुरी तरह तोड़ दिया था। सारा लोकतंत्र पिट चुका था और समाज चौपट हो चला था। इसलिए परसाई को ऐसी श्रद्धा को दिखाने की जरूरत महसूस हुई जो कृत्रिम थी, जो अपाहिज हो चली थी। व्यंग्य का यह सिलसिला उनके पूरे साहित्यिक जीवन में विविध रूपों में देखने को मिलता है इसलिए वह इस विधा के पितामह कहे जाते हैं।

बीज शब्दः *समाज, व्यंग्य, प्रयोग, शब्द शक्ति, मुख्यधारा*

शोध आलेख

'व्यंग्य' शब्द संस्कृत का शब्द है जिसका प्रयोग कभी शब्द-शक्ति के अंतर्गत हुआ तो कभी व्यंग्योक्ति के अर्थ में। यह एक ऐसी साहित्यिक कला है जिसमें किसी का उपहास उड़ाने अथवा निंदा करने वाला किसी व्यक्ति, संस्था, प्रशासन इत्यादि की विसंगतियों को उजागर करता है। यह उपहास सांकेतिक चित्र अथवा कार्टून के माध्यम से भी उड़ाया जाता है। व्यंग्य अपने में एक विद्रोही प्रवृति, एक आक्रामक शैली, एक गम्भीर स्थिति व चेतनावान कला तथा स्वतंत्र विधा है। यह जीवन से साक्षात्कार कराने वाली कला है। इसलिए व्यंग्य के प्रधान स्तम्भ "हरिशंकर परसाई ने लिखा है "व्यंग्य जीवन का साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों-मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है।" 1 तो वहीं "प्रभाकर माचवे" ने "व्यंग्य को पोज़ या अंदाज़ न कहकर एक आवश्यक अस्त्र माना है।" 2 व्यंग्य का जन्म विसंगतिबोध से ही सम्भव है। यदि समाज में विसंगतियाँ मौजूद न हो तो व्यंग्य का वजूद ही संकट में पड़ जायेगा। इस विसंगति में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक अनेक विभेद शामिल हैं जैसे- जातिगत अन्याय, धार्मिक असमानता, रोजीरोटी की चिंता, प्रेम सम्बन्धी प्रपंच, पत्रकारिता में बढ़ता पूँजीवाद, पाखंड, देशप्रेम के नाम पर साम्प्रदायिकता, रिश्वतखोरी, दहेज प्रथा, भ्रष्ट न्यायपालिका, राजनीति में भाई-भतीजावाद इत्यादि। हरिशंकर परसाई ने विसंगति को व्याख्यायित के करते हुए कहा है -" संगति के कुछ माने बने हुए होते हैं- जैसे इतने बड़े शरीर में इतनी बड़ी नाक होनी चाहिए। उससे बड़ी होती है तो हँसी आती है। आदमी आदमी की बोली बोले, ऐसी संगति मानी हुई है। वह कुत्ते जैसा भौंके तो यह विसंगति हुई और हँसी का कारण।" 3 एक तरफ हरिशंकर परसाई का व्यंग्य केवल मार करने वाला लेखन ही नहीं, बल्कि उसमें छिपी चिंता और मानवीय गुण भी है तो दूसरी तरफ उनके व्यंग्य में छिपी विविधताएँ हैं। इस तर्क के आधार पर हरिशंकर परसाई का 'विकलांग श्रद्धा का दौर' निबंध संग्रह विसंगतियों व उससे पैदा हुई विविध व्यंग्यात्मक कला का कोष है। इसमें प्रमुखता तो राजनीतिक व्यंग्यों को ही मिली हैं जोकि आपातकाल के लगने से लेकर उसके हटने तक, कॉंग्रेस सरकार के पतन से लेकर जनता पार्टी के विजयी होने तक की एक यात्रा शामिल है। परन्तु कुछ सामाजिक व व्यंग्य के दूसरे प्रकार भी इस संग्रह के अभिन्न हिस्से हैं। लिहाज़ा इस दृष्टि से यह संग्रह व्यंग्य की विविध दिशाओं को छूने में सफल रहा है।

हिंदी व्यंग्य विधा में जितनी ख्याति और प्रसिद्धि अकेले परसाई को मिली है शायद ही इतनी प्रसिद्धि किसी दूसरे व्यंग्यकार को मिली हो। यह व्यंग्य विधा के आधार स्तंभ कहे जाएँ तो अनुचित नहीं होगा। अपनी सीधी-सादी भाषा और छोटे से छोटे विषय से व्यंग्य उत्पन्न करने में इनका कोई सानी नहीं। जिस विधा के प्राचीन तत्व खासकर कबीर में दिखते हैं इसका बहुत प्रभाव हरिशंकर परसाई के व्यक्तित्व पर देखने को भी मिलता है। व्यंग्य विधा कबीर से शुरू होती हुई भारत की आज़ादी के पूर्व तक धीमी चाल में चली आ रही थी, मानो कछुए की तरह। लेकिन उसे स्वातन्त्र्योत्तर भारत में हरिशंकर परसाई ने तेजी दी जिससे व्यंग्य विधा में अनेकों रचनाएँ होने लगी और उसे सफलता मिली। परसाई का व्यंग्य उनके व्यक्तित्व के समान ही बहुरंगी है। जैसे उनमें संवेदनशीलता और क्रांतिकारिता व निर्भीकता के तत्व मौजूद हैं वैसे ही उनका व्यंग्य भी समाज के असहायों के पक्ष में और शोषण करने वालों के खिलाफ है। इनका ज्वालामुखी-सा विस्फोट, कोयले के अंगारों-सी लालिमा मध्यप्रदेश के खंडवा से जबलपुर आये उस नवयुवक का तेज था जो भारत छोड़ो आंदोलन के अगुवा के साथ हो लिया था। वे कहते हैं:- ' जबलपुर में मेरा साथ उन लोगों से हो गया था जो साहित्य और राजनीति के क्षेत्र के बुलंद लोग थे तथा 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के हीरो। वे उग्र समाजवाद के साथ कॉग्रेस से बाहर आ गए थे। मैं उनके साथ हो लिया था।' 4 हरिशंकर परसाई की इस वैचारिकी में अनेकों ग्रन्थों, व्यक्तियों, लेखकों आदि का अविस्मरणीय योगदान रहा है। परसाई का व्यंग्य विसंगतिमय जीवन की कोख के अंदर जाकर सत्य का पता लगाना और उसी रूप में पेश करने से रचा गया है। इस जीवन में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश की विसंगति और मिथ्याचार व्यंग्य के लिए अनिवार्य तत्व बनते हैं। 5

विकलांग श्रद्धा का दौर

हरिशंकर परसाई का यह संग्रह 'विकलांग श्रद्धा का दौर' मुख्यतः राजनीतिक गतिविधियों से संलग्न है। इस निबंध का पूरा माहौल 1975 से लेकर 1979 तक की अवधि का है। जिसमें मुख्यतः आपातकाल का लगना, उस बीच जनता और विपक्षियों द्वारा उसका विरोध किया जाना, कई राजनैतिक-ग़ैर राजनैतिक लोगों को, आम जनता को, समाज के बुद्धिजीवियों को बिना किसी वॉरेंट के और बिना किसी कारण से जेल में ठूँस दिया था। सरकार का विरोध न हो सके इसके लिए प्रेस की आज़ादी पर रोक लगा दी थी। इससे न राजनीति बच पाई, न समाज, न विधानपालिका और न ही न्यायपालिका। परिणामस्वरूप भरसक रोष और विरोध प्रदर्शन व विपक्षियों

द्वारा आंदोलित होने के पश्चात तत्कालीन इंदिरा सरकार गिरी और पाँच ग़ैर-कम्युनिस्ट दलों द्वारा मिलकर बनी गठबंधन सरकार जिसको देश चलाने का मौका दिया गया। इसका नाम "जनता पार्टी" रखा गया। इसका नेतृत्व मोरारजी देसाई कर रहे थे। इस सरकार और आपातकाल से मिली आज़ादी को 'दूसरी आज़ादी' कहा गया। इस शीर्षक से ही पता चलता है कि तत्कालीन वातावरण एक झूठी और धोखेबाज़ी प्रवृत्ति का हो चुका था। व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के प्रति श्रद्धाभाव ऐसा था जिसपर आँख मूँदे विश्वास करना अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना हो। चूँकि देश में हर जगह राजनैतिक-सामाजिक विकलांगता छा गयी थी इसके कारण पूरा एक दौर ही विकलांग हो चुका था। एक जगह लेखक कहते हैं "आत्म-पवित्रता के दंभ के इस राजनीतिक दौर में देश के सामयिक जीवन में सबकुछ टूट-सा गया। भ्रष्ट राजनीतिक संस्कृति ने अपना असर सब कहीं डाला। किसी का किसी पर विश्वास नहीं रह गया था-न व्यक्ति पर न संस्था पर। कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका का नंगापन प्रकट हो चुका।" 6 और इसी नंगेपन का वर्णन परसाई ने इस निबंध में किया है। ऐसे तो 'श्रद्धा' का अर्थ किसी सम्मानीय या पूजनीय के प्रति व्यक्त की जाने वाली आस्था व विश्वास से है। परन्तु लेखक हमारा ध्यान ऐसी आस्था का दर्शन कराता है जो अंगहीन हो चुकी है, जिसमें दीमक लग चुका है। और इसकी चपेट में पूरा एक दौर ही आ गया है इसलिए लेखक ने बड़ी सावधानी से 'दौर' शब्द का प्रयोग किया है। काम के लिए या मजबूरी में 'गधे को भी बाप बनाना पड़ता है' जैसी उक्ति इस समय समाज में खूब ज़ोर-शोर पर थी। एक दूसरे पर कीचड़ उछालने से लेकर झूठ, फरेब, नैतिक मूल्यों का ह्रास बाकी सबकुछ हुआ। जो नहीं हुआ तो बस आदर्श की स्थिति, सदाचारी वृति, लोगों का एक दूसरे पर अगाध विश्वास और बाकी बातें। इसलिए लेखक ने कहा है - "इस दौर में चरित्रहनन भी बहुत हुआ। वास्तव में यह दौर राजनीति में मूल्यों की गिरावट का था। इतना झूठ, फरेब, 'छल पहले कभी नहीं था। दगाबाजी संस्कृति हो गई थी। दोमुँहापन नीति। बहुत बड़े-बड़े व्यक्तित्व बौने हो गए। श्रद्धा सब कहीं से टूट गई।" 7

शिक्षा व झूठे सम्मान की दिशा

इस विकलांगता का असर समाज के उस वर्ग पर भी हुआ जिनका काम कलम चलाकर समाज को चेतनावान बनाना है। जिस देश का कलमगीर भी झूठी और दिखावे की जिंदगी जीने के लिए ललायित होने लग जाय उस देश का पाठक किस दिशा में आगे बढ़ने लगेगा यह चिंता का विषय बन जाता है। इससे लेखक भी नहीं बच सके। लेखक निबंध में कहते हैं :- " वैसे चरण छूना अश्लील कृत्य की तरह

अकेले में ही किया जाता है। पर वह सज्जन सार्वजनिक रूप से कर बैठे, तो मैंने आसपास खड़े लोगों की तरफ गर्व से देखा- तिलचट्टो, देखो मैं श्रद्धेय हो गया। तुम घिसते रहो कलम... पर तभी उस श्रद्धालु ने मेरा पानी उतार दिया। उसने कहा, "अपना तो नियम है कि गौ, ब्राह्मण, कन्या के चरण जरूर छूते हैं।" यानी उसने मुझे बड़ा लेखक नहीं माना था। बाह्मन माना था।" 8 सिर्फ इतना ही नहीं। उस देश के शोधकर्ताओं ने क्या ही खोज की होगी जो जी-हुजूरी में लग गया हो। परसाई कहते हैं :- "डॉक्टरेट अध्ययन और ज्ञान से नहीं, आचार्य कृपा से मिलती है।" 9 इसके लिए न सिर्फ़ जी-हुजूरी करनी पड़ती है बल्कि नम्बर पाने या डमिशन लेने तक के लिए टीचर्स के आगे दुम हिलानी पड़ती है, विचारधारा अपनानी पड़ती है, झंडा उठाना पड़ता है। इस विकलांग श्रद्धा में व्यक्तियों ने दिखावे की उसी संस्कृति को अपनाया जिसपर से हरिशंकर परसाई झूठी शान का पर्दा उठाते हैं। कोई आपकी पद-प्रतिष्ठा व आपकी कामयाबी पर कोई ताली न पीटे तब आपको अपनी शिक्षा और टेलेंट की ढपली पीटनी होगी, आपने जितने मैडल जीते हैं उन्हें घर के बाहर या ऑफिस के गेट पर नजरबट्टू की तरह लटकाना होगा। क्योंकि 'जो दिखता है वो बिकता है।' पर आपको अपनी आत्मा बेचनी होगी। इसलिए परसाई ने कहा है :- "मेरे ही शहर के कॉलेज के एक अध्यापक थे। उन्होंने अपने नेमप्लेट पर खुद ही 'आचार्य' लिखवा लिया था। मैं तभी समझ गया था कि इस फुहड़पन में महानता के लक्षण हैं। " 10 अर्थात आजकल नाम का आदर होता है काम नहीं। यही विकलांग श्रद्धा है, यही झूठी प्रतिष्ठा है। नेमप्लेट की बात को आगे रखते हुए परसाई कहते हैं :- मैं भी अगर नेमप्लेट में नाम के आगे 'पंडित' लिखवा लेता तो कभी का 'पण्डितजी' कहलाने लगता।" 11 कहीं नेमप्लेट लगवाकर आपको सम्मान मिलता है तो कभी आपकी बीमारी के बहाने आपके प्रति जो अपनापन दिखाया जाता है उसे देखकर आप भी चौंक जाते हैं। ऐसा ही युग आपातकाल के समय था जब बीमारी के मौसम ने देश में कई लोगों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। लेखक भी इससे अछूता नहीं रहा। वह कहते हैं :- "जानता हूँ, देश में जो मौसम चल रहा है, उसमें श्रद्धा की टाँग टूट चुकी है तभी मुझे भी यह विकलांग श्रद्धा दी जा रही है। लोग सोचते होंगे- इसकी टाँग टूट गई है। यह असमर्थ हो गया। दयनीय है। आओ, इसे हम श्रद्धा दे दें। हाँ, बीमारी में से श्रद्धा कभी-कभी निकलती है।"12 अतः कहा जा सकता है कि देश की इस विकलांग श्रद्धा पर परसाई ने बड़ी मार्मिक रूप से आघात किया है। और देश को सचेत रहने की मंशा जाहिर की है।

राजनीतिक दिशा

हरिशंकर परसाई के सबसे ज्यादा व्यंग्य राजनीति पर लिखे गए हैं। वह राजनीति को मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी निर्णायक शक्ति मानते हैं। उनका मानना है कि 'राजनीति हमारे जीवन का एक अंग है, इससे अलग होकर रहने की बात सोची ही नहीं जा सकती। क्योंकि जो लोग यह कहते हैं कि उनकी कोई राजनीति नहीं, वह भूल करते हैं। राजनीति ही हमारा भविष्य तय करती है, इसे संपूर्ण देश का भाग्य-विधाता कहा जा सकता है। क्योंकि वोट के आधार पर ही किसी की सरकार बनती है और वह शासन चलाता है। इसलिए परसाई ने राजनीति को जीवन का अभिन्न हिस्सा माना है। परसाई ने 'देशवासियों के नाम सन्देश' में मोरारजी देसाई सरकार की पंचवर्षीय योजना पर व्यंग्य किया है। जहाँ एक निश्चित समय में सरकार को देशहित में जितनी योजनाएँ, जितने काम, जितने प्रोजेक्ट शुरू करने चाहिए वह अधूरे रह जाते हैं। बस टाइम खिंचता चला जाता है और कहते रहते हैं 'वर्क इन प्रोग्रेस, कार्य प्रगति पर है।' इसका एक उदाहरण देखिए :- "देश के सामने बहुत समस्याएँ हैं। पिछली सरकार ने समस्याएँ-ही-समस्याएँ छोड़ी हैं। हम भी तो पिछली सरकार की छोड़ी हुई समस्या हैं। तो देश की सबसे बड़ी समस्या गरीबी और बेकारी है। हम दस वर्षों में गरीबी और बेकारी खत्म कर देना चाहते हैं। मगर आप कहेंगे कि यह बहुत जल्दी है। बीस साल में खत्म होना चाहिए। खैर, हम समझौता कर लेते हैं-पन्द्रह सालों में गरीबी और बेकारी मिटाएँगे। आप भी खुश, हम भी खुश। पर मैं आपसे साफ कहे देता हूँ कि आप कितना भी जोर डालें, पन्द्रह साल से एक दिन भी ऊपर हम गरीबी और बेकारी नहीं चलने देंगे। आपको भला लगे, चाहे बुरा।" 13 इसके अतिरिक्त 'विकलांग राजनीति' में राजनेताओं द्वारा चुनाव जीतने के लिए किसी भी हदतक गिरने और कुछ भी टुच्ची हरकत कर-गुजरने तक की भौंडी हरकत दिखाई है। चुनाव जीतने के लिए किस तरह से दलितों, आदिवासियों, विकलांगों आदि का इस्तेमाल किया जाता है यह हमें बताने की जरूरत नहीं। तो वहीं 'एक अपील का जादू' में दिखाया है कि देश की सभी समस्याएँ, सभी योजनाएँ बस नारों और अपीलों तक ही सीमित है। उनका वास्तविक जीवन से दूर-दूर का भी नाता नहीं। बढ़ती मंहगाई केवल भाषणों में घटती हुई दिखती है, ज़मीनी हालत कुछ और ही बता रही है। इसी अपील पर चुटकी लेते हुए परसाई कहते हैं :-" प्रधानमंत्री ने गुस्से से कहा, "बको मत। तुम कीमतें घटवाने आए हो न ! मै व्यापारियों से अपील कर दूँगा ।" एक ने कहा, "साहब, कुछ प्रशासकीय कदम नहीं उठाएँगे ?" दूसरे ने कहा, "साहब, कुछ अर्थशास्त्र के भी तो

नियम होते हैं।" प्रधानमंत्री ने कहा, "मेरा विश्वास न अर्थशास्त्र में है, न प्रशासकीय कार्यवाही में।.... रेडियो से अपील हुई। दूसरे दिन कीमतें एकदम घटा दी गई हैं। जगह-जगह व्यापारी नारे लगा रहे थे-नैतिकता ! मानवीयता ! वे इतने जोर से और आक्रामक ढंग से नारे लगा रहे थे कि लगता था, चिल्ला रहे हैं-हरामजादे ! सूअर के बच्चे ! और देखते ही देखते जितनी भी वस्तुएँ अपने पुराने रूप में आ गयी। इतना भारी भरकम और तीख़ा व्यंग्य और कहाँ मिलेगा। यही परसाई की वैचारिकी है जहाँ यथार्थ को इतनी कलात्मकता के साथ पेश किया जाता है जिससे उसका मर्म पाठक तक सीधे पहुँचता है।

धार्मिक दिशा

'सत्य साधक मंडल' निबंध में हरिशंकर परसाई ने किसी भी धर्म की ज्ञान, दर्शन, ईश्वर, मूल्य, सत्य आदि विषयों की झूठी और छली क्रिया पर प्रहार किया है। समाज में धर्म के ठेकेदार और कथावाचकों ने किस तरह से पाखंड के नाम पर अपनी दुकान चला रखी है ऐसी विसंगतिमय संरचना पर व्यंग्य कसा है। परसाई ने निबंध में केवल 'सत्य की खोज' की तरफ ही इशारा नहीं किया उसके अतिरिक्त भी बहुत-सी बातें हैं जैसे धर्म-प्रचार का मसला हो या प्रसाद का प्रलोभन। और इस प्रचार के क्या नुकसान हैं इस पर परसाई कहते हैं "प्रचार हो जाता तो हमारे सत्य को कोई पार्टी झपट लेती।" 14 भारतीय समाज या राजनीति में प्रचार का विशेष जोर रहता है। समाज को सत्य से मतलब न होकर प्रचार आधारित सत्य की जरूरत है। चाहे वह टीवी से मिल जाये, पोस्टर से मिल जाए या बड़े-बड़े होर्डिंग बोर्ड से। परन्तु प्रचार होना चाहिए एकदम खरा। इसलिए परसाई ने एक जगह लिखा भी है "सत्य को भी प्रचार की आवश्यकता होती है अन्यथा वह झूठ मान लिया जाता है।" सत्य या धर्म आदि के प्रति उदासीनता व आलस्य भी समाज मे बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही है इसलिए लेखक ने एक जगह लिखा है - सत्य पास ही मिलता है तो मैं उसे ग्रहण कर लेता हूँ। दूर नहीं जाता सत्य के लिए। उसमें रिक्शा-किराया लग जाता है।" 15 दूर चलना उनके लिए दूभर हो जाता है। जैसे कई मीलों का पहाड़ चढ़ना हो या घने जंगल में कांटेदार रास्ते पर गमन करना हो। ऐसे ही बिंदु परसाई के व्यंग्य के निशाने बनते हैं। प्रसाद देना और प्रवचन देना कई बार सीधे अर्थ में नहीं होता। प्रवचन देने वाला अपनी विचारधारा को आप पर थोपकर आपका माइंड वॉश करना चाहता है। परसाई ने अपनी कहानी 'टॉर्च बेचनेवाला' में ऐसे ही पाखंडियों का पर्दाफाश किया है। जहाँ वह अपनी कम्पनी का टॉर्च बेचकर आपको गुमराह करते हैं। कहानी का अंत ऐसे खत्म होता है , उसने कहा

- "धंधा वही करूँगा, यानी टार्च बेचूँगा । बस कंपनी बदल रहा हूँ । " यही काम आजकल साधु-संत , महात्मा, कथावाचक कर रहे हैं। धर्म और ईश्वर का झूठा डर दिखा कर एक-दूसरे को लड़वा रहे हैं, अपनी दुकान का टोर्च बेच रहे हैं। इससे बचने की जरूरत है और समझने की जरूरत है कि सामने वाला कहीं अपनी कम्पनी का टॉर्च तो नहीं बेच रहा।

सामाजिक दिशा

परसाई का सामाजिक व्यंग्य विसंगतियों के सभी आयामों को परिलक्षित करता है। इसमें कहीं दहेज प्रथा की बू आती है तो कहीं समाज में बढ़ती अश्लीलता और उसको नष्ट करने की झूठी कोशिशें। कहीं मनुष्य के आचरण में कुत्तापन आते जा रहा है तो कहीं वर्तमान के जातिगत समीकरण इत्यादि। अपने 'अश्लील पुस्तकें' निबंध में परसाई ने समाज के उन ठेकेदारों को उधेड़ता है जो सफ़ाई का जिम्मा लेते हैं लेकिन उसकी जगह खुद गंदगी मचाते रहते हैं। हम ऐसे देश में जी रहे हैं जहाँ लिखा होगा यहाँ कूड़ा डालना मना है वहाँ सबसे ज्यादा कूड़ा मिलेगा। जहाँ लिखा होगा 'यहाँ गुटखा थूकना मना है वहाँ ऐसी एब्सट्रैक्ट आर्ट मिलेगी कि आप समझ नहीं पाएँगे की यह दौड़ता हुआ कुत्ता है, उड़ती हुई चिड़िया है, नाचता हुआ मोर।' ऐसे ही वरुण ग्रोवर ने एक पोलिटिकल कॉन्क्लेव में यह उदाहरण दिया था कि , "जहाँ लिखा होता है कुत्ते के पूत यहाँ मत मूत। लेकिन हमारा जो आर्यभट्ट का दिमाग है कि जैसे ही कहीं नाइंटी डिग्री का कोण दिखा की अंदर से आवाज़ आएगी थूक-थूक साले थूक। " इसलिए समाज से गंदगी हटाने वालों के विपरीत काम दिखने पर परसाई ने उन्हें व्यंग्य का लक्ष्य बनाया है। इस निबंध में जिस टोली ने यह जिम्मा लिया था कि समाज से अश्लील पुस्तकें वह जलाकर नष्ट कर देंगे परन्तु ऐसा कभी हुआ ही नहीं। उस टोली के प्रत्येक व्यक्ति और उसके परिजनों ने भी उस किताब को चाव से पढ़ा इसलिए परसाई को अंत मे यह कहना पड़ा " अश्लील पुस्तकें कभी नहीं जलाई गई। वे अब अधिक व्यवस्थित ढंग से पढ़ी रही हैं। " 16 अपने 'लड़ाई' निबंध में हरिशंकर परसाई ने समाज के अमानुषिक व्यवहार पर व्यंग्य किया है। समाज में लोग किस तरह जानवरों की तरह लड़ रहे हैं, उनका व्यक्तित्व कुत्तों की तरह होता जा रहा है जो बिना मतलब के दूसरों पर भौंकना शुरू करने लगा है ये सारे बिंदु परसाई के व्यंग्य के लक्षक बनते हैं। निबंध में परसाई ने लिखा है , " यों चोपड़ा साहब और साहनी साहब का स्वभाव और व्यक्तित्व ऐसा था कि उन्हें अलग से कुत्ता रखने की जरूरत नहीं थी। वे ही काफी थे।" 17 कथा में चोपड़ा साहब और साहनी साहब के कुत्तों के बीच लड़ाई होती हुई

दोनों मालिक की लड़ाई बन जाती है और दोनों एक-दूसरे की सारी पोलपट्टी खोल कर रख देते हैं। बात बढ़ते-बढ़ते गाली गलौज पर आ जाती है -कहे देता हूँ, इधर तुम्हारा कुत्ता आया तो गोली मार दूंगा। -और तुम्हारा कुत्ता उधर आया तो उसे गोली मार दूँगा और तुम्हें भी। -तू गोली मारेगा कुत्ते की औलाद ! -तू सूअर के 18 समाज में भी ऐसा ही होता है। मुद्दा कुछ और होता है और कहीं ओर ट्रांसफर हो जाता है। अंत में हरिशंकर परसाई ने बड़े व्यंग्यात्मक रूप में कथा का अंत किया गया है, - वहाँ भीड़ लग गई थी। एक राहगीर ने एक आदमी से पूछा- क्यों जी, मामला क्या है? उस आदमी ने जवाब दिया- कुछ नहीं जी, कुत्तों की लड़ाई है! 19

'चौबे जी की कथा' में सामाजिक कलंक 'दहेज प्रथा' से जुड़े कई पहलुओं को छुआ है। इसमें व्यक्ति की पद-प्रतिष्ठा, उसकी सरकारी नौकरी, लड़का-लडक़ी का रंग-रूप, कद काठी इत्यादि आपका विवाह और दहेज का रेटलिस्ट तय करती है। समाज में दहेज जैसी कुप्रथा के बहाने आज कोई भी पदाधिकारी विशेषकर सरकारी पद का मालिक अपने से छोटे पदाधिकारी को अपना जीवनसाथी बनाने से कतराने लगा है। निबंध का यह सबसे बड़ा बिंदु है जिसका रहस्य कथा के अंत में खुलता है। उसकी सालों की पढ़ाई एक झटके में पद के आगे हार जाती है और सारा प्रगतिशील दिमाग धरा का धरा रह जाता है। परसाई कहते हैं "आपको भी यह जानकर हर्ष होगा कि बेटी शीला का भी आई.ए.एस. में चुनाव हो गया है। कल ही ऑर्डर आया है। आपको यह जानकर और भी प्रसन्नता होगी कि शीला का निर्णय है कि मैं किसी जूनियर सरकारी नौकर से शादी नहीं करूँगी। इस सम्बन्ध को तोड़ते हुए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है।" 20 इसके अलावा कई ऐसे बिंदु हैं जिनपर परसाई ने अपनी पैनी नज़र रखी है। दहेज रेटलिस्ट का एक नमूना देखिये :- " कान्यकुब्जों में एम.ए. पास, मगर फिलहाल बेकार, वर का क्या रेट है, यह सयानों से पूछा गया। सयानों ने बताया कि हमने मैट्रिक फेल कान्यकुब्ज कुमार को कानी लड़की के पिता से लाख भी दिलाए हैं। पर सामान्यतः एम.ए. पास बेकार लड़के का रेट पन्द्रह-बीस हजार के बीच है।" 21 मतलब आपका रूप-रंग, आपकी सेलेरी, काम-धंधा आपका मूल्य तय करती है नाकि आपकी पढ़ाई। "कानी लड़की के पिता से से लाख दिलाये थे" में उस पिता की मजबूरी और सामाजिक आडम्बर के बीच से जो विसंगतिबोध निकलता है उसमें से व्यंग्य निकालने की कला परसाई का अपना प्रयोग है।

विवाह की आदर्श स्थिति इस बात पर टिकी है कि अव्वल तो सेटल हो जाओ, नौकरी व घर बार हो जाये तब शादी का सोचना चाहिए, लेकिन इस समाज में अच्छा

भी है तो बुरा भी है। पवित्र भी है तो अपवित्र भी जैसे मैला आँचल का मेरीगंज 'जहाँ शूल भी है फूल भी है, कीचड़ भी है'। इसलिए समाज की इस कुरूपता में ऐसा न होने से वर-वधू दोनों पक्षों के बीच थू-थू करना-करवाना, पुलिस थाना, दहेज के आरोप, गृह क्लेश, डोमेस्टिक वॉयलेंस और अंततः तक-हारकर, और दम घोंटू जीवन जीते जीते मृत्यु को भी कई प्राप्त होते हैं यह हमसे छिपा नहीं। दहेज लेने का भी एक शुभ मुहूर्त होता है। नौकरी लगने से पहले बात तय कर ली तो नुकसान का सौदा हो सकता है। लेकिन नौकरी के तुरन्त बाद कि तो कुछ मोल बढ़ सकता है। इसलिए परसाई ने समाज की इस ओछी मानसिकता पर लिखा है " इसी बीच पब्लिक सर्विस कमीशन का सहयोग मिला। अशोक डिप्टी कलेक्टर के लिए चुन लिया गया। ऑर्डर देखकर चौबेजी खुश हुए। फिर एकाएक चौबेजी दुखी हो गए। सिर ठोंका और गाली देने लगे, "साले, नीच कमीने कमीशनवाले! हराजादे। ..."चौबेजी ने कहा, "अरी, यही ऑर्डर महीने भर पहले आता तो डिप्टी कलेक्टर लड़के के तीस पैंतीस हजार नहीं मिल जाते। यह सरकार भी निकम्मी है। मैं कहता हूँ, इस देश में क्रान्ति होकर रहेगी।" 22 'कबीर की बकरी' में परसाई वर्तमान समाज के जकड़े जातिगत समीकरणों को बड़े सरल शब्दों में इस तरह उतारा है कि पूरा व्यंग्य ही पाठक को भेदता चला जाता है। निबंध का अंत ही इस तीख़ी पंक्ति में होता है - "पंडित जी, जानवर है।चली जाती होगी मंदिर में। मैं तो नहीं गया। " 23

निष्कर्ष

हम कह सकते हैं कि हरिशंकर परसाई का व्यंग्य सभी व्यंग्यकारों से विशिष्ट, अतुलनीय व प्रेरणादायक है। जहाँ विषय की जितनी भरमारता है उतनी शायद ही किसी के पास। उन्होंने छोटे से छोटे विषय को लेकर बड़े-से-बड़ा व्यंग्य लिख दिया है। बहुत आसान शब्दावली में तीख़ा व्यंग्य व मानवीयता की चिंता उनका मौलिक शोध है। इसलिए आज भी वह व्यंग्यकारों में लौह पुरुष के समान माने जाते हैं।

संदर्भ सूची

1. सदाचार का तावीज़, हरिशंकर परसाई, राजकमल प्रकाशन, 1967 पृ 10,
2. तेल की पकौड़ियाँ, प्रभाकर माचवे, पृ 1
3. सदाचार का तावीज़, हरिशंकर परसाई, राजकमल प्रकाशन 1967 पृ 6
4. हिंदी व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य, सं. प्रेम जनमेजय, पृ 221
5. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, हरिशंकर परसाई, राजकमल प्रकाशन, पृ 11

6. विकलांग श्रद्धा का दौर, हरिशंकर परसाई, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2017, पृ 6
7. वही, पृ 6
8. वही, पृ 31
9. वही, पृ 31
10. वही, पृ 31
11. वही, पृ 31
12. वही ,पृ 31
13. वही, पृ 14
14. वही, पृ 55
15. वही, पृ 59
16. वही, पृ 60
17. वही, पृ 147
18. वही, पृ 132
19. वही, पृ 133
20. वही, पृ 133
21. वही, पृ 145
22. वही, पृ 143
23. वही, पृ 144

वही, पृ 116